एक मौलिक दर्शन

दुनिया—मेरी दृष्टिमें

डॉ० सत्यनारायण शर्मा

प्रकाशक
ओम्प्रकाश बेरी
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
पो० बॉक्स० नं० ७०, ज्ञानवापी,
वाराणसी ।

प्रथम संस्करण—११००
१९५६
मूल्य : पाँच रुपये

मुद्रक
श्रीकृष्णचन्द्र बेरी
विद्यामन्दिर प्रेस (प्राइवेट) लि०
मानमन्दिर, वाराणसी ।

अर्पण

जिसके अभाव [illegible] या नयनों के आगे अन्धकार,
अन्तर्वीणा पर माया का होता निशि-दिन निष्ठुर प्रहार ।
जिसके अभाव में पंख कटे कल्पना-विहग के चिर सुन्दर,
प्रज्ञा अपनी दुर्बलता पर क्रन्दन करती है निशि-वासर ।
जिसके अभाव में यह संसृति बन गयी एक भीषण छलना,
काँटों को पुष्प समझ करके पड़ता है निशि-वासर चलना ।
बन गया मरुस्थल-सा नीरस जिसके अभाव में यह जीवन,
अर्न्तश्यामा जिसके अभाव में करती क्रन्दन ही क्रन्दन ।
उस रूठे खोये साथी को, उस किरणप्रवाही हमदम को,
शत कोटि विश्व के स्वामी को, उस मायापति को, निर्मम को ।

PREFACE

Monsieur SHARMA me fait l' amitie de desirer que je presente son livre au lecteur. J'en suis, a vrai dire, un peu confus, car, si je puis avouer une certaine connaissance de la pensee indienne a travers sa litterature sanscrite, je dois bien reconnaitre mon ignorance de la langue hindi.

Quoiqu'il en soit, les problemes dont il est traite dans cet ouvrage sont d'un interet si largement humain que je serai sans doute excuse d'en dire ici quelques mots.

Avec des arguments que je ne ferais pas toujours miens, Monsieur SHARMA defend cette juste these que la vraie reponse aux questions posees par l'existence de l'homme et de l'univers ne peut etre fournie par materialisme; et comme celui-ci se donne volontiers pour la seule philosophie compatible avec la science moderne, il s'attache a montrer combien la connaissance scientifique est relative et provisoire, combien elle est peu faite pour satisfaire au besoin d'absolu qui est en nous. Il ne conteste pas qu'elle

soit valable dans son ordre, mais nous assure que ce dernier n'est ni l'ordre unique, ni l'ordre ultime du savoir et de la vie. Au-dessus de l'experience, de la raison et de la credibilite scientifiques, il y a place pour une raison, une experience, une foi superieures. À des titres divers, la philosophie (si elle n'est pas materialiste), la poesie, la mystique, la religion sont des guides susceptibles de conduire l'homme la ou il ne peut avoir acces par la science seule. C'est faire de celle-ci un mauvais usage que de pretendre la substituer a ces disciplines plus anciennes; il faut au contraire qu'elle leur prepare la voie et s'efface ensuite devant elles.

Precieuses formules anxquelles je me rallie de tres grand coeur, a les prendre du moins dans leur mouvement general, et sous reserve de divergence, majeures ou mineures, qu'une explicitation plus poussee de ma pensee ferait sans doute apparaitre.

Je voudrais cependant dire quelque chose en faveur de la science et, presque, du materialisme.

Meme lorsqu'elle s'occupe d'objects materiels, la science est acte de l'esprit et donc spirituelle. Le bon ou mauvais usage que l'homme peut faire de ses decou-

vertes ne saurait affecter sa nature propre. La theorie moderne de l'atome est innocente des guerres atomiques dont nous sommes menaces. Si les materialistes se rendaient compte qu'en niant l'esprit ils suppriment l'agent meme de la science, les meilleurs d'entre eux cessera de l'etre.

Quant au materialisme. sa tragique erreur ne vien pas du respect qu'il porte aux valeurs de notre vie terrestre, aux conditions materielles de son progres, a la noblesse du travail manuel, mais de l'illusion qu'il les preservera mieux en supprimant l'ordre spirituel considere comme parasite des energies humaines, alors que bien au contrair elles n'ont de sens et de vertu que par lui. Si le materialisme,qui se flatte d'etre realiste, etait un realisme integral, il reconnaitrait tous les orders de realite, celui de l'esprit comme celui de la matiere, et leur hierarchie, definie precisement par laurs degres de realite.

Et je dirai volontiers ici—Monsieur SHARMA voudra bien m'en excuser—qu'affirmer trop l'rrealite du monde sensible est une maniere perilleuse de signifier l'infinie realite de l'Esprit absolu. Car il convient bien plutot a la bonte divine de faire don de l'etre aux plus humbles de ses creatures.

Pour rendre inutile tout materialisme, il importe de dire et repeter sans cesse a l'humanite qu'elle a une double vocation, temporelle et eternelle, a realiser des ici-bas. Le souci majeur de la vie eternelle n'est pas une entrave a l'epanouissement humain dans le temps, mais bien sa garantie ultime, sans prejudice, bien entendu, des modalites diverses de detachement et d'engagement que revet pour chacun en particulier ce devoir general.

Olivier LACOMBE

आमुख

शर्मा जी ने सौहार्दवश यह इच्छा प्रकट की है कि उनकी इस पुस्तक को मैं पाठकों के समक्ष रखूँ। मै यहाँ कुछ द्विविधाग्रस्त-सा हो गया हूँ, क्योंकि संस्कृत साहित्य के द्वारा भारतीय विचार-धारा से कुछ अंशों मे अभिज्ञ अवश्य हो सका हूँ, किन्तु भाषा का मुझे ज्ञान नही।

जो हो, इस पुस्तक में जिन प्रश्नों पर विचार किया गया है, वे इतने व्यापक है कि यदि मै उनके सम्बन्ध में यहाँ कुछ लिखता हूँ तो यह क्षन्तव्य होगा।

उन तर्कों के द्वारा, जिनका मै सर्वत्र समर्थन नहीं करता, शर्मा जी इस सिद्धान्त की सत्यता पर प्रकाश निक्षिप्त करते है कि भौतिकवाद के द्वारा मानव और विश्व के अस्तित्व से समुत्पन्न प्रश्नों का समुचित उत्तर नही दिया जा सकता क्योंकि आधुनिक विज्ञान के साथ-साथ चलने का दावा जड़वादी दर्शन ही करता है। शर्माजी यह दिखलाते है कि किस प्रकार वैज्ञानिक ज्ञानार्जन संकुचित एवं सापेक्ष है—हमारे 'अहं' की आवश्यकता-पूर्त्ति में कितना अक्षम है! वे इसका खण्डन नहीं करते कि अपने स्थान पर वह महत्त्वपूर्ण है, किन्तु हम लोगों को विश्वास दिलाते हैं कि वह जीवन और ज्ञान का एकमात्र या सर्वोत्कृष्ट साधन

नहीं ! अनुभव, प्रज्ञा और वैज्ञानिक मान्यताओं के ऊपर अति-मानवी प्रज्ञा, अनुभव और विश्वास का भी स्थान है। विविध संज्ञाओंवाला दर्शन (यदि वह जड़वादी नहीं है तो), कविता, रहस्यवाद, धर्म मनुष्य को वहाँ तक पहुँचा सकने की क्षमता रखते हैं, जहाँ अकेले विज्ञान की पहुँच नहीं। प्राचीनतम नियम-बन्धनों में विज्ञान को ग्रस्त रखना उसका दुरुपयोग है। विज्ञान का यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि वह उनका पथ-प्रशस्त करे और फिर उनके लिए राह छोड़ कर अलग हो जाय !

ये सिद्धान्त अतिशय महत्वपूर्ण हैं और मैं हृदय से इनके साथ हूँ—कम-से-कम उनके सामान्य अर्थ में तो अवश्य ही। किन्तु यहाँ उन बड़े-छोटे मत-पार्थक्यों की अवहेलना नहीं करनी होगी, जिनका प्रकटीकरण मेरे विचारों की विस्तृत अभिव्यक्ति के द्वारा ही सम्भव है।

अब मैं विज्ञान के पक्ष में कुछ कहना चाहता हूँ—करीब-करीब जड़वाद के पक्ष में ही।

विज्ञान भौतिक पदार्थों से सम्बद्ध है, किन्तु यह आत्म-तत्व की क्रिया होने के कारण आत्मिक है। इसके आविष्कारणों के जो अच्छे या बुरे उपयोग मनुष्यों के द्वारा होते हैं, उनसे इसके निजी स्वरूप पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अणु-सिद्धान्त उन अणु-युद्धों के दोष से मुक्त है, जो हमें संत्रस्त किये हुए है। यदि भौतिक-वादी इस बात को समझ लें कि आत्मा को अस्वीकृत कर के ये

विज्ञान के कर्त्ता को ही अस्वीकृत कर रहे हैं तो इनके प्रमुख व्यक्ति भौतिकवादी न रहें। जड़वाद के सम्बन्ध में मैं कहूँगा कि उसकी शोकजनक गलती इससे नहीं समुद्भूत है कि वह पार्थिव-जीवन को इतना महत्व देता है—अपनी प्रगति के लिए भौतिक उपादानों एवं शारीरिक उद्योगों को इतनी प्रधानता देता है, किन्तु इस भ्रम से कि आत्मवाद मानवी शक्तियों का विघातक है और उसे पूर्णतया बहिष्कृत करने से पार्थिव उन्नति का पथ अधिक प्रशस्त होगा, जब कि आत्म-तत्व के ही कारण इनकी सार्थकता एवं महत्ता है। यदि जड़वाद, जो अपने वास्तविकतावाद पर नाज करता है, पूर्णतया वास्तविकतावाद होता तो वह वास्तविकता के समस्त रूपों की सत्ता स्वीकृत करता, आत्म-तत्व की भी और पुद्गल की भी और उनकी सत्ता के विभिन्न सोपानों की भी।

और मैं यहाँ कहूँगा—शर्माजी मुझे कृपया क्षमा करें—कि इस इन्द्रियानुभूत जगत् के मिथ्यात्व पर अत्यधिक जोर देना उस महत्तम सत्ता के शाश्वत सत्य पर प्रकाश डालने की एक भयावह प्रणाली है, क्योंकि यह उस महामहिम की ही इच्छा है कि उसने क्षुद्रतम प्राणियों को अस्तित्व का दान दिया।

समस्त जड़वाद को अनुपयुक्त सिद्ध करने के लिए मानवता को निरन्तर यह कहना पड़ेगा कि उसके दो कर्त्तव्य है—एक सांसारिक, दूसरा चिरन्तन और इस मर्त्यावास से ही दोनों का समारम्भ हो जाना चाहिये। सासारिक समुन्नति के लिए शाश्वत जीवन की गहन चिन्ता कोई अवरोध नहीं है, अपितु इसकी उत्कृष्ट-

तम रक्षिका है; किन्तु इस कर्त्तव्य से आकर्षण एवं विकर्षण के जो नानाविध रूप समुद्भूत होते हैं, उनके प्रति पक्षपात-राहित्य अवश्य हो !

आलिविए लाकोम्ब, डी॰ लिट्॰

(प्रोफेसर, पेरिस विश्वविद्यालय)

प्राक्कथन

इस पुस्तक का नाम मैंने रखा है--'दुनिया--मेरी दृष्टिमें'। और भी बहुत-से नाम मेरे मस्तिष्क ने मेरे समक्ष रखे, लेकिन मुझे अन्ततः यही नाम सबसे अधिक युक्तियुक्त और सुन्दर लगा।

दुनिया को जिस दृष्टि से मै आज देख रहा हूँ, उसी की अभिव्यक्ति मैंने इस पुस्तक में की है। कल जिस रूप मे मै इसे देखता था, उसकी नहीं। और कल जिस रूप में देखूँगा, उसकी भी नहीं, क्योंकि उससे तो अभी मैं स्वयं परिचित नहीं हूँ।

कहने का तात्पर्य, मेरी यह पुस्तक मेरे विचारों के वर्तमान का प्रतिनिधित्व करती है, उनके अतीत या भविष्य का नहीं।

हो सकता है, मेरा भविष्य मेरे विचारों में क्रान्तिकारी परि-वर्त्तन देखे, या यह भी हो सकता है कि वह अतीत के आलिङ्गन-पाश में बद्ध होने का प्रयास करने लगे। क्या होगा, यह मैं नहीं जानता। हो सकता है, दुनिया के प्रति मेरा वर्तमान दृष्टिकोण आमरण रहे —यद्यपि मैं मृत्यु के अस्तित्व में ही विश्वास नहीं करता।

मुझे विश्वास है, मैं ऐसा लिखकर अपने प्रति अन्याय नहीं कर रहा हूँ। बल्कि अपने को अपने प्रति और मानव-समुदाय के प्रति अधिक स्पष्ट कर रहा हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि मैं अभी

उसके अन्वेषण-पथ में हूँ, जिसे वैज्ञानिक सत्य कहता है और कवि चिर सुन्दर प्रियतम ।

मञ्जिल तक पहुँचने के पहले निश्चयपूर्वक कुछ भी कहना असम्भव-सा प्रतीत होता है, यद्यपि अपने निर्धारित पथ की सत्यता पर अविचल विश्वास अत्यावश्यक है ।

आज से नहीं, शताब्दियों से मानव-जाति विज्ञान और कविता को एक-दूसरे का शत्रु समझती आयी है । मैं इसे नहीं मानता । सच्चा विज्ञान सच्ची कविता का विरोधी कदापि नहीं हो सकता । विज्ञान और कविता दोनों एक-दूसरे के पथ को प्रशस्त करते हुए यदि चरण बढ़ायें तो मञ्जिल तक जल्दी ही पहुँचा जा सकता है । विज्ञान का इधर मैंने जो अध्ययन किया है, वह मेरे इस विश्वास को नूतन बल प्रदान करता है ।

मैं वैज्ञानिक नहीं हूँ, विज्ञान का मैंने केवल अध्ययन किया है । लेकिन मैं कवि हूँ; अपने को कवि समझता भी हूँ क्योंकि सौन्दर्य की भावना मुझमें प्रबल है और किसी अपरिचित, किन्तु चिरपरिचित सुषमा का अभाव भी मेरे प्राणों में छन्द बन कर नृत्य करता रहता है । इसी से मेरा विश्वास है कि विज्ञान और कविता के साहचर्य की महत्ता को विघोषित करके मै कोई अनधिकार चेष्टा नहीं कर रहा हूँ ।

सच तो यह है कि मैंने आज तक जो कुछ लिखा है, उसम सर्वत्र इसी का प्रयास है—विज्ञान और कविता के इसी एकीकरण का । 'इन्कलाब जिन्दाबाद' मेरी प्राथमिक कृति है—विप्लव-

की किरण-शलाकाओं से द्योतिता। उसमें भी इस उद्देश्य की अभिपूर्त्ति के प्रयासी के रूप में ही मैं पाठकों को दिखलायी देता हूँ—लेकिन, सब को नही, केवल उन पाठकों को, जो लेखक या कलाकार के कृतित्व को उसके जीवन के महत्त्वपूर्ण भाग का वास्तविक प्रतिबिम्ब समझ कर उसका समुचित अध्ययन करते हैं। 'आत्महन्ता' के सम्बन्ध में तो कुछ कहना ही निरर्थक है। कवि और वैज्ञानिक को लेकर ही उसका सारा कथानक जीवित, जागृत है। 'टूटती हुई जंजीरें' में भी सुधी दर्शकों को यही दिखलायी देगा।

मैं स्वयं मानता हूँ, मेरी कविता के पथ को मेरे विज्ञान के अध्ययन ने प्रशस्त किया है—उसके श्रम-जर्जर प्राणों को आश्वस्त करने के साथ ही साथ उसे नूतन ज्योति भी प्रदान की है, जो तब तक अनिवार्य्य है, जब तक मंजिल नही मिल जाती।

हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य का ऐकान्तिक अभाव है। नवीन युग के साहित्यकार बौद्धिकताहीन भौतिकवाद के मायाजाल में फँसकर पुस्तकों की संख्या बढ़ाने में लगे हुए है। सुसम्बद्ध चिंतन की न्यूनता जागतिक स्वार्थ पर आधारित उच्छृङ्खलता पर समाश्रित होकर साहित्यिक जगत् में जिस कुत्सा का प्रसार कर रही है, उस पर मौन रहना ही श्रेयस्कर होगा।

यत्र-तत्र मैंने कुछ नये वैज्ञानिक शब्द व्यवहृत किये है। शब्द नये हैं, लेकिन उनके आधार नये नहीं। Betelgeuse Arcturus, Canopus, Rigel, Artres प्रभृति तारकों के नाम को मैंने कुछ कोमल और श्रवण-सुखद रूप प्रदान कर दिया है।

हो सकता है, अपने आज के सिद्धान्तों में से बहुतों का खंडन कुछ समय के उपरान्त मुझे स्वयं करना पड़े। लेकिन इसकी सम्भावना बहुत कम है क्योंकि मैं अनुभव कर रहा हूँ कि बहुत लम्बा और कण्टक-संकुल मार्ग पार करने के बाद तब मैं यहाँ तक पहुँच पाया हूँ और अब मुझे परिष्करण की ही आवश्यकता हो सकती है, आधार-परिवर्त्तन की नहीं।

इस पुस्तक को लिखे एक बड़ी ही लम्बी अवधि बीत गयी। इस बीच न जाने कितनी बार निदाघ ने हृदय-वल्लरी को अपने उत्ताप से सुखाने का प्रयास किया है और पावस ने उसे पुनः हरीतिमा प्रदान करने का। स्पष्ट है, जीवन-यात्रा-पथ की जिस पाषाण-शिला पर बैठकर मैंने यह पुस्तक लिखी थी, वह बहुत पीछे छूट गयी है।

—सत्यनारायण शर्मा

"Either we cannot or we hardly dare
Breathe forth that vision into earthly air ;
And if you call us dreamers, dreamers then.
Be we esteemed amid you waking men;
Hear us or hear not as ye choose; but we
Speak as we can, and are what we must be.

—Myers.

".......Striving to save my own soul and my
comrade's homeward way."

—Homer.

दुनिया—मेरी दृष्टि में

दुनिया—मेरी दृष्टिमें

: १ :

मानव-जाति अपने समुद्भव-काल से लेकर अबतक नानाधिक क्लेशों से आलिङ्गित रहती आयी है—रोदन, क्रन्दन उसके जीवन-सहचर रहते आये हैं। पृथ्वी का कोई भी ऐसा मानवसंकुल भाग नहीं, जहाँ के वातावरण में अनुतापों, व्यथाओं, प्राणप्रपीड़क यन्त्रणाओं और प्राणों को जर्जरित कर डालने वाली दुश्चिन्ताओं का समावेश न हुआ हो। उसके विकास ने उसकी सुविधाओं की अपेक्षा इनका विकास अधिक किया है और इसी कारण साभ्यतिक उन्नति क्लेशों की उन्नति से अपने को विमुक्त नहीं रख पाती। कानन-निवासियों के अस्तित्व को शारीरिक क्लेशों का सहन करना पड़ता है, किन्तु सभ्यताभिमानी नगर-निवासियों का सारा-का-सारा जीवन मानसिक क्लेशों से समाच्छन्न रहता है—तिमिर श्यामल मेघमालाओं से समाच्छन्न शून्याकाश की तरह। शारीरिक क्लेशों को दूर करते-करते—अपने जीवन की सुविधाओं को विकसित, विवर्धित करते-करते मानव जाति उस स्थिति की सम्प्राप्ति करती है, जिसका आधार उसकी दृष्टि में उसकी गौरवोज्वल सभ्यता है, किन्तु वहाँ पहुँचने पर वह अपने को पहले की अपेक्षा अधिक क्लेशाक्रान्त पाती है—अधिक प्रभावग्रस्त

और व्यथा-जर्जर। लेकिन इस पतन की अनुभूति सब को नहीं होती—अबौद्धिकतापूर्ण आत्मविस्मृति के कारण; यद्यपि क्लेशों की अनुभूति तो सब को होती है, चाहे वे विवेचनापूर्ण विचारों का संवरण करते हुए जीवन-पथ पर चलने वाले व्यक्ति हों, चाहे पूँछ और विषाण हीन पशु।

वर्त्तमान सभ्य मानव-समूहों ने क्लेशों की निराकृति के जो उपाय निर्धारित किये हैं, वे सर्वदा हास्यास्पद प्रतीत होते हैं। यह हास्यास्पद विवेकहीनता पृथ्वी के समस्त भागों में दृष्टिगत होती है क्योंकि वैज्ञानिकों की अक्लान्त साधना ने पृथ्वी के समस्त भाग को एक दूसरे के सन्निकट कर दिया है; यद्यपि यह सामीप्य अभी अपनी शैशवावस्था में ही है और युवावस्था तक पहुँचने के पहले इसे सामीप्य कहना युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता. फिर भी, कुछ शताब्दि पहले मानव-जाति के वासस्थल एक दूसरे से जितनी दूरी पर अवस्थित थे एवं एक दूसरे से जितने अनभिज्ञ थे, उतने आज नहीं। आज वे एक दूसरे की भलाई करने योग्य उच्च स्तर पर पहुँचे हों या न पहुँचे हों और भले ही एक-दूसरे को खा जाने की दानवी चिन्ताओं मे निमग्न रहते हों, पर यह सुनिश्चित है कि वे एक-दूसरे को जान रहे हैं—एक दूसरे के गुणावगुणों से अभिज्ञ हो रहे हैं। इस अभिज्ञता से लाभ हुए हैं, इसमे कोई सन्देह नहीं; किन्तु जो भीषण हानियाँ हुई हैं, उनसे भी इन्कार नहीं किया जा सकता। एक दूसरे के गुणों को ग्रहण करने में जितनी तत्परता नहीं दिखलायी गयी है, उससे अधिक तत्परता दोषों को ग्रहण करने में दिखलायी गयी है। लेकिन इस विपर्यय का होना अवश्यमभावी था। दोष

ग्रौर गुणों की सम्यक् विवेचनाशक्ति कोई साधारण बात नहीं है ग्रौर मानव-जाति यदि इतनी समुन्नत हो गयी होती तो फिर उसके जीवन में दोषों की ग्रवस्थिति ही क्यों दिखलायी देती। फलतः-सम्प्राप्ति के क्लेशों के निराकरण के ग्रविवेवतापूर्ण उपायों का ग्रह्-व्यापी प्रचार कोई ग्राश्चर्यजनक घटना नहीं है ग्रौर न मानवी इतिवृत्त की ग्राश्चर्य-जनक घटनाग्रों में इसका उल्लेख ही होना चाहिये।

मनुष्य शैशवावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक ग्रपने को नानाविध पीड़ामय संघर्षों मे संलिप्त पाता है। ये संघर्ष उसे रुचिकर नहीं प्रतीत होते ग्रौर इनसे विमुक्त होना भी रुचिकर नहीं प्रतीत होता, क्योंकि इनसे विमुक्त होने का तात्पर्य होता है क्षुधा-ग्रसित होना ग्रौर ग्रन्ततः मरणोन्मुख हो जाना। इन संघर्षों के परिष्करण के लिए वह सहस्राब्दियों से प्रयास करता ग्रा रहा है। उसके समुद्भव के उषाकाल में भोजन की समस्या उसके समक्ष जिस विकराल रूप मे उपस्थिति थी, उसी रूप में वह ग्राज भी है। ग्राज भी वह क्षुधा-शान्ति के उपायों की ग्रोर ग्राकृष्ट होता है ग्रौर नानाविध प्रणालियों से क्षुधा-शान्ति के साधनों का एकत्रीकरण करता है। उस समय भी वह क्षुधा की शान्ति के लिए गिरि-काननों में भटकता फिरता था। विभेद ग्रवश्य उपस्थित हुग्रा है, लेकिन वह कोई महत्व नहीं रखता। उसकी ग्रपनी कोई सारवत्ता नहीं है। क्षुधा-पीड़ित होकर वनान्त-पथ में फल-भार से विनम्र विटपी की खोज में निकलने वाले ग्रादिकालीन मानव में ग्रौर ग्राधुनिक युग के उस मानव में, जो ग्रपने नाम के ग्रागे बी० ए०, एम० ए० की पूँछ लगाकर नौकरी की खोज में निकलता है, कोई ग्रन्तर नहीं।

जो थोड़ा बहुत अन्तर है, उसका कोई वैशिष्ट्य नहीं। विषय के अन्तराल में अच्छी तरह से प्रवेश करके देखने पर आधुनिक युग के मानवों की क्षुधा-शान्ति के साधन अधिक निकृष्ट, अधिक बन्धनग्रस्त एवं दासत्व पर आधारित प्रतीत होंगे। वैकल्य भी आधुनिक युग के मानवों में अधिक मात्रा में दृष्टिगत होता है। फिर भी वह अपने को विकसित समझता है, साथ-ही-साथ समुन्नत भी। विकसित उसे कहा जा सकता है, क्योंकि उसने विकास किया है, भले ही वह विकास सशक्त, शुद्ध एवं निष्कलुष न रहा हो, किन्तु समुन्नत नहीं। समुन्नति के लक्षण मानवी इतिवृत्त में उतने उपलब्ध नहीं होते जितने अवनति के लक्षण। समुन्नति की सार्थकता तभी है जब वह ईप्सित लक्ष्य के सान्निध्य की सहायिका हो। इसके अभाव में समुन्नति का कोई अर्थ नहीं रह जाता। सुखाकांक्षी व्यक्ति की समुन्नति तभी है जब वह अपने जीवन को सुखों के अतिशय सन्निकट पा रहा हो। सुख की आकांक्षा हो और निर्धारित कार्य-योजना उसे दुःखों की ओर ले जाय तो यह समुन्नति नहीं, अवनति है। मानव-जाति की गतिविधियों को यदि इस दृष्टि से देखा जाय तो उसकी साभ्यतिक उन्नति एक विडम्बना में पर्यवसित हो जाती है। वही संघर्ष तब भी थे और वही संघर्ष आज भी हैं। जीवन के उस उषाकाल में और साभ्यतिक मध्याह्न में जो अन्तर समुपस्थित हुआ है वह साम्प्रतिक मध्याह्न को कोई गौरव न प्रदान करके उसकी भीषणता का ही पट-मोचन करता है।

सुख और दुःख दोनों सापेक्षिक अनुभूतियाँ हैं। इनका कोई स्वतन्त्र अस्तीत्व नहीं है। मानव-जाति सहस्राब्दियों से इस बात

की चेष्टा करती आयी है कि उसके दुःखों का सम्पूर्ण विनाश-साधन हो और सुख की नित्य-नूतन धाराएँ उसके जीवन में प्रवाहित होती रहें। अपने जीवन-कानन से पतझड़ की रस-हीनता दूर करके उसमें ऋतुराज की उन्मादकता और श्री-सुषुमा सन्निविष्ट करने का प्रयास वह सदैव करती आ रही है और उसके इसी प्रयास को ही उसे वर्त्तमान स्वरूप प्रदान करने का श्रेय है। ये अट्टालिकाएँ, ये शृंगार-प्रसाधनों से सुसज्जित प्रकोष्ठ, ये नानाविध मनुजों के वासस्थल विराट नगर, ये सिनेमा-हाल, ये विद्यालय, ये वेश्याओं के नूपुर-रव-मुखरित हर्म्य,—इन सब की उत्पत्ति एवं प्रवर्धन का श्रेय मानव-जाति के उन प्रयासों को ही है, जिनका उद्देश्य सुख की उपलब्धि और दुःख का निराकरण है। किन्तु दुर्भाग्यवश ये समस्त साधन मानवों को वह सुख नहीं प्रदान कर पाते जिसकी प्राप्ति-कामना सहस्राब्दियों से उसके अन्तःस्तल मे विस्फूर्जित हो रही है। इनसे उन्हे सुख की उपलब्धि होती है, लेकिन वह सुख उनके मन-प्राण को उल्लसित करने के बदले—उनके हृदय को एक अभिनव आह्लाद से भरने के बदले उन्हें ऐसे-ऐसे दुःखों—ऐसी-ऐसी सर्वनाशी यन्त्रणाओं का सहचर बना डालता है कि वे भय से काँप उठते हैं।

वर्त्तमान सभ्यता की अवस्था अधिक कहना युक्तिसंगत नहीं। वास्तव मे इसका जन्म और विकास विगत दो शताब्दियों में ही हुआ है। अतएव इसमे अनेकानेक त्रुटियों का रहना आश्चर्यजनक नहीं, ऐसा सुधी व्यक्ति सोच सकते हैं। किन्तु वे सभ्यताएँ भी तो मानव-जाति के जीवन को सुख नहीं प्रदान कर सकीं, जो पर्याप्त काल तक इस पृथ्वी पर टिक सकी थीं और जिनका विकास वर्त्तमान

सभ्यता से किसी भी बात में कम नहीं था। भारतवर्ष का वह स्वर्ण युग, जिसमें उपनिषदों, दर्शन-शास्त्रों एवं गीता जैसे महान् ग्रन्थों की विरचना हुई थी, वर्त्तमान युग से कभी भी कम नहीं कहा जा सकता। जिन वैज्ञानिक रहस्यों का उद्धाटन इतनी-इतनी भ्रान्तियों के उपरान्त विज्ञानवेत्तागण इस समय कर रहे हैं, उनसे भारत के महामहिम महर्षि अच्छी तरह परिचित थे, इसके पर्याप्त प्रमाण समुपलब्ध हो रहे हैं। विश्व के समुद्भव के सम्बन्ध मे भारत के उन पुराचीन दार्शनिकों ने जिन तथ्यों का उद्घाटन किया था, वे उनकी बौद्धिक शक्तियों के विकास पर पर्याप्त प्रकाश तो डालते ही हैं, साथ-ही यह भी बतलाते है कि वर्तमान युग के मनीषियों का यह अभिमान पूर्णतया भ्रान्ति एवं अज्ञतापर आधारित है। कि विचार-शक्ति एवं मनन-शक्ति का जैसा निकास वर्त्तमान युग में देखा जा रहा है, वैसा कभी भी देखने में नहीं आया। लेकिन उस स्वर्ण-युग के अधिवासियों का जीवन भी पतिशय क्लेशाकान्त था—दुखों की पिशाचिनियाँ उस समय भी निर्मल बन कर लोगों के अन्तर्देश की श्री-सुषमा का अपहरण करती रहती थीं, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। लोगों के जीवन मे क्लेशों का आधिक्य देखकर कपिलवस्तु का राजकुमार दुःखों से मुक्त होने के उपायों का अन्वेषण करने के लिए निशीय-नीरवता में कोमलांगी पत्नी के आलिंगन-पाश से अपने को मुक्त करके अज्ञात दिशा की ओर चल पड़ा था। ऋषियों के पास युवराज आते थे और अतिशय विनम्र होकर दुःखों से परित्राण पाने का उपाय पूछा करते थे। यहाँ तक कि कई ऋशियों ने तो विविध दुःखों की निवृत्ति को ही मनुष्य का चरम ध्येय

विघाषित कर दिया। किसी वस्तु की आत्यंतिक क्लेशप्रद अवस्थिति में ही उससे मुक्त होने की चेष्टाएँ की जाती हैं। उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि भारतवर्ष के उस सम्पन्न युग में भी दुःखों का आधिक्य था—मनुष्य तरह-तरह के क्लेशों से संत्रस्त रहा करते थे।

मिस्र की सभ्यता भी साधारण कोटि की नहीं थी। उन्नति के बहुत ही ऊँचे शिखर पर एक प्रकार से वे लोग पहुँच चुके थे। यहाँ उन्नति शब्द का प्रयोग मैं उसी अर्थ में कर रहा हूँ जिसमें साधारणतः किया जाता है। नील नदी के तट का वातावरण सभ्यताभिमानी दार्शनिकों, कलाकारों एवं राजाओं के पारस्परिक वार्त्तालाप से गुंजित रहा करता था। वहाँ के पिरामिड आज भी—बीसवीं शताब्दी के इस चाकचिक्य में भी—सब से दूर निश्चल, उदास मिस्र का अतीत मौन भाषा में कहते हुए से प्रतीत होते हैं। वहाँ का प्रत्येक पाषाण-खण्ड अपने देश के गौरवोज्वल अतीत की महिमा से समन्वित है। वहाँ के विद्वानों ने ज्ञानार्जन में जो उन्नति की थी, वह ज्ञान के विशाल वारिधि को देखते हुए तो सर्वथा साधारण सी—सर्वथा तुच्छ एवं नगण्य सी प्रतीत होती है, किन्तु यदि निष्पक्ष होकर विचार किया जाय तो आज के अधिकांश सुपठित व्यक्ति उन लोगों की मानसिक शक्तियों की समता नहीं कर सकते। अदृश्य शक्तियों पर मिस्र के प्रत्येक अतीतकालीन मनीषियों का ऐसा अधिकार हो गया था कि आज के बहुत से तथाकथित शक्तिशाली मस्तिष्क उनके सामने सर्वथा नगण्य प्रतीत होते हैं। इच्छानुसार वे वातावरण में तरह-तरह के दृश्य उपस्थित कर देते

थे। भारत में तो अभी ऐसे योगी हैं जिनमें ये शक्तियाँ दिखलायी देती हैं। पाल ब्रण्टन नामक एक पाश्चात्य विद्वान् ने ऐसे योगियों के अन्वेषण में अपने जीवन का महत्त्वपूर्ण समय व्यतीत किया है और योगियों से मिलकर उन्हे जो आश्चर्यजनक अनुभव हुए है, उनका वर्णन उन्होंने अपनी कई पुस्तकों मे किया है। बम्बई के मैजिस्टिक होटल में मिस्र के महमूद बे नामक एक व्यक्ति ने उन्हें आश्चर्य विह्वल कर दिया था। पाल ब्रण्टन महोदय ने उस मिस्री से काफी दूर हटकर एक कागज के टुकड़े पर लिखा था—'मै चार वर्ष पहले कहाँ था ?" उसके उपरान्त उन्होंने उसे अच्छी तरह से मोड़कर अपने दाहिने हाथ की हथेली मे दबा लिया जैसा कि उनसे कहा गया था। महमूद बे ने कुछ देर ध्यानमग्न रहने के बाद कागज का टुकड़ा देखे बिना ही बतला दिया कि उन्होंने क्या प्रश्न किया है। यदि केवल यहीं तक होकर रह गया होता, तब तो कोई उतनी विस्मयकारिणी बात नहीं थी, लेकिन ब्रण्टन महोदय ने जब वह टुकड़ा खोलकर देखा तो आश्चर्य के कारण विह्वल हो उठे। वहाँ किसी अदृश्य हाथ ने उस स्थान का नाम लिख दिया था, जहाँ वे चार वर्ष पहले थे। एक प्रश्न से जब उन्हें सन्तुष्टि नहीं हुई और उनकी शंकाओं का पूर्ण निराकरण नहीं हुआ तब उन्होंने दूसरा प्रश्न किया और उसका भी ठीक उत्तर पाया। महीनों के उपरान्त उन टुकड़ों को खोलकर देखने पर भी वही उत्तर लिखा हुआ उन्हें मिला। यह तो एक साधारण-सी घटना है और इस प्रकार की शक्तियों के समुपार्जन के लिए किसी विशिष्ट उच्च कोटि की मानसिक शक्तियों की भी आवश्यकता नहीं। किन्तु

मिस्र के वे पुराकालीन मनीषी जिन विद्याओं मे पारंगत थे, उनका आभास भी वर्तमान युग के तथाकथित महामनीषियों को विस्मयान्वित कर सकता है। मिस्र के नगरों का सौन्दर्य अतीव प्राणमोहक था। लेकिन यह सब होते हुए भी मिस्र के निवासी अपने जीवन को सुखमय नहीं बना सके—दुःखो का हाहारव उनके जीवन में भी उसी तरह होता था, जैसा कि साम्प्रतिक मानवों के जीवन मे होता है। उनकी साभ्यतिक समुन्नति उनके पार्थिव अस्तित्व को क्लेशों से विमुक्त नहीं कर सकी।

ग्रीस की सभ्यता उन्नति के उच्च शिखर पर आसीन हो चुकी थी, इससे वर्त्तमान इतिहासवेत्ता इन्कार नहीं करते। वहाँ की दार्शनिक एवं राजनीतिक पुस्तकें एवं नगरों के भग्नावशेष वहाँ की साभ्यतिक उन्नति पर पर्याप्त प्रकाश तो नहीं डाल पाते, किन्तु उसे अन्धकार मे भी नहीं रखते। सुकरात, अरस्तू और प्लेटो की विचार-धारा से आधुनिक युग के विचारक भी बल और प्रेरणा प्राप्त कर रहे हैं। ग्रीक साहित्य की माधुरी पाठक के गुणग्राही चित्त को सहज ही विमोहित करने मे समर्थ हो जाती है। महाकवि होमरका काव्य क्या जाने कितनों के अन्तर्देश को अश्रुप्लावित कर चुका होगा—समवेदना की सघन श्याम मेघमाला की सर्जना करके। वहाँ की भास्कर्य कला के नमूने अभी भी दर्शकों का हृदय मुग्ध करने की अपूर्व क्षमता रखते है। ग्रीक कला का स्थान साधारण नहीं है। एथेस की सम्पन्नता एवं श्री-सुषमा असाधारण थी। एथेंस की प्रख्यात पहाड़ी ऐक्रोपालिस पर पार्थिनान के जो भग्नावशेष है, वे आज भी सहृदय दर्शकों को प्रभावित करने की

क्षमता रखते हैं—इतनी शताब्दियों के बाद भी। उसके समीपस्थ अन्य मन्दिरों के भग्नावशेष भी ग्रीस के उस गौरवोज्वल अतीत का गुणगान करने के लिए अपने अस्तित्व की साम्प्रतिक नीरवता में उद्यत होते हुए से प्रतीत हाते है। जीसस क्राइस्ट के जन्म के पाँच सौ वर्ष पहले की बनायी हुई मूर्तियाँ अपने निर्माताओं पर कुछ कम प्रकाश नहीं निक्षिप्त करतीं। ग्रीक मूर्तिकार माइटन द्वारा आज से दो हजार पाँच सौ वर्ष पहले बनायी हुई मूर्ति अभी भी अद्वितीय है। मुक्त स्थान में बने हुए सफेद संगमर्मर के थियेटर आज भी ग्रीस में दिखलायी देते है और वहाँ के अतीतकालीन वैभव की स्मृति जागृत करते है। ब्रिटिश म्यूजियम मे पार्थिनीन की दीवारों की कई मूर्त्तियाँ रखी हुई है, जो वहाँ के सौन्दर्य पर प्रकाश डालती हुई वर्त्तमान सभ्यता के चाकचिक्य का उपहास करती हुई-सी प्रतीत होती है। वर्त्तमान सभ्यता के प्रमुख अधिष्ठान जिस समय पशु-चर्मधारी काननचरों से भरे पड़े थे और सभ्यता का कोई भी चिह्न जब वहाँ नही दृष्टिगत होता था, उस समय ग्रीस के अधिवासी दर्शन, विज्ञान, राजनीति, काव्य प्रभृति से अपने जीवन को शृङ्गारित किया करते थे। सुकरात आज भी दुनिया के महान् दार्शनिकों मे परिगणित होता है। आज से २५०० वर्ष एथेस का शृंगार करने वाले, उसको एक अतिशय सुन्दर नगर के रूप में परिणत कर देने वाले—महान् मूर्तिकार पेरिक्लीस की कृतियों का अध्ययन आज के चित्रकार भी अत्यन्त आदर के साथ करते है। संगीत, वक्तृत्व कला गणित प्रभृति का भी विकास पर्याप्त मात्रा में हो चुका था। सुकरात के शिष्यों द्वारा—जेनोफन और प्लेटो

द्वारा उसकी जो शिक्षाएँ संग्रहीत है, वे साधारण महत्त्व नहीं रखती है। प्लेटो के शिष्य अरस्तू के ज्ञानार्जन से विगत दो शताब्दी पूर्व तक यूरोप अत्यधिक प्रभावित था। उसके ज्ञान एवं उसके कृतित्व का एक अंश ही इस समय अवशिष्ट रह पाया है, लेकिन आज भी वैज्ञानिक जगत अरस्तू के प्रति अपनी कृतज्ञता स्वीकार करता है। लेकिन इतना होते हुए भी—ग्रीस की इतनी साभ्यतिक उन्नति होते हुए भी—उसका संस्कृति-पथ इतना प्रशस्त होते हुए वहाँ के अधिवासी क्लेशाक्रान्त जीवन नहीं व्यतीत करते थे, इसका कोई प्रमाण नहीं उपलब्ध होता। सदैव वहाँ के अधिवासी दुःखों से आक्रान्त रहे है—उनके जीवन का पथ हाहारव से परिपूरित रहा है। सुख वहाँ था, लेकिन दुःखों से विमुक्त सुख की छाया को भी प्राप्ति उन्हे नहीं हो सकी थी—संसार के अन्य समुन्नत देशों के अधिवासियों की ही तरह।

कोई सभ्यता रही हो—कोई जाति रही हो—कोई राष्ट्र रहा हो, दुःखों से विमुक्त कोई भी नहीं हो सका। कोई भी अपने जीवन मे सुखों का सन्निवेश नहीं कर पाया। श्मशान की पावस-कालीन निशीथिनी सी भयंकर वेदनामयी अश्रुधारा से किसी का जीवन भी अलग नहीं कर पाया। सुखों की कौमुदी उनके अन्त-रिक्ष को श्रृंगारित करने के लिए राशि-राशि मधु-मादकता लेकर आयी अवश्य, लेकिन अत्यल्पकाल के लिए।

दुःखों से विमुक्त होने के लिए मानव जाति ने अनेकानेक प्रयास किये, लेकिन प्रत्येक प्रयास को जब सफलता द्वारा पुरस्कृत होना पड़ा तो चिन्तनशील व्यक्तियों ने मानव-जीवन को ही एक अभिशाप

समझना आरम्भ कर दिया। उन्हें धीरे-धीरे इस बात का पूर्ण विश्वास हो गया कि मानव-जीवन और दुःख का सम्बन्ध अविच्छिन्न है। दोनों को एक दूसरे से विमुक्त करना नितान्त असम्भव है। उन्हें जन्म मे दुःख दिखलायी देने लगा—बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था में दुःख दिखलायी देने लगा—मृत्यु में भी दुःख का ही आभास मिलने लगा। विभिन्न देशों में, विभिन्न युगों में कई दार्शनिक तो ऐसे भी हुए जिन्होंने दुःखों से परित्राण पाना सर्वथा असंभव सिद्ध कर दिया। वे अभी भी दुःखवादी दार्शनिकों के रूप में अपने अनुयायी वर्ग द्वारा समादरपूर्वक अभिहित होते है। अनेकानेक कवियों ने दुःख को अनिवार्य देखकर दुःख की ही महिमा के गीत गाये। सुख में भी उन्हे दुःख का ही आभास मिलता है। दुःख के आधिक्य के कारण उन्हे दुःख ही सारवान् मालूम होते है, और सुख सर्वथा [निस्सार—मृगमरीचिका के समान।

आखिर इसका कारण क्या है? क्यों इस ग्रह में दुःखों का इतना आधिक्य दृष्टिगत होता है—क्यों यहाँ का वातावरण नाना-विध यन्त्रणाओं से समुत्पन्न हाहारव से गुञ्जित रहता है? मानव-जाति ने इस विषय पर विचार नहीं किया है, ऐसी बात नहीं है। मनीषियों ने दुःखों के कारण को जानने की आप्राण चेष्टाएँ की है और अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार उन्होंने उसको जाना भी है। लेकिन उनके द्वारा प्रतिपादित कारणों में कोई बन्निष्ट ऐक्य नहीं दृष्टिगत होता और यह भी निर्विवाद है कि आधारभूत सत्य सदैव एक ही होता है—अनेक नहीं। इसे आप केन्द्रगत सत्य भी कह सकते हे। अतएव उनके कारणों से जिज्ञासा-वृत्ति की सन्तुष्टि नहीं होती।

फिर भी उनके द्वारा निर्दिष्ट कारणों को सर्वथा महत्त्वहीन भी नहीं कहा जा सकता। जिस प्रकार विभिन्न मस्तिष्कों के लिए संसार के स्वरूप विभिन्न हैं, उसी प्रकार विभिन्न सन्यानुसन्धानियों के सत्य भी अपने-अपने स्थान में सत्य कहे जा सकते हैं। सत्य निरपेक्ष है, सुन्दर और शिव की तरह साक्षेप; किन्तु सापेक्ष संसार मे असत्य जब सापेक्ष सत्य के रूप में अवस्थित होता है, तो उसके महत्व को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता।

जीवन में दुःख है और अन्य प्रकार की अनुभूतियों की अपेक्षा उन्हीं अनुभूतियों का आधिक्य है जो दुःख से मिश्रित है, इसे मानने में भी इन्कार नहीं किया जा सकता। इन दुःखों को समझने के लिए जीवन को समझना आवश्यक है। जीवन की वास्तविकता से अभिज्ञ होना असम्भव है। क्योंकि इन अनुभूतियों का कारण जीवन के अभाव में ये अनुभूतियाँ होती है या नहीं, यह दूसरा विषय है और इस पर मैं आगे प्रकाश डालूँगा, किन्तु अभी यह मान लेने में कोई आपत्ति नहीं उपस्थित होती कि हम सब की वर्त्तमान अनुभूतियों का उद्भव हम सब के वर्त्तमान जीवन के ही कारण हैं। हमारा जीवन यदि नष्ट कर दिया जाय तो हमारे दुःखों का भी नाश हो जायगा, ऐसा हम कुछ देर के लिए मान सकते है, क्योंकि हमारे वर्त्तमान जीवन के समस्त सुख-दुःखों का आधार हमारा वर्त्तमान जीवन ही प्रतिभासित होता है—आधार ही नहीं, उनका समुद्भावक भी।

जीवन को समझने के लिए हमें सारे संसार को समझना पड़ेगा, क्योंकि हमारा जीवन अपने को संसार से स्वतन्त्र करके

अपना अस्तित्व ही खो बैठता है। संसार है, तभी जीवन है और हमारा जीवन है, तभी संसार है — साधारण दृष्टि से इस संसार की ओर दृष्टिपात करने पर कोई भी चिन्तनशील व्यक्ति ऐसा कह सकता है। संसार को नष्ट कर दिया जाय तो जीवन-जी अवस्थिति असम्भव है और यदि जीवन को नष्ट कर दिया जाय तो संसार की अवस्थिति असम्भव तो नहीं प्रतीत होती, किन्तु उसका स्वरूप एक विचित्र तिमिर-जाल मे लुप्त सा हो जाता है—इसे उसकी नास्ति ही कहिये।

विषय को विस्तृत करना निरर्थक है। इसका स्पष्टीकरण हो गया है कि जीवन के दुःखों का कारण समझने के लिए हमें सारे विश्व को समझना पड़ेगा। जीवन दुःखों को ही क्यों, संसार की किसी एक चीज को समझने के लिए सारे विश्व को समझना आवश्यक हो जाता है, क्योंकि कोई भी चीज इस विश्व से अपने अस्तित्व को पूर्णतया स्वतन्त्र नहीं रख पाती।

यह विश्व क्या है—इसका समुद्भव कब हुआ और क्यों हुआ—इसका सञ्चालक कौन है—इसके निर्माण का क्या उद्देश्य है—ये प्रश्न विभिन्न सभ्यताओं के चिन्तनशील व्यक्तियों के मस्तिष्क में सहस्राब्दियों से उत्थित होते आ रहे है। इन्हीं प्रश्नों ने इस छोटे से ग्रह के ऊपर नाना प्रकार के धर्मो और सम्प्रदायों का समुद्भव कराया,—नाना प्रकार की दार्शनिक विचार-पद्धतियों को जन्म दिया। सहस्राब्दियों से मानव-जाति के चिन्तनशील सदस्य इन प्रश्नों पर विचार करते आ रहे है और अपनी-अपनी आवश्यकताओं एवं कामनाओं के आनुकूल्य को सुरक्षित रखते हुए इसका उत्तर

भी उन्होंने सोचा है। मानव-जाति के समुद्भव से लेकर अबतक सारी पृथ्वी पर इन प्रश्नों से सम्बन्ध रखनेवाली जितनी पुस्तके लिखी गयी हैं, यदि उन्हे एकत्र किया जाय तो बहुत बड़ा पुस्तकालय तैयार हो जाय। साथ ही, इन प्रश्नों के उत्तर मनीषियों द्वारा दिये गये हैं; उनमे इतनी विभिन्नता है कि कभी-कभी तो ऐसा ज्ञात होने लगता है कि मानव-मस्तिष्क शायद ही इस विश्व के रहस्यों के परिज्ञानं मे कभी समर्थ हो सके। एक दार्शनिक की दृष्टि मे यदि इस विश्व का वास्तविक स्वरूप ऐसा है तो दूसरे की दृष्टि मे बिल्कुल दूसरे ही ढंग का। तीसरे दार्शनिक की विचार-पद्धति इन दोनों की विचार-पद्धतियो का संपूर्ण खंडन कर डालती है। अन्य प्रकार की विचार-पद्धतियाँ इन तीनों को इस प्रकार छिन्न-भिन्न कर डालती है कि कभी-कभी तो ऐसी प्रतीति होने लगती है कि मानो इन दार्शनिकों का काम्य सत्य नहीं है, वे अपनी-अपनी बौद्धिक शक्तियों के प्रदर्शन के लिए इसमें प्रवृत्त हुए है।

आज जितनी पुस्तकें उपलब्ध होती है, उनसे कई गुनी अधिक पुस्तके उन अतीतकालीन मनीषियों द्वारा लिखी गयी होंगी और यदि सभ्यता एवं संस्कृति के बुद्धिहीन शत्रुओं द्वारा वे नष्ट न कर दी गयी होतीं, तो शायद सत्य-जिज्ञासुओं को उनसे पर्याप्त सहायता मिल सकती थी, ऐसी सम्भावना है। किन्तु जितनी पुस्तके इस समय उपलब्ध हैं, उनमें किसी एक को भी इस योग्य नही कहा जा सकता कि यह हमें विश्व की वास्तविकताओं से अभिज्ञ कराती है। वे सत्य से बहुत दूर है, ऐसा कहना तो अनौचित्यपूर्ण होगा, लेकिन इतना अवश्य है कि उनका सत्य आधारभूत सत्

नहीं है—वह सत्य नहीं है, जो सत्य के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। सत्य का आभास उनमें है, क्योंकि सर्वथा मिथ्या इस विश्व में कुछ भी नहीं। पूर्ण असत्य की तो स्थिति ही नहीं है। इस कथन के साथ ही साथ यह कहना भी सार्थक है कि संसार में सब कुछ मिथ्या है क्योंकि इन दोनों उक्तियों का मूलभूत अर्थ एक है।

पथ को समझे बिना पथचारी बनना निरर्थक है, लेकिन असम्भव नहीं। उसी प्रकार संसार को समझे बिना भी हम संसारी हैं, किन्तु हमारा अस्तित्व सर्वथा निरर्थक है और तब तक निरर्थक ही रहेगा जब तक कि हम संसार को समझ नहीं लेते। मानवजाति के अधिकांश सदस्यों को भोजन और भोजन-जनित शक्ति के आधिक्य को दूर करने के लिए नर या नारी के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार की आवश्यकता की प्रतीति नहीं होती—इस पृथ्वी के अन्य प्राणियों की तरह। लेकिन ऐसे व्यक्तियों की भी कमी नहीं है जो इन दोनों से ऊपर उठकर सत्यानुसन्धान में अपने अस्तित्व को निवेदित कर चुके हैं। उनमें कितनों को सत्य की प्राप्ति हुई है और कितनों को नहीं, यह हम नहीं जानते। जानने का कोई साधन भी हमारे पास नहीं है। विज्ञान, दर्शन, धर्म प्रभृति का समुद्भव सत्यानुसन्धित्सासे एवं सत्य के प्रति विकसित मानवात्मा के प्रबल आकर्षण के कारण ही हुआ है।

मानव-जाति के प्रथम सदस्यों ने सत्य-परिज्ञान के माग में विकीर्ण कुश-कंटकों को दूर करने की भी पूरी चेष्टा की है। मानव-जाति के समुद्भव-काल से लेकर अबतक अनेकानेक व्यक्तियों

ने सत्य के ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रभूत प्रयास किये हैं—अनेकानेक कष्टों को सहन किया है—गृह-परिवार की ममता परित्याग करके नीरव, निर्जन स्थलों में फलाहार करते हुए जीवन-यापन किया है।

लेकिन सत्य आखिर है क्या ? सत्य की परिभाषाओं में भी भेद दृष्टिगत होता है, यह आश्चर्योत्पादक विषय है। परिभाषा-वैभिन्य चाहे जितना हो, सत्य उसी को कहा जा सकता है जिसका किसी अवस्था में भी अभाव न हो—जो चिरन्तन हो, शाश्वत हो, जो कारणों का भी कारण हो । योगिराज श्रीकृष्ण ने भी सत्य के सम्बन्ध मे यही कहा था। हमारे जीवन में अभाव भरे पड़े है—जिस संसार मे हम रहते है, वह अभावों से परिपूर्ण है। अतएव जिज्ञासु का मस्तिष्क स्वतः उस वस्तु की ओर आकृष्ट होता है जो अभावों से विरहित हो, शाश्वत हो। कुछ भी शाश्वत नहीं है, ऐसा तो हो नहीं सकता । इसकी तो, इस क्षणभंगवाद की तो कल्पना भी हास्यास्पद-सी मालूम होती है, भले ही बुद्धानुगामियों द्वारा इसका पुष्कल प्रचार क्यों न किया गया हो।

इसी चिरन्तन सत्ता में ही हमे इस परिवर्तनशील, विचित्र अभाव-पूरित विश्व की समुत्पत्ति के वास्तविक कारण मिल सकते है। विज्ञानवेत्ताओं और दार्शनिकों ने अपने मस्तिष्क की शक्ति और तर्कप्रवणता के बल पर विश्व के इस उद्गम को जानने का प्रयास किया है—धार्मिक व्यक्तियों ने प्राणों में श्रद्धा और विश्वास का सन्निवेश करके उसकी उपासना की है—कवियों एवं कलाकारों ने नेत्रों में अश्रु-विन्दु भर कर अपने प्राणों के विरह-जनित आर्त्तनाद के बल पर उसे पाने का—उसके द्वारा आलिङ्गित

होन का प्रयास किया है। इनमें से किसी एक के भी मार्ग को औरों के मार्ग की अपेक्षा हीन सिद्ध करना अन्याय होगा। प्रत्येक की अपनी महत्ता है—अपनी विशेषताएँ। सारा संसार शंकर, प्लैटो या कांट के पद-चिह्नों पर नहीं चल सकता और न सारी पृथ्वी मंसूर, कबीर, रामतीर्थ जैसों से ही भर सकती है। सूरदास का जो मार्ग था, वह औरों के मार्ग से किसी अवस्था में भी हीन नहीं था तथा औरों के मार्ग भी सूरदास के मार्ग से किसी अवस्था में भी हीन नहीं थे। निश्चयपूर्वक जो मार्ग सत्य की ओर ले जाय, उसे छोड़ कर शेष समस्त मार्ग अपने-अपने व्यक्तियों को लेकर अपने में महत्वपूर्ण है—उनकी निजी विशेषताएँ है जिनसे इन्कार नहीं किया जा सकता। विज्ञान, दर्शन, कविता और धर्म, ये चार पथ अन्य समस्त पथों को आत्मसात् कर लेते हैं। इनमें अधिक संख्यक मानवों ने अन्तिम का अवलम्बन किया है, क्योंकि अधिक-संख्यक मानव बुद्धि और हृदय दोनों की उच्च शक्तियों से विरहित होते है। शारीरिक सुख-सौविध्य से व्यतिरिक्त कामनाएँ उनके अन्तर्देश को हिल्लोलित नहीं कर पातीं। धर्म-पथ में श्रद्धा और विश्वास का प्राधान्य है जो संस्कारों द्वारा सहज ही समुत्पादित हो जाते है। लेकिन शेष तीन पथ सर्वसुलभ नहीं। उनका यात्री बनने के लिए विशिष्ट शक्तियों की आवश्यकता होती है। साथ ही संकट-सहन करने की क्षमता की भी आवश्यकता है। मानव-जाति की वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्था में तो वैज्ञानिकों, कवियों और दार्शनिकों को अन्य प्रकार की असुविधाओं का भी सामना करना पड़ता है, उदाहरणस्वरूप, भोजन, वस्त्र और गृह की एवं यात्रा प्रभृति

की असुविधाएँ। वर्त्तमान मानव-समाज वैज्ञानिकों, दार्शनिकों और कवियों की कृतियों से लाभ उठाने को तो समुद्यत रहता है, किन्तु उनके पार्थिव अस्तित्व की आवश्यकताओं की पूर्ति की ओर उसका ध्यान नहीं जाता। इसमे दोष सामाजिक व्यवस्था का अधिक है, व्यक्तियों का कम,—यद्यपि व्यक्तियों के दोष के कारण ही सामाजिक व्यवस्था इतनी दूषित होते हुए भी टिक रही है। जो धार्मिक है, उन्हे वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्था के अनुसार धनार्जन करने मे कोई कठिनाई नहीं होती, ऐसी बात तो नहीं है, लेकिन दार्शनिकों, कवियों और वैज्ञानिकों की अपेक्षा कम होती है। धर्म के पथ को अपनानेवाले धनर्जिन के योग्य कार्य-शक्तियों की उद्‌बुद्धि अपने में कर सकते है, लेकिन दार्शनिक, कवि और वैज्ञानिक ऐसा करने मे केवल असमर्थ ही नहीं हैं—वे अन्य कार्यों की ओर अपना मस्तिष्क लगा सकें, इतना समय कहाँ है। निम्नस्तर पर रह कर भी मनुष्य धार्मिक बना रह सकता है, किन्तु साधारण स्तर पर रहकर कवि, दार्शनिक या वैज्ञानिक बन कर रहना कठिन हो जाता है। इसी कारण इनके जीवन मे भौतिक क्लेशों का भी प्राचुर्य रहता है। मानव-समाज भी अपनी चिरागत प्रकृति के अनुसार उन्हे अपमानित करता है—जीवन-काल मे उन्हे तरह-तरह की यातनाएँ प्रदान करता है—मृत्यु के उपरान्त उनको समादृत करने के लिए। बहुत कम कवि, दार्शनिक या वैज्ञानिक ऐसे हुए हैं जिनको मानव-जाति उनके जीवन-काल में सुख दे सकी हो।

इन चार पंथों मे बहुत से व्यक्ति विज्ञान की महिमा का कीर्त्तन किया करते है—शेष पंथों की महिमा का निराकरण करते हुए।

वे कहते है, विज्ञान धीरे-धीरे आगे बढ़ता है—दार्शनिक एवं कवियों की तरह वह चरणनिक्षेप नहीं करता, लेकिन वह जो ज्ञान मानव-समाज को देता है, उसकी सत्यता में सन्दिग्ध होने का कोई कारण नहीं दृष्टिगत होता। विज्ञान व्यर्थ की कल्पनाओं द्वारा पोषित नहीं होता और न उसकी समुत्पत्ति व्यक्तिगत अपूरित कामनाओं के मलिन आलबाल मे ही होती है। इसमे कोई सन्देह नहीं कि विज्ञान की यह प्रशंसा सर्वथा अयौक्तिक नहीं है, लेकिन साथ ही साथ यह उसकी निभ्रान्तताको भी पुष्ट नहीं कर पाती। विज्ञानवेत्ता अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ही विश्व की अभिज्ञता प्राप्त करते है—इसके अतिरिक्त कोई दूसरा साधन उनके पास नहीं। यदि उनकी ज्ञानेद्रियों की संख्या विवर्धित कर दी जाय तो उनके वर्त्तमान संसार मे अवश्य अन्तर उपस्थित हो जायगा। एक विज्ञान-वेत्ता ने तो इसका प्रयोग भी अपने ऊपर करके देखा है। ज्ञानेद्रियों की संख्या बढ़ा सकने की क्षमता तो अभीतक किसी भी मानव में नहीं दृष्टिगोचर हो सकी है, लेकिन प्राप्त इन्द्रियों की क्षमता के परिवर्त्तन के लिए अनेक उदाहरण मिले है। इस विज्ञानवेत्ता ने भी अपनी नेत्रेन्द्रियों की शक्ति को परिवर्तित करके संसार की वास्तविकता पर प्रकाश निक्षिप्त किया। वह अपने नेत्रों पर कई वर्षों तक एक विशिष्ट चश्मा लगाये रहा। उस चश्मे से संसार की प्रत्येक वस्तु अपने अयथार्थ स्थान से ही दिखलायी देती थी। अशक्त मस्तिष्क भी इस बात को अच्छी तरह समझ सकता है कि ऐसा चश्मा लगा कर आदमी कोई काम नहीं कर सकता। प्रत्येक कार्य में उसे अप्रत्याशित कठिनाइयों का सम्मुखीन होना पड़ेगा। मार्ग मे चलेगा

तो चलने वालों से टकरा जाना पड़ेगा। भोजन करते समय भोजन के पात्र होंगे कहीं और हाथ पड़ेंगे कहीं। इस प्रकार का चश्मा पहन कर यदि कोई अपने शत्रु से लड़ना आरम्भ करे तो अपनी अच्छी दुर्दशा बना ले। उस विज्ञानवेत्ता को आरंभ में बड़ी कठिनाई हुई, लेकिन कठिनाइयाँ ही यदि सत्यान्वेषियों को तपस्या से विरत कर दें तो मानव-जाति विश्व के सम्बन्ध मे आज जितना जान सकी है, वह भी नहीं जान पाती। सब प्रकार की असुविधाओं का स्वागत करते हुए उसने दृढ़ निश्चय न कर लिया कि वह चार वर्षों तक उस चश्मे को नेत्र से अलग नहीं करेगा। अधिक दिनों तक उसे कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ा। कुछ ही महीनों में उसके हाथ वहीं पड़ने लगे जहाँ चीजें होती थीं। धीरे-धीरे उसे अपने इस नये संसार मे कुछ भी वैचित्र्य नहीं मालूम होने लगा। उसे पुरानी दुनिया की ही तरह यह नयी दुनिया भी स्वाभाविक मालूम होने लगी। उसके समस्त कार्य कलाप सुचारु रूप से चलने लगे। लेकिन जब निर्धारित अवधि की समाप्ति के उपरान्त उसने चश्मे का परित्याग किया तो उसके सामने फिर कठिनाइयाँ उपस्थित होने लगीं। संसार विचित्र मालूम होने लगा। इस प्रयोग से यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि हम जिस प्रकार का संसार देख रहे हैं, वह हमे अपनी वर्त्तमान ज्ञानेद्रियों के ही कारण स्वाभाविक मालूम होता है। ज्ञानेद्रियों की शक्ति के परिवर्त्तन से इस बाह्य जगत मे आश्चर्य-कारी परिवर्त्तन हो सकते हैं। अतएव संसार के जिस रूप का ज्ञान हमे इस समय हो रहा है, वह ठीक है, अन्य समस्त ज्ञान गलत हैं, यह कहने का दुस्साहस सर्वथा अवैज्ञानिकता का एवं अबौद्धिकता का

द्योतक है। विज्ञान कल्पना, अनुभूति, अन्तर्प्रेरणा प्रभृति पर विश्वास नहीं रखता। ज्ञानेंद्रियाँ उसके सम्मुख जिन पदार्थों या घटनाओं को उपस्थित करती हैं, उन्हीं पर विचार-विमर्श करता हुआ वह अपने प्रयोग-पथ पर चलता है। ज्ञानेंद्रियों की क्षमता के सम्बन्ध मे उस वैज्ञानिक का उदाहरण पर्याप्त है। रही घटनाओं और पदार्थों की बात। लेकिन विश्व की जितनी घटनाएँ और जितने पदार्थ वैज्ञानिकों की पहुँच मे है, उनका इस विश्व मे महत्त्व ही क्या है! ज्यों-ज्यों नयी-नयी घटनाएँ एवं नये-नये पदार्थ समक्ष आते जाते है त्यों-त्यों विज्ञान आश्चर्यचकित होता हुआ पुराने विचारों का परित्याग करता हुआ आगे बढ़ता है। उसके चरण बढ़ते है, इसमे कोई सन्देह नहीं और वह कवि, दार्शनिक के प्रति अपने अभिमान का प्रदर्शन करता हुआ यह बतलाता भी है कि वह भ्रम मे नहीं है, क्योंकि उसने अपने सत्य को प्रयोग द्वारा प्राप्त किया है, लेकिन बाहर से प्रभूत विश्वास-प्रदर्शन करते हुए भी वह अन्दर ही अन्दर शांसयिक बना रहता है,—कहीं मैं भ्रम मे तो नहीं हूँ।

कवि के पास तो ये प्रश्न ही नही है। वियोग की मार्मिक वेदना लिये हुए वह अपने आराध्य के अन्वेषण मे चीत्कार करता हुआ जीवन-पथ पर चलता जाता है। संसार मे जो कुछ हो रहा है, सब उसके प्रियतम की माया है—उसी की क्रीड़ा है जो हो रहा है या जो नहीं हो रहा है, इससे उसे क्या? उसे तो अपने मनमोहन के पास जाना है। उसके सौन्दर्य-चिन्तन के अतिरिक्त उसकी बुद्धि और कुछ सोचना नहीं चाहती। उसकी मोहकता के वर्णन में उसके दिन और उसकी राते व्यतीत हुआ करती है

उसे सत्य की खोज करनी है, लेकिन उसकी खोज में और वैज्ञानिक की खोज मे महान् अन्तर है। कवि को यहाँ भी सौन्दर्य दृष्टिगत होता है, वहीं वह अपने जीवनधन का आभास पाता है। प्राची-पथ में उषा की स्वर्णिम किरणें उसे अपने प्रियतम के किरण-निर्झर चरणों की याद दिलाती हैं। पूर्णिमा की मोहमयी यामिनी में सुधांशु-श्री उसे प्रियतम के शरीर पर बिखरी हुई ज्योत्सना की स्मृति में विह्वल कर देती है। उसके वियोग में क्रन्दन करता हुआ वह गाता है—

> पर न मिलते प्राण के वे मीत, वे मन के निवासी,
> इन उमंगों के प्रलय में मिट रही पगली जवानी।
> जल रहा प्यासा हिया, मेरे पिया की यह निशानी।

कवि के लिए सौन्दर्य का प्राधान्य है। सौन्दर्य ही उसका पथ है और सौन्दर्य का चिरन्तन, शाश्वत केन्द्र ही उसका काम्य। सौन्दर्य की उपासना ही उसके जीवन के प्रयेक पल में ओत-प्रोत रहती है। विश्लेषण और संलेषण उसका कार्य नहीं है। उसकी दृष्टि सृष्टि के परिवर्त्तनशील एन्द्रजालिक दृश्य में सौन्दर्य प्रतिबिम्ब ढूँढ़ती रहती है। प्राभातिक प्राची-क्षितिज में जो स्वर्ण-केसरं बिखर गया है, उसकी श्री-सुषुमा कवि के अन्तर्देश में अभिनव गीतों की सृष्टि करती है,—उसके अन्तस्तल को मधुमयी भावनाओं की अनवद्य धारा से नहलाती है। उसके वर्त्तमान रूप के कारणों से वह नहीं ढूँढ़ता है, ऐसी बात नहीं है। प्रभात-गगन में इतनी सुषमा कहाँ से बिखर गयी है, यह जानने की दुर्दम लालसा उसके

मस्तिष्क में भी हिल्लोलित हो उठती है, लेकिन उसकी चिन्ता सौन्दर्य पर आधारित होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समस्त चिन्ताधाराएँ एक र पर अवरुद्ध हो जाती हैं। उनकी गति का अवरोध हो जाता स्तम्भित और विस्मय-विमूढ़ होकर मानव मस्तिष्क तरह-तरह कल्पनाएँ करने लगता है। तरह-तरह के जटिल प्रश्न उसको सं करने लगते हैं, लेकिन उनका जो उत्तर होता है, वह स्वयं अ उपहास करता हुआ-सा प्रतीत होता है।

संसार की कोई भी चिन्ताधारा गर्व के साथ यह नहीं सकती कि उसका पथ संशयों की कठोर बाधाओं से विनिर्मुक्त है,—मसृण समतल भूमि से होकर वे निरन्तर प्रव हुई हैं। दार्शनिकों की चिन्ताधारा में सांशयिकता का जो आ है, वह आश्चर्यकर है। उसमें जो विपुल विभेद है, वह भी विस त्पादक नहीं। लेकिन जब हम देखते हैं कि पैगम्बरों और मसी द्वारा प्रचारित धर्मों में भी अत्यधिक भिन्नता है— सम्बन्धित उनकी विचारधाराओं में महान् अन्तर विद्यमान है हमारा आश्चर्य कुछ बढ़-सा जाता है। जो अपने को ईश्वर का कहते हैं और जिनको इस बात का विश्वास है कि वे जो प्रचारित कर रहे हैं, वह प्रभु की प्रेरणा से हो रहा है. उसमें विचारैक्य क्यों नहीं ? एक ईश्वर का दूत ऐसी बातों का प्रचार दुनिया से विदा ग्रहण कर लेता है तो दूसरा दूत कुछ दूसरी ही का प्रचार करके। सत्य अनेक नहीं हो सकता। वह तो एक ही विभिन्न रूपों में उसकी अनुभूति अवश्य होती है और हो ही रहे

तो हम देखते हैं कि न तो दार्शनिक ही सृष्टि की वास्तविकत पर यथोचित प्रकाश निक्षिप्त कर पाते हैं और न धर्मोद्भावकगा ही। धर्मोद्भावकों ने तो सृष्टि सम्बन्धी भ्रमपूर्ण ज्ञान के प्रचार ं साथ-साथ और भी बहुत सी गलतियाँ की हैं। सामाजिक अशानि को दूर करके मानवी समाज को सुखी एवं समृद्ध करने के लि उन लोगों ने जिन उपदेशों का प्रचार किया, उनका क्या परिणा निकला? अहिंसा का पालन करो, क्रोध मत करो, सत्य बोलो, प द्रव्यापहरण न करो, सब पर दया करो—इन उपदेशों ने करीब करीब समस्त धर्मों की भित्ति का काम किया है। दुनिया के किस भी धर्मोद्भावक ने मिथ्या भाषण का प्रचार नहीं किया। क्रूरत का पाठ प्रकट रूप में किसी भी धर्म-प्रचारक ने नहीं पढ़ाया। धनहं व्यक्तियों की सहायता करने की शिक्षा प्रायः सब ने दी है। कि कितने आश्चर्य की बात है कि उनके अनुयायियों की संख्या अत्यधि होते हुए भी इस ग्रह का कोई भी भाग ऐसा नहीं है जहाँ क्रूरत का नग्न प्रदर्शन नहीं होता हो—जहाँ बुभुक्षितों और गृहहीनों व करुण क्रन्दन श्रुतिगोचर न होता हो—जहाँ का वातावर मिथ्या भाषण से कुत्सित नहीं बनाया जाता हो! गौतम बुद्ध अहिंसा का प्रचार किया था। उनके धर्म में प्राणि-दया का स्था सर्वोच्च था। किन्तु उनका अनुयायीवर्ग जिस निर्दयता का परिच दे रहा है, वह मानवी इतिवृत्त में अपना एक विशिष्ट स्थान रखेगी जीसस क्राइस्ट ने कहा था कि धनी व्यक्ति के लिए स्वर्ग-प्रवेश उत ही असम्भव है जितना कि सूई के छेद से ऊँट का निकल जाना लेकिन उनके कितने अनुयायियों ने इस उपदेश को कार्यरूप में परिण

किया। औरों की बात जाने दीजिये, स्वयं पोपों और विशपों ने धन के एकत्रीकरण का जो उदाहरण दुनिया के सामने रखा है, वह क्रिश्चियन धर्म से अभिज्ञ, किन्तु मानवी स्वभाव से अनभिज्ञ व्यक्ति को विस्मयान्वित कर सकता है।

इन विचित्र विपर्ययों पर विचारक किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है। यहाँ तो मुझे केवल यही दिखलाना है कि जिस प्रकार दार्शनिकों की विचारधारा निर्बल और ज्योति-विरहित है, उसी प्रकार इन तथा-कथित ईश्वर-दूतों की विचारधारा भी। शंका-पीड़ित मानव मस्तिष्क को उनसे शान्ति की उपलब्धि नहीं हो सकती। हाँ, तार्किकता को एवं सत्यासत्य की विवेचना शक्ति को अलग रख कर केवल विश्वास के बल पर यदि उनका अनुगमन किया जाय तो निस्सन्देह लाभ हो सकते हैं, लेकिन वे लाभ विश्वास से समुद्भूत हैं, पथ-विशेष की सत्यता से नहीं। विश्वास की शक्तियों से अब धीरे-धीरे लोग अभिज्ञ हो चले हैं। मनोविज्ञानवेत्ता भी विश्वास का महत्व मुक्तकण्ठ से स्वीकार करने लगे हैं।

धर्म-पथ के अनुगामियों में न तो वैज्ञानिकों की-सी विश्लेषणात्मक मनोवृत्ति ही होती है और न कवि की-सी सौन्दर्यात्मक चिन्तन-धारा ही। वहाँ विश्वास का प्राधान्य है। विशिष्ट धर्मों के विशिष्ट उद्भावकों ने जिन सिद्धान्तों की विरचना कर दी, वे उनको आँखें मूँदकर मानते हैं। अपने धर्मोद्भावकों पर उनका अगाध विश्वास होता है—अजेय आस्था होती है। बौद्ध धर्म के अनुयायी महात्मा बुद्ध की बुद्धि पर कभी शंका नहीं कर सकते। यह विचार भी उनके लिए अपवित्र है कि महात्मा बुद्ध का मस्तिष्क

भी गलतियाँ कर सकता था और उनके द्वारा प्रचारित उपदेशों का आधार भी गलत हो सकता है। क्रिस्चियन धर्म के अनुयायी क्राइस्ट की शक्तियों पर कभी अविश्वास नहीं कर सकते। जीसस क्राइस्ट ने जो कुछ कहा है, उसे वे अवश्य मानेंगे चाहे उनको तर्क द्वारा कितना ही क्यों न समझाया जाय। वे अपनी बुद्धि पर अविश्वास कर सकते हैं, लेकिन क्राइस्ट पर नहीं। क्राइस्ट से अधिक महान् वे किसी को मानते भी नहीं। इसी प्रकार दुनिया के अन्य धर्मावलम्बी भी अपने-अपने धर्मोद्भावकों पर अपरिमित आस्था रखते हैं। इस्लाम धर्म का अनुयायी मुहम्मद के सामने किसी को कुछ नहीं समझता। पंजाब के सिख गुरु नानक को जितना महान् समझते हैं यह किसी नानकपन्थी से मिलने पर अच्छी तरह मालूम हो सकता है। आर्य समाजी ऋषि दयानन्द के वाक्यों को वेद-वाक्य मानते हैं और मूर्त्तिपूजा के कट्टर विरोधी होते हुए भी ऋषि दयानन्द की प्रतिमा की विभिन्न प्रणाली से पूजा करते हैं। कहने का तात्पर्य, धार्मिक व्यक्तियों मे तार्किकता प्रभृति का प्राधान्य नहीं, विश्वास का प्राधान्य होता है। लेकिन यह बात सच्चे धार्मिक व्यक्तियों के लिए है उनके लिए नहीं, जो धार्मिकता का आडम्बर रचते हैं और उसकी आड़ मे अपने मूर्खतापूर्ण भौतिक स्वार्थों की सिद्धि का प्रयास किया करते हैं।

दार्शनिक की विचारधारा की भाँति या वैज्ञानिक की प्रयोग पद्धति की भाँति बौद्धिक आयास का कोई भी स्थान धार्मिक व्यक्तियों के पास नहीं है। वेद, बाइबिल, पुराण या जिन्दावेस्ता या कुरान में जो कुछ लिखा हुआ है, उनके अवतारों, ऋषियों या पैगम्बरों ने

जिन उपदेशों का प्रचलन किया था, उसको वे नतशिर होकर मानते हैं। जो हिन्दू हैं, वे मन्दिर और तीर्थों को दुनिया के सर्वाधिक पवित्र स्थान मानते हैं; जो मुसलमान हैं, वे मस्जिदों और मक्का-मदीना की पवित्रता के सामने किसी स्थान को कुछ नहीं समझते। जीसस क्राइस्ट के अनुयायियों को गिरजाघरों के अन्दर संसार की सारी पवित्रता दृष्टिगत होती है।

भ्रान्त होते हुए भी इन विभिन्न धर्मोद्भावकों द्वारा निर्दिष्ट पथ में चलनेवालों की पर्याप्त आत्मिक उन्नति हुई है, इसमे कोई सन्देह नहीं। उन्हीं की क्यों, सत्य की प्राप्ति-कामना को अन्तर्देश मे ज्योतित करके किसी भी पथ में चलने से उन्नति सम्भव है। इसमें विश्वास ही नहीं, एक कारण और भी है, और वह यह कि इन विभिन्न चिन्ताधाराओं मे इतनी विभिन्नता होते हुए भी एक ऐक्य सब मे दृष्टिगत होता है। प्रत्येक चिन्ताधारा वर्त्तमान परिस्थितियों से असन्तुष्ट है और भविष्य की किसी महान् स्थिति में जाने के लिए सचेष्ट है।

वर्त्तमान परिस्थितियों के प्रति यह भीषण असन्तोष सर्वत्र दृष्टिगत होता है। दार्शनिक भी जब यह कहता है कि वह अपने वास्तविक स्वरूप को विस्मृत करके माया के पाश मे आबद्ध हो गया है, इसीलिए उसका जीवन दुःखों और दुश्चिन्ताओं से आक्रान्त हो गया है, अतएव उसे अज्ञान-पाश को छिन्न-भिन्न करके अपने को पहचानने का प्रयास करना चाहिये, उस समय वह उसी भावना की अभिव्यक्ति करता है।

इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि ये समस्त पथ एक ही कामना

से समुद्भूत हुए हैं और वह है जीवन के इस विचित्र, छलनामय एवं कुत्सित, दुःखमय रूप से हट कर शाश्वत, सुन्दर और दुःखहीन रूप में जाना। दार्शनिक सत्य को जानना चाहता है, इसलिये कि उसे इस संसार से संतोष नहीं है,—यहाँ के कण-कण मे बिखरी हुई क्रन्दन-ध्वनि उसे अप्रिय होती है,—यहाँ की छलनाओं से उसकी अन्तरात्मा पीड़ित हो उठी है,—वह उस पार को समझना चाहता है—पाना भी। धार्मिक व्यक्ति का उद्देश्य भी यही है। उसका नरक कष्टों का आगार है; स्वर्ग सुखों की क्रीड़ाभूमि। संसार में उसे जो सुख दिखलायी देता है, वह मृगमरीचिका तुल्य है। फलतः वह शाश्वत सुख की कामना लेकर धर्म-पथ का अनुगमन करता है। अपने धर्म-ग्रन्थों का पाठ करता है। अपने धर्मोद्भावकों की स्तुति करता है—उनके महत्व का कीर्त्तन करता है। कवि के प्राणों की पीड़ा तो इन सब से आगे बढ़ी हुई होती है। अपने चिर सुन्दर प्रितयम का अभाव इस असुन्दर लोक मे उसे पीड़ित करता रहता है। उसकी साधना का उद्देश्य ही होता है अपने चिर सुन्दर प्रियतम का साहचर्य और प्रवञ्चनामय वियोग के इन कटु दिवसों का अवसान।

बाहर से देखने पर चाहे स्वरूप-वैचित्य कितना ही सशक्त क्यों न प्रतीत हो, उसके अन्तराल में दुःखों से मुक्त होने की कामना ही जागरूक रहती है। वैज्ञानिक में जिज्ञासा का आधिक्य होता है—कवि में विरह की पीड़ा का और धर्मानुयायी में विश्वास का, किन्तु उद्गम स्थल सब का एक है। दर्शन, कविता, धर्म और विज्ञान सब के केन्द्र मे इस मायालोक के क्लेशों और छलनाओं

से मुक्त होकर शाश्वत और सुन्दर के साहचर्य की ही कामना नानाविध रूपों मे हिल्लोलित होता रहती है।

प्राचीन चिन्ताधाराओं में भारतवर्ष के कृषियों का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण है। कपिल, कणाद, वेदव्यास, पतञ्जलि, शंकर प्रभृति प्राचीन भारतीय ऋषियों द्वारा अज्ञान-तिमिर को विदीर्ण करके सत्य की किरणों के आवाहन का जो पावन एवं अनवरत प्रयास हुआ है, वह मानव जाति के इतिवृत्त मे नीलम के अक्षरों में लिखे जाने योग्य है; संसार का सारा वैभव-विलास परित्याग कर—इन्द्रियजनित सुखोपभोगों के प्रति प्राणों मे प्रचण्ड घृणा का जागरण कर निर्जन वनस्थली में सरिता के निर्जन प्रतीर पर बैठकर सत्यान्वेषण करने का वह प्रयास आज भी हमारी कल्पना को एक स्वर्गिक भाव से स्नात-सा कर देता है।

इसके साथ ही यूनान के विचारकों का स्थान भी कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। सुकरात, प्लेटो, अरस्तू प्रभृत यूनानी विचारकों की सत्य-साधना से प्रज्ञान का यह सुनिविड़ तिमिर-जाल भले ही दूर न हुआ हो, लेकिन भावी दार्शनिकों की सत्य-साधना को पर्याप्त सहायता मिली है। यूरोप के समस्त सत्यान्वेषी उन महामहिम दार्शनिकों के ऋणी रहे हैं। प्लेटो, अरस्तू प्रभृत दार्शनिकों की पुस्तकों से दकार्ते, नीत्शे, कांट शोपेहावर प्रभृत समस्त योरोपियन दार्शनिकों को प्रभूत प्रेरणा प्राप्त हुई है।

पाश्चात्य विचार-धारा में और पूर्वीय विचार-धारा में जो महान् अन्तर है, वह यही है कि पाश्चात्य दार्शनिकों ने बुद्धि पर अधिक जोर दिया है, और पूर्वीयों ने अन्तर्प्रेरणा पर। 'दर्शन' शब्द

द्वारा ही इस महान् विभेद का सम्यक परिचय मिल जाता है। और यह शब्द इस बात पर स्पष्ट प्रकाश डालता है कि जिस समय इसका प्रयोग एवं प्रचलन आरम्भ हुआ था, उस समय तार्किक निगमनों की अपेक्षा प्रज्ञा एवं अन्तर्दर्शन को अधिक महत्त्व दिया जाता था। इन्द्रियजनित अनुभवों द्वारा प्राप्त ज्ञान के बौद्धिक संश्लेषण-विश्लेषण के प्रति अनास्था का पोषण इस शब्द के समुद्भावक के मानस-लोक मे ही नहीं था, अपितु उस समय के अधिकांश विचारकों की भी अन्तःप्रेरणा पर ही आस्था थी, अन्यथा यह शब्द इतनी ख्याति नहीं प्राप्त कर पाता। भारतवर्ष मे भी फिलॉसफी के ही अर्थ का द्योतक कोई शब्द सत्यान्वेषण के पद की विचारधारा के लिए निकाल लिया गया होता। उस ज्ञान के लिए, जो इन्द्रियों द्वारा या तार्किक निगमनों द्वारा नहीं प्राप्त हो सकता, भारतीय दार्शनिकों ने यत्र-तत्र प्रतिभा शब्द का प्रयोग किया है।

यह बात केवल हिन्दू दार्शनिकों के लिए ही नहीं, बौद्धों के लिए भी कही जा सकती है। आरम्भिक बौद्ध धर्म में प्रज्ञा को मानवी मस्तिष्क की सर्वोत्कृष्ट क्रिया माना जाता था। बुद्धघोष ने भी विज्ञान की अपेक्षा प्रज्ञा को उच्च स्थान प्रदान किया था।

लेकिन पाश्चाय दार्शनिकों के साथ ऐसी बात नहीं है। उन्होंने प्रज्ञा की अपेक्षा विज्ञान को आरम्भ से ही अधिक प्रश्रय दिया है। अपवादों की कमी नहीं है। पाश्चात्य संसार में भी ऐसे व्यक्ति हुए हैं जिन्हें विज्ञान की अपेक्षा प्रज्ञा अधिक विश्वसनीय मालूम हुई है। लेकिन अधिकांश दार्शनिकों द्वारा वहाँ प्रज्ञा की अपेक्षा

विज्ञान को ही अधिक उच्चस्थान दिया गया है। कई दार्शनिकों ने तो प्रज्ञा की शोचनीय अवहेलना की है।

इसी प्रकार यह बात भी नहीं है कि समस्त पूर्वीय विचारकों ने प्रज्ञा को विज्ञान की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण समझा है। यहाँ भी ऐसे विचारक हुए हैं जिन्हे प्रज्ञा निरर्थक प्रतीत हुई है, लेकिन प्राधान्य उन्हीं का रहा जिन्होंने विज्ञान की उपेक्षा करके प्रज्ञा को अपनाया। उसी तरह, जिस तरह पाश्चात्य संसार में विज्ञान के पक्षपातियों को प्रधानता मिली।

ग्रीक दार्शनिकों में वैज्ञानिक विचार-पद्धति का ही प्राधान्य रहा। फिर भी अन्तर्प्रेरणा की शक्ति पर वे आस्था रखते थे। प्लेटो की दार्शनिक विचार-धारा मे यद्यपि तार्किक विचार-पद्धति का प्राधान्य है, तथापि वह कुछ ऐसी बातों पर विश्वास रखता था जिन्हे अन्तर्प्रेरणा के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता। अरस्तू ने अपने ग्रन्थ में सुकरात को दो बातों के लिए महत्ता प्रदान की है। एक तो निगमनात्मक तर्क और दूसरी सार्वत्रिक परिभाषा। किन्तु इनके साथ ही सुकरात को इस बात का विश्वास था कि उसके जीवन-पथ में किसी अदृश्य देवदूत से साहाय्य प्राप्त होता था।

गणितज्ञों की-सी विचार-पद्धति का प्राधान्य परवर्ती पाश्चात्य दार्शनिकों में खूब रहा। वर्त्तमान पाश्चात्य दर्शन के जन्मदाता दकार्ते ने Discourse on Method में स्पष्ट रूप से लिखा था—"In our search for the direct road towards truth, we should busy ourselves with no object about which we cannot attain a certitude equal to

that of demonstration of arithmetic and geometry" स्पिनोजा, लाइवनिट्स प्रभृत विद्वान भी रेखागणित की प्रणाली का अवलम्बन सत्यान्वेषण-पथ में श्रेयस्कर समझते थे।

बीसवी शदीके विचारकों ने वैज्ञानिक पद्धति को ही सत्यान्वेषण के लिए सर्वाधिक उपयुक्त समझा है और वे सभी क्षेत्रों में इसका अवलम्बन कर रहे हैं।

यहाँ एक बात विचारणीय है। वैज्ञानिक विचार-पद्धति के अवलम्बन को श्रेयस्कर मानते हुए भी बहुत से मनीषियों ने अन्तर्प्रेरणा के महत्त्व को मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है। क्रोस का कथन था कि तार्किक ज्ञान हमें व्यष्टि से एवं वास्तविकता से भावात्मक जगत् मे ले जाता है और अन्तर्प्रेरणात्मक ज्ञान हमें व्यष्टि के भीतर ही एक अन्तर्दृष्टि की क्षमता प्रदान करता है। The Philosophy of Croce मे विल्डन कार ने इस पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—Knowledge has two forms; it is either intuitive knowledge oı logical knowledge; knowledge we acquiie by imagination or knowledge we acquire by intellect; knowledge of individual or knowledge of the universal; knowledge is in short, either productive of images or productive of concepts.

इस प्रज्ञाशक्ति को बहुतों ने हमारी कल्पना-शक्ति का ही एक रूप माना है, लेकिन कल्पना में और इसमें महान् अन्तर है। पर राधाकृष्णन् ने अपनी पुस्तक An idealistic view of life में

लिखा है—It is not fancy or make-believe, but a bonafide discovery of reality. We can see no1 only with the eyes of the body but with those of our souls. Things unseen become as evident to the light in the soul as things seen to the physical eye. Intuition is the extension of perception to regions beyond sense'

वर्गसन ने भी अन्तर्प्रेरणा को ही महत्त्व प्रदान किया है। बौद्धिक विचार-शक्ति को उसने कार्य-क्षमता के लिए उपयोगी माना है और सत्य के परिज्ञान के लिए प्रज्ञा को।

जो हो, इतना तो निश्चित है कि इस ग्रह के जैन अधिवासियों ने विश्वास और कल्पनाओं की अपेक्षा वैज्ञानिक विचार-पद्धति से सत्य के परिज्ञान की चेष्टाएँ की है, अन्तर्प्रेरणा के महत्त्व को किसी न किसी रूप में स्वीकार किया है। यही क्यों, कई विज्ञान-वेत्ताओं ने तो अपनी वैज्ञानिक गवेषणाओं एवं महत्त्वपूर्ण अविष्कारों में भी बौद्धिक तर्कशक्ति की अपेक्षा अन्तर्प्रेरणा को ही महत्त्व प्रदान किया है। और यही बात है भी। नब्बे प्रतिशत वैज्ञानिक आविष्कार, जिनके अभाव में इस ग्रह का स्वरूप अतिशय अन्धकारमय रहा होता, बुद्धि की तार्किक पद्धति से समुद्भूत नहीं हुए है। उनमें प्रज्ञा का प्राधान्य रहा है। आविष्कारकों के मस्ष्कि में जैसे उस विशिष्ट ज्ञान की कतिपय चन्द्र-किरणें स्वतः विद्योतिक हो उठी थीं। उन्होंने उन किरणों की आभा का महत्त्व समझा, बुद्धि से सहायता ली और और तब अपने अहर्निश की अक्लान्त साधना एवं तपस्या

द्वारा मानव-जाति को नूतन चीजें प्रदान कीं। तार्किक विचार-पद्धति का महत्त्व उनके आविष्कारों में कम नहीं है, लेकिन उससे कहीं अधिक महत्त्व उन अनाहूत चन्द्र-किरणों का है जो न जाने किस लोक से उतर कर वैज्ञानिकों के मस्तिष्क में प्रविष्ट हुईं और जिन्होंने थोड़ा-सा आलोक बिखेर दिया।

इस प्रज्ञाशक्ति के सम्बन्ध में नाना प्रकार के सिद्धान्त प्रचलित ह। उन सिद्धान्तों के खण्डन का प्रयास यहाँ अभीप्सित नहीं। हाँ, इतना अवश्य कहूँगा कि जिसे हम बुद्धि कदते है, उससे इसका सम्बन्ध बहुत कम है। Essays on the human understading मे लॉक ने इस प्रज्ञाशक्ति के सम्बन्ध मे लिखा है—The mind is at no pains of proving or examining, but perceives the truth as the eye does light, only by being directed towards. यह परिभाषा वस्तुतः ठीक है।

कभी-कभी प्राणपीड़क चेष्टा करके भी हम किसी चीज को नहीं जान पाते। हमारी रात्रि-दिवस की साधना अपनी विफलता पर अश्रु-मोचन करने लगती है। और कभी किसी प्रकार के प्रयास के बिना ही न जाने किस ज्योतिर्मय लोक से सत्य की कनक किरण अवतरित होकर हृदय-पद्म पर बिखर जाती है—उसकी मुद्रित पंखड़ियों को खोलती हुई—उसके बन्द सौरभ-द्वार का उन्मोचन करती हुई!

अन्तर्प्रेरणा से और बौद्धिक व्यायाम से विश्व के रहस्य पर विचार करते हुए और नानाविध निष्कर्ष निकालते हुए इस ग्रह के दार्शनिक नानाविध निष्कर्षों पर पहुँचे हैं। वर्तमान युग में तो यूरोप

के विचारकों का महत्त्व है ही, लेकिन प्राचीन युग में शताब्दियों से पराधीनता की काला, कुरूप, लौह शृङ्खलाओं मे जकड़े हुए इस भारतवर्ष की, यूनान की, चीन की और मिश्र की चिन्ताधाराएँ ही अधिक महत्त्वपूर्ण हे और इतिहास का जितना ज्ञान इस समय मानव-जाति को उपलब्ध है, उसके आधार पर इन्हीं देशों की चिन्ताधारा प्राचीन चिन्ताधाराओं मे सर्वाधिक महत्त्व रखती है।

भारतीय चिन्ताधाराओं मे जिसने संसार को अत्यधिक आकर्षित किया है, वह है अद्वैतवाद। अद्वैतवादी इस विश्व का अस्तित्व ही नहीं मानते। उनकी दृष्टि मे यह विश्व एक भ्रम है,—अज्ञान के कारण ऐसा प्रतीत होता है। जो कुछ है, वह ब्रह्म ही है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। संसार की समस्त वस्तुओं मे ईश्वर है, यह कहना उनके सिद्धान्त के अनुसार ठीक नहीं है; बल्कि यह कहना ठीक है कि संसार की समस्त दृष्ट और अदृष्ट वस्तुएँ ईश्वर ही है,—ईश्वर के अतिरिक्त वे और कुछ भी नहीं है। मेरे इस कमरे के सामने जो विटपी अपनी हरीतिमा से—प्राभातिक कनक-किरणों से चुम्बित हरीतिमासे मेरे चित्त को आह्लादित कर रहे है, वे भी ईश्वर है, मेरा चित्त भी ईश्वर है, यह आह्लाद भी ईश्वर है। स्वयं मै ईश्वर हूँ। सुनील अन्तरिक्ष पथ में दिखरी हुई ये श्वेत मेघमालाएँ जो अंशुमाली के आलोक से नूतन ज्योति प्राप्त कर रही है, ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। इस चिन्ताधारा के अनुसार जगत् की कोई अवस्थिति ही नहीं है। ये मैदान, ये सड़कें, धनोपार्जन चिन्ता में व्यस्त ये पथचारी, नर-नारी, कुत्ते, ये गायें—इन चीजों को मै देख रहा हूँ। फिर

कैसे मानूँ कि ये चीजें नहीं है तथा इनका कोई अस्तित्व नहीं है। लेकिन भारत का अद्वैतवाद कहता है कि ये समस्त चीजें हमारे अज्ञान से समुद्भूत हैं। ये चीजे ही नहीं, हमारी यह देखने की क्रिया भी एक भ्रम ही है। यह ज्योतिर्मय देवता जो प्राची-पथ से प्रविष्ट होकर निखिल वसुन्धरा को आलोक-धारा से नहलाता हुआ जा रहा है, भ्रम के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। पूर्णिमा की ज्योत्स्ना-स्नात यामिनी मे धरित्री को स्वर्णिम परिधान पहनाने वाला पूर्णेन्दु भी एक भ्रम ही है। ये कोटि-कोटि सूर्य, चन्द्र, ग्रह, उपग्रह सबके सब भ्रम से समुद्भूत है;—इनका कोई अस्तित्व ही नहीं है। आत्माओं का यह आगमन और प्रत्यागमन भी अज्ञान के कारण ही मालूम होता है। न कहीं कोई जीव है, न कहीं कोई जगत्। अपने सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए ये अद्वैतवादी कहते हैं कि जिस प्रकार सूर्य एक ही है, लेकिन सहस्रों जलविन्दुओं में वह सहस्रों रूप में दिखलायी देता है, उसी प्रकार एक ही ब्रह्म नाना रूप में दृष्टिगत होता है। उसी प्रकार प्रत्येक जीव उस चिरन्तन सत्ता का ही प्रतिबिम्ब है। प्रतिबिम्ब वह है, अज्ञान के आरण; वास्तव में तो वह चिरन्तन सत्ता ही है। जन्म धारण, जीवन धारण और फिर एकाएक मृत्यु-देवता के द्वारा जीवन-दीपकका निर्वापित कर दिया जाना एक स्वप्न के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

विश्व को और विश्व की इन समस्त क्रियाओं को अस्वीकार करने का प्रधान कारण यह है कि आखिर ब्रह्म विश्व के रूप में परिवर्तित कैसे हो गया। यदि वह सम्पूर्ण परिवर्तित हो गया है, तब तो अब ब्रह्म का अस्तित्व ही कहाँ रहा? यदि वह सम्पूर्ण

परिवर्त्तित नहीं हुआ है, तो जितना अंश परिवर्तित हो गया है, उतना ब्रह्म में से अवश्य कम हो गया। अब यदि ब्रह्म मे परिवर्त्तन होता है तो वह मुक्त और शुद्ध कहाँ रहा ? परिवर्त्तन मुक्ति का विरोधी है। दोनों की संगति नहीं बैठती। जहाँ विवर्त्तन होगा, वहाँ बन्धनों का अस्तित्व अनिवार्य है। इस प्रकार के भ्रमों को ही सदा के लिये नष्ट कर देने के लिये अद्वैतवादियों ने संसार के अस्तित्व को ही अस्वीकार कर दिया।

इस ग्रह की प्रधान दार्शनिक चिन्ताधाराएँ साधारण दृष्टि से देखने पर भी कितनी विभ्रांतिकर मालूम होती है, इसका आभास अद्वैतवाद से अच्छी तरह मिल जाता है।

विचारक बीसवीं शताब्दी का हो, चाहे पहली शताब्दी का, चाहे ईसा से चार हजार वर्ष पहले का है। उसका जन्म मिश्र में हुआ हो, चाहे यूनान मे; चीन मे हुआ हो चाहे भारत मे। संसार के दुःखों की विपुलता ने उसे बेतरह संत्रस्त किया है,—मानव जाति की जीवनधारा की इन क्रन्दन-निरत मेघमालाओं को देख कर वह एक भीषण असन्तोष से भर उठा है।

कोई भी दार्शनिक ऐसा नहीं हुआ है, जो इस दुनिया से सन्तुष्ट रहा हो और मान-जीवन को विधाता का सर्वोत्कृष्ट अवदान समझता हो। यहाँ मै उन दार्शनिकों की बात कह रहा हू, जो वास्तव में दार्शनिक थे,—जिनके पार्थिव अस्तित्वका प्रत्येक कण सत्य की खोज में विस्तृत आलोक रश्मियों के अभाव से अज्ञान के भयंकर तिमिर-पथ में क्रन्दन करता रहा है !

दार्शनिक हो, चाहे धार्मिक और चाहे कवि, इस ग्रह की जीवनचर्या

से कोई सन्तुष्ट नहीं। सब इसे दुःखालय समझते हैं। इससे मुक्त होने की कामना सभी के अन्तर-अन्तराल में प्रज्वलित है। भले ही कोई यहाँ से मुक्त होने के बाद ईश्वर-सन्निधि को अपना काम्य समझें या स्वर्ग-निवास को।

लेकिन यह भावना दार्शनिक, वैज्ञानिक और धार्मिक व्यक्तियों की अपेक्षा कवि में अधिक प्रखर रूप में दिखलायी देती है। इस पार की दृश्यावली उसके प्राणों को सदैव पीड़ित करती रहती है। इस मायालोक में बन्धन ग्रस्त हो कर उस की अन्तरात्मा क्रन्दन करती रहती है। आकाश-पथ मे बिखरे हुए तारों को देख कर उसे अपने घर की याद हो आती है और वह इस संसार को छोड़ कर घर की ओर चल देने की दुर्दमनीय कामना से हिल्लोलित हो उठता है। लेकिन जिन बन्धनों में उस की आत्मा जकड़ी हुई है, उनसे वह मुक्त भी तो हो! मार्ग-विस्मृति की यातना भी उसके मानस को कुछ कम वेदना प्रदान नहीं करती।

एक अज्ञात प्रियतम के विरह की पीड़ा से सन्तापित कवि की आँखों से ढुलक कर उसके कपोलों पर जो दो नन्हे-नन्हे अश्रुविन्दु आ जाते हैं, उनमे इस संसार की वास्तविकता जितनी अच्छी तरह प्रतिबिम्बित है, उतनी अच्छी तरह न तो वह वैज्ञानिकों की अविच्छेद्य साधना में है, न दार्शनिक के सतत् चिन्तनलीन मस्तिष्क में ही है। जिस समय वह गाता है—'इस पार मना है रोना भी, गाना, खिलना, खुल उठना भी', या 'हम नन्दन-कानन के पंछी किन्नर यक्षों से मुक्त रहे!' उस समय वह सत्य के अधिक समीप दिखलायी देता है—दार्शनिकों की अपेक्षा।

विज्ञान ने यह तो बतला ही दिया है कि हमारे इस ग्रह का इस विराट विश्व में कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं है। इसे यदि यों कहा जाय कि इसका कोई भी स्थान इस विश्व में नहीं है, तो यह अत्युक्ति नहीं होगी। इस ग्रह की तो सत्ता ही क्या है, जिस सूर्य से इस की समुत्पत्ति हुई है और जिसमें इसके समान क्या जाने कितनी पृथ्वियाँ खो जा सकती है, उसका भी इस विश्व में वही स्थान है, जो सहारा की मरुभूमि में एक रजकण का है। क्या जाने ऐसे-ऐसे कितने सूर्य इस विश्व में है। अब हमारे इस ग्रह की इस विश्व में क्या सत्ता है, इसका ज्ञान इसी से हो जाता है कि एक द्वीपविश्व में करीब १००×१०००×१००००० सूर्य होते है और एक विश्व में १००×१०००×१००००० द्वीपविश्व होते है।

कहने का तात्पर्य, विज्ञान, दर्शन, कविता और धर्म तपोनिष्ठ साधक सब के सब हमारे इस वर्त्तमान वासस्थल की असुन्दरता एवं महत्वहीनता पर प्रकाश डालते है। विज्ञान यहाँ आ कर मौन हो जाता है और उसे मौन हो भी जाना चाहिए, क्योंकि उसका क्षेत्र यहीं तक है, लेकिन शेष तीन हमें यहाँ से मुक्त होने के लिये उत्प्रेरित करते है। इस उत्प्रेरणा के स्वरूप विभिन्न है, लेकिन उन विभिन्नताओं के अन्दर एक साम्य है, जो ध्यानपूर्वक सभी का निरीक्षण करने से ही दृष्टिगत होता है।

इस ग्रह को क्या जाने अभी तक कितने रूपों में देखा गया है। किसी ने तो इसे देवलोक से भी ऊँचा स्थान दिया,—किसी ने इसे कर्मभूमि के नाम से अभिहित किया,—किसी ने भोगभूमि के नाम से। जग-जीवन से बढ़ कर अधिक सुन्दर चीज बहुतों को

दिखलायी ही नहीं दी--नाली में जीवनयापन करनेवाले क्षुद्र कीट के समान। मैं इस पुस्तक में इस ग्रह को एक दूसरे रूप मे सुखी समाज के सम्मुख उपस्थित करने जा रहा हूँ।

इस दुनिया का चित्र जो मैं रक्खूँगा, वह अधिकांश व्यक्तियों को रुचिकर नहीं प्रतीत होगा, क्योंकि अधिकांश व्यक्तियों की रुचि सत्य और सुन्दर के परिज्ञान की विरोधिनी होती है। लेकिन मानव विज्ञान की सहायता से ही मैं यह चित्र पाठकों के सामने रख पा रहा हूँ।

विद्वान के पास पक्षपात नाम की कोई चीज नहीं। घटनाएँ और दृश्य उसके सामने हैं। उन को ले कर वह उन की सत्यता का निर्णय करता हुआ आगे बढ़ता है। इसमें सन्देह नहीं कि ये घटनाएँ और ये दृष्य उसके मस्तिष्क में अतीतकालीन अनुभवों से अनुरञ्जित होते हैं और जिस संसार को वह देखता है, वह उसके मस्तिष्क का ही संसार होता है; लेकिन इसके अतिरिक्त इस विश्व को समझने का और कोई साधन भी तो नहीं है और मेरा तो यह विश्वास हो चला है कि हमारी वर्त्तमान ज्ञानेन्द्रियाँ हमारी चिरन्तन शक्तियों के ही भौतिक प्रकटीकरण है। अतएव यदि इनके द्वारा अनुभूत संसार को ही लेकर साधनापथ में एवं सत्यान्वेषण मे आगे बढ़ते हैं तो कोई अनुचित कार्य नहीं करते। यदि हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ विश्व का सर्वथा भ्रामक ज्ञान ही हमें प्रदान करती हैं तो कोई हर्ज नहीं है, क्योंकि जब तक हमें इस तह पर रहना है, तब तक तो इन्हीं के द्वारा अनुभूत संसार से हमारा सम्बन्ध है।

केवल वैज्ञानिक अनुसंधानों को सत्यान्वेषण-पथ में सर्वाधिक

महत्व देने वाले व्यक्तियों से मेरी घोर विरोधिता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि विज्ञान के द्वारा जिन कतिपय नियमों एवं सत्यों का उद्घाटन होता है, वे दार्शनिक या धार्मिक या कवित्व-मय सत्यों की अपेक्षा इस ग्रह पर अधिक लाभकारी सिद्ध हो र है, किन्तु उनकी उपयोगिता उनकी चिरन्तन एवं सर्वकालिक सत्यता का भी समर्थन करती हो, ऐसी बात नहीं है।

अन्य उपायों का अवलम्बन जब विचारों को अग्राह्य-सा प्रतीत होने लगा,—जब उन्होंने देखा कि इस प्रकार हमलोग सत्य को कभी नहीं जान सकेंगे तब अनेकानेक शताब्दियों के उपरान्त विज्ञान ने मानवी साधना की देहली मे प्रवेश किया। इसे अपने समक्ष देख कर साधकों को हर्ष हुआ, क्योंकि इसकी साधना मे उन मनोभावों का अभाव था, जो सत्य-पथ में मेघमाला बन कर आ पहुँचती है। सब प्रकार के विरोधों-प्रतिरोधों को सहन करते हुए,—अपने जीवन को एक कठोर तपस्या में परिणत करते हुए इन साधकों ने इस नवागन्तुक देवता की साधना आरंभ की। अन्य पथ के पथिकों ने इनका अपमान किया—तिरस्कार किया—सब प्रकार से इनकी साधना की दीपमाला को निर्वापित करने की आप्राण चेष्टा की। मानव-जाति चिरागत संस्कारों,—परम्परागत विचार-धाराओं को छोड़ने में अत्यधिक अनिच्छा का प्रदर्शन करती आई है। फलतः अन्य मानवों का भी सहयोग उन विज्ञान-विरोधियों को मिला। उन व्यक्तियों ने भी जो पाशव शक्तियों के द्वारा मानव-समूह पर अपने आधिपत्य की स्थापना कर के उन पर शासन करते थे, इन नूतन साधकों की कार्य-पद्धति के प्रति अपना रोष प्रकट किया।

इस नवागत देवता को सबसे अधिक विरोध धर्म के अनुयायियों का सहना पड़ा, क्योंकि उन लोगों की साधना का मूलाधार विश्वास था और इसके पास विश्वास नामक कोई चीज नहीं थी। इसी कारण पीछे इसे भी धर्म से केवल विरोध ही नहीं रहा, घृणा भी हो गयी। वही घृणा, जो कि हिन्दुओं और मुसलमानों मे दीखती है। सारे काम उलटे होते है। हिन्दू यदि मन्दिर मे घण्टाध्वनि करते है तो मुसलमान मस्जिद के सामने किसी प्रकार भी बाजा नहीं बजने देते। यदि हिन्दू इस बात को नीचा समझते है तो मुसलमान ठीक उसकी उलटी बात को। विज्ञान और धर्म मे भी कुछ-कुछ इसी प्रकार की विरोधता और पारस्परिक घृणा की भावना हो गयी। यह भावना धर्म ने स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त कर दी कि वह विज्ञान को घृणा की दृष्टि से देखता है, किन्तु विज्ञान को इतना साहस नहीं हुआ कि वह ऐसा कहे, क्योंकि उसके पास प्रेम, घृणा प्रभृति के लिये कोई स्थान नहीं है।

तीन शताब्दियों तक तो विज्ञान का खूब बोल-बाला रहा। उसके अनुयायी समझते थे कि वे अश्वमेव सत्य को खोज लेगे। उनकी साधना का पथ बिल्कुल ठीक है। अभी भी अनेकानेक वैज्ञानिकों का यह अभिमान नहीं नष्ट होने पाया है। उन्हे इस बात का पूर्ण विश्वास है कि यदि इसी प्रकार वैज्ञानिक प्रगति होती रही तो मानवों को कभी न कभी इस विश्व की वास्त-विकता का ज्ञान अवश्य हो जायगा,—उस वास्तविकता का ज्ञान, जिसकी प्राप्ति का मिथ्या दम्भ लेकर धर्म ने शताब्दियों तक मानव जाति को भ्रम-जाल में फँसा रखा था।

केवल वैज्ञानिक साधना के द्वारा दुनिया के वास्तविक रूप को ामझने का प्रयास करने वाले व्यक्ति कभी भी सफलता प्राप्त कर ाकेंगे, आशा नहीं। अकेला विज्ञान कभी भी अपने अनुगतो ो ास मञ्जिल तक पहुँचाने मे समर्थ नहीं हो सकता, जिसकी प्राप्ति-ामना इसके अनुगतों के हृदय में अहर्निश प्रज्वलित रहती है।

विज्ञान है क्या? यों तो विज्ञान की अनेकानेक परिभाषाएँ ी गई हैं, किन्तु सबसे अधिक युक्तियुक्त परिभाषा यही है कि ानेन्द्रियों के द्वारा जो बाह्य जगत् के अनुभव होते हों, उनका पष्टिकरण करना। केवल अनुभवों पर विज्ञान के अनुगतों की ास्था नहीं, वे उनमें प्रथक्करण करते हुए,——सत्यासत्य का निर्णय रते हुए तब आगे बढ़ते हैं। धर्म की तरह विज्ञान के पास विश्वास ाम की कोई चीज नहीं है, ऐसा गर्वपूर्वक वैज्ञानिकों के द्वारा कहा ाता है और वे किसी भी अनुमान को तब तक स्वीकार नहीं करते ाब तक कि उसे प्रमाणित न कर लें।

लेकिन, क्या वास्तव में विज्ञान की साधना में विश्वास नाम की ोई चीज नहीं है? इस सिद्धांत की स्वीकृति हास्यास्पद है। यदि वैज्ञा-नकों को मानवी मस्तिष्क की शक्तियों पर विश्वास न रहे तो ये ापने पथ में एक कदम आगे नहीं बढ़ सकते। इस विश्वास का ी उसी प्रकार कोई आधार नहीं है, जिस तरह धार्मिक विश्वासों ा नहीं होता। क्या प्रमाण है कि मानवी मस्तिष्क विश्व के पदार्थों ो कुछ और ही रूप में न देखता हो? आखिर यह तो एक यन्त्र ो ठहरा! विश्व का जो चित्र इसमें अंकित होता है, उसकी सत्यता ा क्या प्रमाण है? मानवी मस्तिष्क की तर्क-शक्ति का ही प्राधान्य

विज्ञान-पथ-में है, लेकिन इस प्राधान्य का आधार विश्वास ही है। इस बात का कोई प्रमाण नहीं कि मानवी तर्क-शक्ति सत्य की ओर ले जाती है या असत्य की ओर,—प्रकाश की ओर या अन्धकार की ओर,—मञ्जिल की ओर या तमसाकीर्ण गर्त्त की ओर।

ज्ञानेन्द्रियों की कार्य-क्षमता को यन्त्रों के द्वारा बढ़ा-बढ़ा कर वैज्ञानिकों ने इधर अपनी साधना आरम्भ की है और उन्हे विश्वास है कि इस प्रकार विश्व का जो स्वरूप उनके पास आता है, वह बिल्कुल ठीक है। लेकिन ज्ञानेन्द्रियो की कार्य-प्रणाली की सत्यता का क्या प्रमाण है? इस प्रकार की आंखों से हमे विश्व इस प्रकार दिखलाई दे रहा है। लेकिन यदि इनमे कुछ परिवर्तन कर दिया जाय तो क्या विश्व का स्वरूप हमारे लिये परिवर्तित नहीं हो जायगा? इस समय विज्ञान के साधक वर्त्तमान ज्ञानेन्द्रियो के अनुभवों को ले कर आगे कदम बढ़ा रहे है, उस समय उस परिवर्तित ज्ञानेन्द्रियों के अनुभवों को लेकर आगे कदम बढ़ायेगे। इस समय वे वर्त्तमान ज्ञानेन्द्रियो के द्वारा अनुभूत विश्व को सत्य समझ रहे है, उस समय परिवर्तित ज्ञानेन्द्रियो के द्वारा अनुभूत विश्व को सत्य समझेगे।

और, यदि ऐसा एक ही साथ हो सका कि एक ओर तो वर्त्तमान ज्ञानेन्द्रियवाले वैज्ञानिक अपनी साधना कर रहे हों और दूसरी ओर परिवर्तित ज्ञानेन्द्रिय वाले, तो दोनों मे ठीक उसी प्रकार की लड़ाई की सम्भावना है जो कि धर्म के अनुयायियों मे हुआ करती है। तुम्हारा गलत और मेरा ठीक—यही उनकी लड़ाई का आधार रहेगा, धर्म की ही तरह।

ज्ञानेन्द्रियाँ हमे इस संसार का जो चित्र प्रदान करती है, यदि केवल उसी को हम सत्य समझने लगे तो यह हमारी अबौद्धिकता का ज्वलन्त परिचायक होगा। ज्यों-ज्यों इनकी शक्तियों का विवर्धन होता जायगा, त्यों-त्यों ये अभिनव चित्र प्रदान करती जायँगी। मान लीजिए आप मेरी इस किताब को पढ़ रहे है। इसमे आपको कई सौ पृष्ठ बँधे हुए दिखलाई दे रहे है। लम्बाई, चौड़ाई की अपेक्षा अधिक दिखलाई दे रही है। किन्तु सूक्ष्मवीक्षण यंत्र के द्वारा इसे देखने पर यह कैसी दिखलायी देगी ? अब आप कल्पना कीजिये कि आपकी आँखों में जन्म से ही सूक्ष्मवीक्षण यंत्र लगा हुआ है। अभी एकाएक कुछ क्षणों के लिये इसे हटा दिया जाता है और आपके नेत्रों की शक्ति उतनी ही रहने दी जाती है जितनी कि साधारणतया होती है। अब आप ही सोचिए, क्या आपको विश्व का यह रूप उतना ही विस्मयकर नहीं प्रतीत होगा जितना कि सूक्ष्म-वीक्षण यंत्र के द्वारा देखने से हुआ है। यदि आप वर्त्तमान नेत्रो के द्वारा दिखलायी देने वाले संसार को संसार का वास्तविक रूप समझते है, तो यह केवल विश्वास मात्र है। सूक्ष्मवीक्षण यंत्र से संसार का जो चित्र आप के सामने आया है, वह भी उतना ही सत्य है, जितना कि वर्त्तमान चित्र। एक को दूसरे की अपेक्षा सत्य से अधिक निकट बतलाने का कोई सशक्त आधार नहीं।

सारे के सारे विश्व को ऋणात्मक और धनात्मक विद्युत्शक्ति के रूप में देख कर वैज्ञानिक जगत् गर्वोत्फुल्ल हो उठा है और उसे विश्वास हो चला है कि वह अब अपनी मञ्जिल के समीप है। कुछ कदम और, और फिर तो सत्य उसे मिल ही जायगा। लेकिन ऋणात्मक और धनात्मक विद्युत्शक्ति के रूप में वैज्ञानिक वर्ग के

द्वारा जो संसार देखा जा रहा है, उसका अस्तित्व वैज्ञानिक वर्ग के मस्तिष्क मे ही है, उसके बाहर नहीं। हाँ, विभेद यही है कि संसार का यह चित्र अत्यधिक विवर्धित ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा सम्प्राप्त हुआ है। लेकिन है यह ज्ञानेन्द्रियों का ही अनुभव, और भले ही इसे यंत्रों के साहाय्य से चाहे जैसा भी रूप दिया जा सके, वह केवल एक रूप ही रहेगा। सूक्ष्मवीक्षण यन्त्र की सहायता से वर्त्तमान ज्ञानेन्द्रियों को यदि विश्व ऋणात्मक एवं धनात्मक विद्युत्शक्ति के रूप मे दृष्टिगत होता है तो परिवर्तित ज्ञानेन्द्रियों को यन्त्रों के द्वारा यह किसी दूसरे ही रूप में दृष्टिगत हो सकता है। फिर यह कहना कि हम दुनिया की वास्तविकता को देख रहे हैं, सर्वथा भ्रान्ति पर आधारित है।

मानवी-मस्तिष्क में विश्व का जो चित्र अंकित होता है, उसी को लेकर मानव-जाति तरह-तरह के चिन्तन करती है,—विचार-विमर्श करती है। बाह्य संसार वास्तव में कैसा है, इसके सम्बन्ध में कुछ भी कहने का उसे अधिकार ही क्या है! इसलिये विज्ञान के अनुगतों का यह विश्वास सर्वथा निराधार है कि दर्शन और कविता के अनुगतों की अपेक्षा सत्य के वे अधिक समीप हैं।

एक व्यक्ति पागल है और संसार उसे विचित्र-सा दिखलाई दे रहा है। हम उसके अनुभवों को सर्वथा मिथ्या कहते हैं और अपने मानसिक अनुभवों को सत्य। लेकिन हैं दोनों के दोनों अनुभव ही, जो कि विभिन्न यन्त्रों मे विभिन्न रूप ग्रहण करते हैं। उस पागल के अनुभव हमें इसलिये मिथ्या प्रतीत होते हैं कि उन की संख्या अधिक नहीं है। इसके अतिरिक्त और कोई कारण नहीं। यदि पागलों की संख्या समाज में उतनी हो जाय, जितनी की आज

हमलोगों की है और हमलोगों की संख्या उतनी ही हो जाय, जितनी कि पागलों की है तो मैं समझता हूँ, हमलोगों के मस्तिष्क में संसार का जो अनुभव होता है, उसके प्रति उन व्यक्तियों का वही दृष्टिकोण होता, जो आज उनके अनुभवों के प्रति हमारा दृष्टिकोण है।

कविता, धर्म और दर्शन को उपेक्षापूर्वक देखनेवाले वैज्ञानिक वास्तव में अपनी अज्ञता का ही परिचय देते हैं। ये तीनों भी मानव-जाति के मानसिक अनुभव ही हैं, जिस प्रकार कि विज्ञान है। इनकी अपेक्षा अपने को सत्य से अधिक समीप कहने का कोई तर्कसम्मत अधिकार विज्ञान को नहीं है।

अब तो कतिपय विज्ञानवेत्ताओं को अपनी भूल मालूम हो चली है और धीरे-धीरे अच्छी तरह वे अपनी आधारभूत गलतियों को पकड़ लेंगे, ऐसी आशा है, किन्तु विज्ञान ने अपनी प्रारम्भिक अवस्था में जो-जो आक्षेप सौन्दर्य, कविता, प्रेम, रहस्यवाद प्रभृति पर किये हैं, वे विस्मयकर हैं—अपनी अबौद्धिकता के कारण उन्हों ने इस विश्व को जिस रूप में देखा और जिस रूप को वास्तविक समझा उसमें सौंदर्य, प्रेम प्रभृति को कोई रूप ही नहीं मिला। वहाँ ९२ मूलतत्वों के अतिरिक्त या काल, संख्या, पदार्थ प्रभृति के अतिरिक्त कुछ भी सत्य नहीं रहा।

कवियों की ओर वे देखते थे, और मन ही मन कहते थे—यह पागल है। किस मिथ्या कल्पना के आसव को पी कर यह इस सुनसान आधी रात में दीपक जला कर कविताएँ लिख रहा है! प्रेमियों की ओर वे देखते थे और उपहासभरी बोली में कहते थे—यह मूर्ख है! नारी और प्रकृति-प्रदत्त आकर्षण के अतिरिक्त प्रेम

नाम की कोई चीज नहीं है; सन्तानोत्पादन के लिए प्रकृति ने प्राणियों में जो आवेग भर दिया है, उसी के पीछे यह अपनी जीवन-धारा को विषाक्त बना रहा है। मूर्ख है!

सौन्दर्य की ओर वे दृग्पात करते थे, और अपने ज्ञान पर अभिमान करते हुए कहते थे—यह कुछ नहीं है। हमारे नेत्रों को कुछ विशेष आकृतियाँ, रंगों का कुछ विशेष समन्वय अधिक प्रिय प्रतीत होता है—हमारी स्पर्शेन्द्रियाँ को मसृण पदार्थों के स्पर्श मे अधिक सुख की उपलब्धि होती है—हमारी श्रवणेन्द्रिय को एक विशिष्ट प्रकार के स्वर-कम्पन को ग्रहण करने मे अधिक सुखात्मक संवेदन होता है। इन समस्त ज्ञानेद्रियों के अनुकूल साधनों का जहाँ एकत्रीकरण हो जाय, वहीं हमे सौन्दर्य दिखलायी देने लगता है। अन्यथा इस सुन्दरी नारी के अन्दर क्या है! अस्थियाँ है, माँस है, रक्त है, वसा है, मल-मूत्र है। काम-वासना को परि-तृप्ति उसी नारी से अच्छी तरह हो सकती है जिसमे हमारी समस्त ज्ञानेन्द्रियों को सुखात्मक संवेदन करने की क्षमता विद्यमान हो। इसीलिये वह सुन्दरी मालूम होती है।

सांध्य प्रतीची-क्षितिज की विमोहक श्री-सुषुमा को देख कर जब कवि के हृदयान्तराल में न जाने किस बिछड़े जीवन-साथी की पगध्वनि बज उठती थी और वह अश्रु-आविरल दृगों में उस व्योम-सौन्दर्य की ओर अपलक निहारने लगता था, उस समय विज्ञानवेत्ता अपने ओंठो पर हँसी बिखेर कर कहता था—प्रतीची-क्षितिज की यह सुषमा आखिर है क्या? सूर्य की किरणें तिरछी होकर पड़ रही हैं! पृथ्वी गोलाकार है! वातावरण में प्रविष्ट होती हुई इन वक्र किरणों

द्वारा निर्मित इन विचित्र वर्णों मे क्या सौन्दर्य है।

वाटिका में परिभ्रमण करते समय कवि एक गुलाब के फूल को हाथों मे लेकर, उसकी सुन्दरता, उसके सौरभ और उसकी कमनीयता पर मुग्ध होकर अपने पाटल-कोमल जीवन-साथी की स्मृति में विभोर हो उठता था और उसे ऐसा प्रतीत होने लगता था, मानो उसके जीवन-साथी के श्वास-सौरभ के स्पर्श ने ही उस कुसुम को इतना सौरभ और इतनी कमनीयता प्रदान कर दी है। वैज्ञानिक उपहास-पूर्वक कवि की ओर देखता था और उसके हाथों से उस फूल को लेकर उसके कई टुकड़े कर डालता था। फिर कुछ यन्त्रों की सहायता से उसका विश्लेषण करके जिस रूप का निर्धारण करता था, उसे ही सत्य निर्धारित करते हुए अभिमानपूर्वक कवि से कहता था—'देख, यह गुलाब का फूल इस प्रकार है और इसके सौरभ का कारण यह है, वह नहीं, जिसे कि तू अपने पागलपन के कारण देख रहा है।"

मन्दिर मे वह किसी भक्त को अपने देवता के सामने सिर झुका कर भाव-गद्गद् स्वर मे प्रार्थना करता हुआ देखता था तो उसका अभिमान—उसकी सत्यप्रियता का अभिमान और भी विवर्धित हो जाता था और वह मन ही मन कहता था—ये लोग मूर्ख हैं! केवल विश्व को ही ये सब कुछ मानते है! मै किसी चीज पर तब तक विश्वास नहीं करता, जब तक कि उसे अच्छी तरह प्रमाणित न कर लूँ।

मस्जिद में, गिर्जाघर में सर्वत्र वह औरों से अपने को अधिक महान्, अधिक सत्यप्रिय समझा करता था।

लेकिन, अब ज्यों-ज्यों मनोविज्ञान का विश्वास हो रहा है—ज्यों-ज्यों मानव-जाति अपने मस्तिष्क के यंत्र को समझने की चेष्टा करते हुए आगे बढ़ रही है, त्यों-त्यों उसे मालूम हो रहा है कि मनोवैज्ञानिकों की सत्यप्रियता का यह दम्भ सर्वथा निराधार है। चाहे वैज्ञानिक की गवेषणाएँ हों, चाहे कवि के प्राणों की कोमलकान्त कल्पनाएँ हों, चाहे किसी चित्रकार के मस्तिष्क की भावनाएँ हों,—सबकी अपने-अपने स्थान पर एक दूसरे के बराबर ही सत्यता है। न कोई किसी से अधिक सत्य है, न कोई किसी से कम। वैज्ञानिक की विचारधारा भी उसके मस्तिष्क के ही एक अनुभव का रूप है—कवि की कल्पना भी उसके मस्तिष्क के ही अनुभव का एक रूप है और चित्रकार की स्वप्नमयी भावना भी। एक मस्तिष्क के किसी एक अनुभव को किसी दूसरे अनुभव से अपने को अधिक सत्य कहने का क्या अधिकार है? यह मिथ्या दम्भ नहीं है तो और क्या है?

आत्मा प्रभृति के अस्तित्व पर भी विज्ञान ने अपनी अनास्था, अपना अविश्वास ही प्रकट किया। इन्द्रियों से जिसकी अनुभूति नहीं होती, उसकी सत्ता को मानने से उन लोगों ने इन्कार कर दिया। पीछे तो आत्मा के अस्तित्व को न मानने का एक फैशन ही चल पड़ा, लेकिन इन्द्रियों से जिसकी अनुभूति नहीं हो पाती है, यदि उसको सर्वथा असत्य और असंभव मान लिया जाय तो गजब हो जाय। इस सम्बन्ध मे अधिक ऊहापोह अनावश्यक है। एक साधारण सा उदाहरण लीजिए। मनुष्य की जितनी ज्ञानेन्द्रियाँ है, पशुओं की नहीं। अतएव उसके लिये उन्हीं का विश्व सच्चा होगा, वह विश्व नहीं जो

मनुष्यों के मस्तिष्क मे चित्रित है। एक घोड़े के विश्व में और एक विज्ञानवेत्ता के मस्तिष्क में सुमहान् अन्तर होगा और वैज्ञानिक लाख कोशिश करे, घोड़ा अपने विश्व को ही ठीक समझेगा।

हमारी ज्ञानेन्द्रियों के परे जो कुछ है, उसके सहस्रांश का भी ज्ञान हमें ज्ञानेन्द्रियों द्वारा नहीं हो पाता। सत्य इनसे परे है—बहुत परे। अतएव केवल इन्हीं की सहायता से सत्य को जानने की चेष्टा करना मूर्खता भी है, पागलपन भी।

अकेला विज्ञान कभी भी—किसी युग में भी—किसी अवस्था मे भी सत्य को नहीं पा सकेगा। दुनिया विज्ञानवेत्ताओं की दृष्टि में जिस प्रकार की है, वह सदैव अशुद्ध और अपूर्ण और मिथ्या रहेगी। दार्शनिकों के लिए भी मेरा यही कहना है, यद्यपि वे विज्ञानवेत्ताओं से इस यात्रा-पथ में कुछ कम आगे बढ़े हुए हैं। लेकिन एकाकी दर्शन की भी सामर्थ्य नहीं है कि वह दुनिया की वास्तविकता को समझ ले। इस ग्रह में विश्व की वास्तविकता को जानने के जो साधन व्यक्तियों को मिले हैं, वे सर्वथा अपूर्ण हैं। केवल इनकी सहायता से वास्तविकता का ज्ञान नहीं प्राप्त किया जा सकता।

अन्तर्प्रेरणा ही सत्य का समुद्घाटन करने मे समर्थ हो सकती है। और इस अन्तर्प्रेरणा के लिए इन दोनों को वहाँ जाना ही पड़ेगा जहाँ कवि अपनी आँखों में आँसू भर कर अन्तरिक्ष के नक्षत्रों में कोई खोयी हुई चीज खोजता रहता है। दार्शनिकगण व्यर्थ ही एक दूसरे से झगड़ते रहते हैं—व्यर्थ ही एक दूसरे पर वाक्य-प्रहार करते रहते हैं। एक दार्शनिक दूसरे को मूर्ख और

भ्रान्त बतलाता हुआ अपनी विचारधारा को सर्वथा शुद्ध विघोषित करता है तो दूसरा उसे तरह-तरह की खरी-खोटी बातें सुनाता हुआ अपने सिद्धान्तों का समर्थन करता है। अद्वैतवादी को अनेकता का अस्तित्व आश्चर्यकर-सा प्रतीत होता है, फलतः वह अनेकता के बहिष्करण को ही श्रेयस्कर समझता हुआ इस बात की घोषणा कर देता है कि इस निखिल विश्व में एक ही मूल सत्ता विद्यमान है; वही नाना रूपों मे प्रतिभात हो रही है—'एकमेवाद्वितीयम् !' इस एकत्व का ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है। अनेकत्व की उत्पत्ति अज्ञान से है—माया से है ! अनेकत्व का कहीं कोई अस्तित्व ही नहीं है। वही एक सत् चित् आनंद-ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त है ! उसके अतिरिक्त हमे जो कुछ दिखलाई दे रहा है, सब भ्रम है—अज्ञान है ! दूसरा दार्शनिक मूछों पर ताव देता हुआ आता है और कहता है—"यह सब तुम्हारा पागलपन है ! यदि ब्रह्म एक है तो उसमे अनेकता उत्पन्न करनेवाला यह अज्ञान कहाँ से आ गया ! तुम मूर्ख हो ! ईश्वर एक है। उसी ने सारे जगत् की रचना की है, जैसे कुम्भकार मृत्तिका के पात्रों की रचना करता है। मृत्तिका के पात्रों की रचना के लिए जिस प्रकार कुम्भकार और मृत्तिका की आवश्यकता है, उसी प्रकार इस संसार की रचना के लिये ईश्वर और प्रकृति दोनों को मानना आवश्यक है !" तीसरा दार्शनिक आता है और वह कुछ और ही बाते कहता है ! इनके सद्धान्तों का वैभिन्य आश्चर्यकर नहीं; आश्चर्य तो इस बात पर होता है कि ये लोग विश्व के उन चित्रों को जो इनके मस्तिष्क में चित्रित हुए है, अन्य व्यक्तियों पर लादने के लिए इतने उतावले

क्यों रहते है। दार्शनिकों में तो उतनी नहीं, लेकिन धार्मिक नेताओं मे तो यह प्रवृत्ति अत्यधिक उग्र रूप मे दिखलायी देती है। अन्य धर्मावलम्बियों को अपने धर्म मे दीक्षित करने के लिये इन लोगों ने रक्तपात करते हुए भी संकोच नहीं किया है। अपने-अपने धर्मोद्भावकों के मस्तिष्क के विश्व-चित्रों को इन लोगों ने दुनिया के अन्य मनुष्यों में बलपूर्वक अंकित करने का बहुत ही उन्मादपूर्ण प्रयास किया है। हिन्दू हिन्दू धर्म के अतिरिक्त दुनिया के समस्त धर्मों को निरर्थक समझता है, मुसलमान हजरत मुहम्मद द्वारा प्रचारित सिद्धान्तों को छोड़कर और कुछ भी मानने को तैयार नहीं। क्रिश्चियन बाइबिल के सत्य को ही सत्य समझता है! ये विभेद—ये विचित्रताएँ ही इनके सिद्धान्तों की निस्सारता पर प्रकाश डालती है।

धर्म के सम्बन्ध मे हमे विशेष विचार करने की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता रही होती, किन्तु इसकी शाखाओं के वर्त्तमान रूप इतने कुत्सित हो गये है कि उनसे हमे अपनी राह मे किसी प्रकार का आलोक नहीं प्राप्त हो सकता। वैसे विज्ञान, दर्शन की अपेक्षा धर्म का महत्व अपने स्थान मे कम नहीं रहा होता, लेकिन इसके अनुयायीवर्ग ने ही इसको एक खोखला रूप प्रदान कर दिया है। ईश्वर की महत्ता का गुण-कीर्त्तन धर्मानुयायी अपनी प्रार्थना में अवश्य करते है, लेकिन यन्त्रतुल्य। उसके अपरिसीम अनवद्य स्वरूप की अनुभूति वैज्ञानिक को धार्मिक की अपेक्षा कहीं अधिक होती है। Ecce Homo के लेखक ने एक स्थान पर ठीक ही लिखा है कि The idea of God has

been degraded by childish and littleminded teaching; the Eternal and the infinite and the All Embracing has been represented as the head of the clerical interest, as a sort of clergyman, as a sort of schoolmaster, as a sort of philanthropist. But the scientific man knows Him to be eternal, in astronomy. In geology, he becomes familiar with the countless milleniums of His lifetime. The scientific man strains his mind actually to realise God's infinity. So far off as the fixed stars, he traces Him. Meanwhile, to the theologian infinity and eternity are very much of empty words, when applied to the object of his worship. He does not realise that in actual facts and definite computations.

दर्शन और विज्ञान ये दोनों धर्म के वर्त्तमान स्वरूपों से आगे बढ़े हुए है, लेकिन फिर भी इनमे इतनी क्षमता नहीं कि ये जीवन-यात्री को उस स्थान तक पहुँचा सकें, जहाँ पहुँचने पर अन्धकार प्रकाश हो जाता है, तम और अज्ञान की मेघमाला हृदयाकाश से दूर हो जाती है।

तब फिर सत्य को जानने का क्या उपाय है? कैसे हम इस भीषण तिमिरावृत यामिनी में अपने क्रन्दन मय अन्तरतम को ज्योति की पावन किरणों से आश्वस्त कर सकेंगे! चारों ओर से

तो प्रखर निराशा का ही मर्मभेदी प्रहार सत्यान्वेषी के प्राणों पर होता है।

ऐसी अवस्था में क्या हम यही मान लें कि सत्य का ज्ञान हमें कदापि नहीं हो सकता। हम चिरकाल तक इसी प्रकार नाना-विध दुःखों से आहत होते हुए इस तृष्णा के मरुप्रदेश मे चीत्कार करते फिरेंगे—हमारे प्राणों के इस अर्द्धविकसित शतदल पर यों ही निरन्तर करकापात होता रहेगा और न तो वह अपने अस्तित्व को ही अन्तर्लीन कर पायेगा और न स्वच्छन्द समीरण को अपने सौरभ-दान से विह्वल करता हुआ मधुपकुमारियों का गुञ्जन गान ही सुन सकेगा!

मानव-जाति ने अपने समुद्भव-काल से लेकर अबतक सत्य को जानने के जितने भी प्रयास किये है, वे सब के सब तो इस हाहाकार भरे प्रखर निराशावाद का ही समर्थन करते है। इतने विचारक इस ग्रह पर हुए। कपिल हुए, कणाद हुए, पतञ्जलि हुए, शंकर हुए। प्लेटो हुए, अरस्तू हुए। इतने पैगम्बर और फरिश्ता आये। मुहम्मद आये, क्राइस्त आए। बुद्ध आये और भी न जाने कौन-कौन आये। लेकिन कोई भी तो मानवजाति के पथ के इस भीषण भयावह अन्धकार को चीरकर उन किरणों को नहीं ला सका, जिनके अभाव ने मानवजाति के जीवन पथ में इतना इतना रोदन-क्रन्दन बिखेर रखा है—इतने इतने नारकीय चीत्कारों से भरे हुए जीवनों की सृष्टि कर रखी है!

सहस्राब्दियों की इस कठोर, तपस्यामय साधना के उपरान्त मानव-जाति आज चाहे जितना भी ज्ञान अर्जित करने का मिथ्या-

भिमान प्रदर्शित करे—अपने पुस्तकालयों में पुराचीन और अर्वाचीन, प्राच्य और पाश्चात्य दार्शनिकों और वैज्ञानिकों एवं धार्मिक नेताओं की स्थूलकाय पुस्तकों को देख-देखकर अपने को जितना भी मिथ्या गौरव प्रदान करे, उसने वास्तव में केवल दो ही बातों का ज्ञान सहस्राब्दियों के इस पुष्कल प्रयास के उपरान्त प्राप्त किया है। एक तो यह कि जीवन मे सुखों की प्राप्ति-कामना को लेकर भटकने का कार्य वैसा ही है जैसा विस्तृत बालुकाराशि मे पिपासाकुल मृग का दूरवर्ती नीराभास के पीछे दौड़ने का कार्य होता है। न उस हतभाग्य मृग को जल की प्राप्ति होती है, न उसके तृषादग्ध शरीर मे नूतन शक्ति का संचार हो पाता है और न जीवन पथिक को सुखों की प्राप्ति हो पाती है! वह सुख-सम्प्राप्ति की चेष्टाओं मे सारी की सारी आयु क्यों न बरबाद कर दे! सुख उसे नहीं मिलेगा—नहीं मिलेगा!

कोई अभागा धनार्जन करके सुख प्राप्त करने का प्रयास करता है—कोई यशार्जन करके। कोई विद्याध्यन करके जीवन के दुःखो को मृदुल, मनोहर सुखों के रूप मे परिणत करना चाहता है तो कोई किसी अन्य उपाय से। धनार्जन करके सुखों को आमन्त्रित करने का प्रयास करने वाले व्यक्तियों की संख्या का ही इस दुनिय मे आधिक्य है।

लेकिन चिराग लेकर ढूँढ़ने पर भी सुखी व्यक्ति नहीं मिल पाते। कोटयधीश के पास जाइए और उसकी मानसिक अवस्थाओं का अध्ययन कीजिए। न जाने कितनी-कितनी दाहक, घातक चिन्ताओं से उस अभागे के मन-प्राण विदीर्ण होते रहते है! नरक से निर्वासित दुश्चिन्ताएँ ही उसके मानस को अपनी घृणित क्रीड़ास्थली नहीं बनाती, शारीरिक क्लेशों से भी धनपतियों का जीवन

अधिकतर विपन्न रहा करता है। इस दुनिया के बहुत कम धनाधीश ऐसे होंगे जो शारीरिक स्वास्थ्य का समुचित उपभोग कर पाते हों !

जो यशस्वी हैं—जनता के प्रशंसाभाजन बनने की प्रचेष्टाओं में जिन्होंने अपना सर्वस्व स्वाहा कर दिया है, उनसे जाकर पूछिये कि कितने सुखी हैं वे ! शायद सुखात्मक अनुभूतियाँ राह भूलकर भी उनके पास नहीं आती होंगी !

विद्वानों की जो अवस्था है, वह भी सर्वविदित है। पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष से इनके पार्थिव अस्तित्व की जो हालत होती रहती है, वह शायद रौरव के अधिवासियों को भी संत्रस्त कर डाले ! जो व्यक्ति यह सोचता है कि विद्वता सुख-शान्ति की जननी है, वह भीषण भ्रम मे है।

और सबसे बढ़कर करुणाजनक बात तो यह है कि मनुष्य जब तक किसी वस्तु के अभाव से पीड़ित रहता है तभी तक उसका अस्तित्व कतिपय सुख की किरणें उसके दु.ख-तिमिर जालपर फेकता रहता है। प्राप्ति के उपरान्त उन नन्हीं-नन्ही तुच्छ किरणो का भी आगमन असम्भव-सा हो जाता है।

जीवन का यह कुत्सित, घृणित रूप—दुःखों का यह सार्वदेशिक आधिक्य और सत्य को जानने की यह जो असामर्थ्य है, यही हमे अपनी दुनियाँ की वास्तविकता को जानने मे सहायता प्रदान कर सकती है !

लेकिन इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने के पहले हम उस ज्ञान से लाभ उठा लें, जो वैज्ञानिक तपस्या ने हमे प्रदान किया है और जिसने हमे उस विश्व से परिचित कराया है, जिसमें हमारा यह आवास-स्थल सर्वथा नगण्य अस्तित्व रखता है।

: २ :

दिन के मायामय आलोक की अपेक्षा सत्यान्वेषी के लिए रजनी की नीरव घड़ियां अधिक उपयुक्त होती हैं। सारे के सारे विश्व से वियुक्त तो हम हैं ही——दिन की आलोक-धारा हमें उसके एक अंश के दर्शन से भी वंचित कर देती है।

रात्रि की तिमिराकीर्ण घड़ियों में अन्तरिक्ष-पथ में दिखलाई देनेवाले तारक सहस्राब्दियों से मानव मस्तिष्क को चिन्तन की अभिनव सामग्रियाँ प्रदान करते आये हैं। अपनी-अपनी आवश्यकताओं एवं अपनी-अपनी वैयक्तिक आकांक्षाओं और संस्कारों के अनुसार विभिन्न मस्तिष्कों ने इन्हें विभिन्न रूपों में देखा है। उन समस्त दर्शनों के स्वरूप विज्ञान, कविता और धर्म की शाखा-प्रशाखाओं के अन्तर्गत आ जाते हैं।

अधिकांश धर्मोद्भावकों ने आकाश के इन तारकों के सम्बन्ध में यही भावना अपने अनुयायिवर्ग में प्रचारित की है कि जगन्नियंता ने मनुष्यों के निद्रा-कालको शृंङ्गारित करने के लिए अन्तरिक्ष-पथ को तारकों से भूषित किया है। इस वसुन्धरा से व्यतिरिक्त इन तारकों के अस्तित्व का कोई महत्व नहीं। मैं यह नहीं कहता कि यह भावना संसार के प्रत्येक भाग में निवास करने वाले धर्मों में उपलब्ध होती है, लेकिन इतना अवश्य है कि बौद्धिकता पर आधारित धर्मों को छोड़कर अधिकांश धर्म ऐसी ही भावनाओं से अनुप्राणित एवं सम्वर्धित है।

कवि सौन्दर्य का उपासक होता है, यह निर्विवाद है। जो सौन्दर्य का उपासक नहीं, वह कवि नहीं। सौन्दर्य की अनुभूति एवं सौन्दर्य-दर्शन की शक्ति जिसमें अत्यधिक होती है और जो अपने कृतित्व में इस सौन्दर्य की ज्योत्स्ना प्रतिच्छायित कर सकता है, वह महाकवि है। विश्व के इस एक अंश को लेकर—आकाश में बिखरे हुए तारकों के रूप में दिखलायी देने वाले इस एक अंश को लेकर कवियों ने अनेकानेक प्रकार की भावनाओं से अपनी कवित का शृंगार किया है। किस को प्रियतम के देश की ओर जाने वाल तिमिराकीर्ण पथ में ये दीपकों के रूप में दिखलायी दिये हैं तो किसी के द्वार, किसी के पथ में बिखरे गये कुसुमों के रूप में। धार्मिक के दर्शन में कृतज्ञता और श्रद्धा का आधिक्य है, कवियों में विरह-व्यथित प्रणय का।

लेकिन हम अपनी वर्त्तमान ज्ञानेन्द्रियों से अपने संसार को जिस रूप में देख रहे हैं, उस रूप में यदि हम विश्व को देखें, तो वह कैसा मालूम होगा, इसका उत्तर विज्ञान के अतिरिक्त और कोई नहीं दे सकता। सौभाग्यवश दूरवीक्षण यन्त्र के आविष्करण द्वारा वर्त्तमान युग के ज्योतिर्विज्ञानवेत्ता प्रति वर्ष अपने ज्ञान का प्रसार करते चले जा रहे हैं और यदि उनकी प्रगति का यही स्वरूप रहा तो शीघ्र विश्व का एक प्रशंसनीय चित्र जनता के सम्मुख आ जायगा। वर्त्तमान चित्र केवल अस्पष्ट ही नहीं है, वह संशयों से भी आक्रान्त है, फलतः उसको लेकर निश्चयों का बीजारोपण नहीं हो सकता। फिर तो, इसमें कोई सन्देह नहीं कि मानवजाति के शक्तिशाली मस्तिष्कों ने जो प्रयास किया है, वह महत्वपूर्ण है।

वर्तमान ज्योतिर्विज्ञानवेत्ता जहाँ तक पहुँच सके हैं, वहाँ तक भारत, चीन, यूनान, मिश्र और बैबिलोनिया के प्राचीन अधिवासी पहुँच पाये थे या नहीं, यह विषय विवादास्पद है। सभ्यताओं के सम्बन्ध में हमारा जो भी ज्ञान है, वह या तो वहाँ की अवशिष्ट पुस्तकों पर आधारित है या फिर वहाँ के भग्नावशेषों पर। भग्नावशेषों से किसी भी सभ्यता का चित्र मस्तिष्क में अच्छी तरह चित्रित नहीं हो सकता। पुस्तकें उनके स्वरूप-परिज्ञान के लिये सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं, लेकिन दुर्भाग्यवश उनने इतनी कम पुस्तकें उपलब्ध हैं कि उनसे भी कोई महत्वपूर्ण सहायता नहीं मिल पातीं। हमें उन विशिष्ट सभ्यताओं की एक झलक अवश्य मिल जाती है। अबौद्धिकता पर आधारित धर्मों के प्रचार की दुर्दान्त आकांक्षाओं से अनुप्राणित होकर जिन व्यक्तियों ने तत्कालीन विशाल पुस्तकालयों को जलाया है, उनके द्वारा मानव-जाति को हानि हुई है, उसकी पूर्ति सहस्रों वर्षों में भी शायद ही हो सके। फिर भी मैं समझता हूँ कि उनलोगों का ज्ञान उपेक्षणीय नहीं था। भारत के अतीतकालीन संस्कृत-काव्यों एवं दार्शनिक ग्रन्थों से इसकी यथार्थ पुष्टि होती है। वे अपने सौरमण्डल के ग्रहों से ही नहीं, अपितु अन्य सौर-मण्डलों के ग्रहों से भी परिचित थे और हो सकता है, उनसे उनका महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध भी रहा हो। उन अतीतकालीन ज्ञान की पहुँच से हम बहुत दूर चले आये हैं, अतएव विश्व के वर्त्तमान स्वरूप के परिज्ञान के लिए वर्त्तमान युग के निरीक्षण, परीक्षण एवं अनुमान के अतिरिक्त अन्य उपाय बुद्धिसंगत नहीं प्रतीत होते। दूरवीक्षण यन्त्र की सहायता से ज्योतिर्विज्ञानवेत्ताओं ने जो ज्ञान प्राप्त किया है,

वह महत्वपूर्ण है और हमें उसका पूर्ण उपयोग करना चाहिये।

सबके पहले हमारा ध्यान सूर्य की ओर आकृष्ट होता है। इसी से हमारे वर्त्तमान वासस्थल का समुद्भव हुआ है—यही हमें प्रकाश प्रदान करता है—इसी की किरणे इस ग्रह को रंग-बिरंगे परिधान पहनाती हैं। जिस सौरमण्डल के हम अधिवासी हैं, सूर्य उसका सर्वस्व है। अतएव आधुनिक विज्ञान ने सूर्य के सम्बन्ध मे जो ज्ञान प्राप्त किया है, उसपर प्रकाश डालना अत्यावश्यक है।

सूर्य के ऊपरी पृष्ठ का तापमान ६,००° सेंटीग्रेड करीब के है। ६,०००° सेंटीग्रेड की जो असह्य गर्मी है, उसकी कल्पना सब नहीं कर सकते। लेकिन यह तो सूर्य के ऊपरी पृष्ठ का तापमान है, उसके भीतर की गर्मी इससे कहीं अधिक है क्योंकि प्रकाश और ताप-ये दोनों ही निरन्तर सभी दिशाओं मे सूर्य के ऊपरी पृष्ठ से विकीर्ण हो रहे हैं। सूर्य के केन्द्र मे जो भीषण उत्ताप है, उसकी कल्पना इसी से की जा सकती है कि एक साधारण पैसे को सूर्य के केन्द्रवर्ती तापमापक से उष्ण करें तो इसकी गर्मी सहस्रों मील दूरी तक की समस्त जीवित चीजों को जला कर खाक कर देगी! इससे अनुमान होता है कि सूर्य वाष्पमय है, क्योंकि इतना अधिक उत्ताप पाकर कम से कम इस पृथ्वी पर तो कोई भी सघन या तरल रूप मे नही रह सकता—उसे वाष्प के रूप मे परिवर्तित होना ही पड़ेगा। सूर्य तक पहुँच कर किसी ने देखा तो नहीं है कि सूर्य वाष्पमय है या उसका और कोई दूसरा स्वरूप, लेकिन जब हमने यह मान लिया है कि सूर्य के समस्त ग्रहों की उत्पत्ति हुई है, तब एक ही नियम-पाश मे सब को बाँधना अयौक्तिक नहीं

प्रतीत होता। सूर्य वाष्प का एक महान ग्लोब है और इसके मध्य मे जो वाष्प है, वह तो अत्यन्त संकुचित होगा, क्योंकि उन्हें करीब-करीब पचास हजार मील ऊँचे वाष्प-समह को आधारित रखना पड़ता है। फिर भी सूर्य के तापमान की अधिकता के कारण वाष्प की न्यूनता से कोई व्यतिरेक नहीं हो पाता। हाँ, यदि सूर्य का तापमान इतना अधिक नहीं रहता तो सूर्य मे इससे कहीं अधिक वाष्प रहा होता और इस समय से कहीं अधिक भार सूर्य का रहा होता।

सूर्य के केन्द्र मे सूर्य के ऊपरी पृष्ठ से कहीं अधिक प्रकाश है, क्योंकि इसका उत्ताप ऊपरी पृष्ठ से अधिक है। प्रकाश जब किसी पदार्थ के सम्पर्क मे आता है तो एक प्रकार का दबाव उस पदार्थ पर पड़ता है। साधारण प्रकाश द्वारा जो दबाव पड़ता है, वह बहुत ही कम होता है। प्रकाश जितना ही अधिक होगा, दबाव भी उतना ही अधिक होगा। सूर्य का केन्द्र अत्यधिक प्रकाश-मय है, अतएव उस प्रकाश का दबाव भी अत्यधिक होना चाहिये। साथ ही जिस प्रकार से हम प्रतिदिन परिचित होते रहते हैं—जो प्रकाश तिमिर-पीड़ित वसुन्धरा को श्वेत परिधान पहनाकर संध्या के आगमन की प्रतीक्षा किया करता है, उसकी लहरों की लम्बाई मे और सूर्य के केन्द्रवर्ती प्रकाश की लहरों की लम्बाई मे बहुत अन्तर है।

सूर्य से यह जो निरन्तर प्रकाश विकीरित हो रहा है, उससे उसका वजन भी कम होता चला जा रहा है। प्रकाश—विकीरण शक्ति का ही एक स्वरूप है—भार-संयुक्त। इसी कारण जिस

पदार्थ के सम्पर्क में यह आता है, उसपर दबाव पड़ता है। विश्व का कोई भी पदार्थ क्यों न हो, यदि वह प्रकाश निक्षिप्त कर रहा है तो उसकी शक्ति और वजन दोनों ही कम होते जा रहे हैं। वैज्ञानिकों ने अनुमान किया है कि सूर्य प्रत्येक मिनट में ३००,-०००,०००×२८ मन कम होता चला जा रहा है—प्रकाश-निक्षेपण के कारण। और यह कार्य सहस्राब्दियों से नहीं, करोड़ों वर्षों से चला आ रहा है। लेकिन फिर भी उसमे कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हो पाया है, इसीसे कल्पना की जा सकती है कि प्रतिदिन प्रभात मे विहगों को कूजन की अभिनव प्रेरणा प्रदान करने वाला—नैश तिमिर में पथहारा होकर क्रन्दन करने वाले जीवन-यात्रियों को आश्वस्त करने वाला—सरसी के सुकुमार शतदलों को करके प्रहसित शिलीमुखों को गुञ्जन-तत्पर करने वाला यह ज्योतिर्मय देवता कितना महान् है—आकार में कितना बड़ा है।

प्रकाश-निक्षेपण के कारण प्रति मिनट ३००,०००,०००×२८ मन कम होते चले जाने पर भी सूर्य मे कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हो पाया है, इसका सबसे सरल प्रमाण यह है कि यदि इस गति से निरन्तर सूर्य अपने उत्ताप से विमुक्त होता चला जा रहा है तो आज से कुछ लाख वर्ष पहले वह आज की अपेक्षा अत्यधिक उष्ण रहा होता। ऐसी अवस्था में इस ग्रह पर जीवन-विकास सर्वथा असंभव हो गया होता, क्योंकि तब यह ग्रह जीवन धारण करने योग्य शीतलता तक नहीं पहुँच पाता। अतएव यह मानना पड़ता है कि विगत कई लाख वर्षों में इस ग्रह के तापमान में कोई आश्चर्यजनक परिवर्तन नहीं हुआ है।

वैज्ञानिकों ने प्रकाश-विकीरण द्वारा भार-लाघव की इस क्रिया से सूर्य की आयु के निर्धारण का भी बुद्धिमत्तापूर्ण प्रयास किया है। तारे वजन में करीब-करीब मिलते-जुलते से हैं। आकार प्रकार मे महान् प्रभेद होते हुए भी उनके वजन में अधिक प्रभेद नहीं है। निरीक्षण से पता चलता है कि सबसे अधिक वजन वाला तारा सूर्य के वजन से एक सौ गुना से अधिक नहीं है। सूर्य का इस समय जो वजन है, उसको एक सौ से गुणित कर देने पर जो वजन निकलता है, उससे अधिक वजन सूर्य का कदापि नहीं रहा होगा। यह हमें विदित है ही कि सूर्य प्रत्येक मिनट में ३००,-०००,०००×२८ मन वजन खोता जा रहा है। इस आधार पर गणितज्ञों ने सूर्य की जो आयु निर्धारित की है, वह है १३०० खरब वर्ष। लेकिन इस आयु का निर्धारण इसी भित्ति पर किया गया है कि जिस गति से सूर्य इस समय प्रकाश निक्षिप्त कर रहा है और अपने भार को कम करता जा रहा है, उसी गति से पहले भी करता रहा था। लेकिन यह विश्वसनीय नहीं प्रतीत होता। आरम्भिक अवस्था मे सूर्य के प्रकाश-निक्षेपण की गति आज की अपेक्षा कहीं अधिक तीव्र रही होगी। ऐसी अवस्था में सूर्य को ५० खरब वर्षों से अधिक आयु का नहीं होना चाहिये।

आलोक एवं उत्ताप के चरमाधिक्य के कारण सूर्य मे विस्मयकर अस्थिरता होगी! वहाँ का प्रत्येक पदार्थ एक महाभयानक चंचलता से आक्रान्त होगा! इतना ही नहीं, सूर्य मे अनेकानेक ज्वालामुखीय रक्तवर्ण लहरें निरन्तर उत्थित होती रहती है—लाखों मील ऊँची! इनकी गति भी सामान्य नहीं होती। एक मिनिट मे सहस्रों मील

तक ऊपर उठ जाया करती है। उत्थानकाल और पतनकाल में इनका स्वरूप एक-सा ही रहता है, यह आवश्यक नहीं है! विविध रूपधारिणी होकर ये ज्वालामयी, भीमकाय, रक्तवर्ण लहरें निपतित होती है। सन् १६१६ के ग्रहण मे एक ऐसी ही महान् ज्वालामयी लहर का कैमरा—चित्र लिया गया था, जो इतनी लंबी थी कि सर जेम्स जींस ने उसे एक ऐसे पशु की उपमा दी, जो हमारे इस निवासस्थान को—नानाविधि महादेशों एवं राष्ट्रों मे विभक्त इस नन्हे-से ग्रह को एक दवा की नन्हीं-सी गोली के समान निगल जा सके! सूर्यास्त हो जाने के कारण इस विस्मयकर ज्वाला-तरंग के अन्य दृश्यों से वैज्ञानिक परिचित नहीं हो सके, किन्तु इतना वे जान गये थे कि सूर्य के स्तर से ४७५,००० मील ऊपर तक वह रक्ताक्त लहर उछली थी!

सूर्य के इस विज्ञानसम्मत वर्णन को आप प्रातःकाल की उल्लास-मयी घड़ियों मे पढ़ें या सन्ध्या की धुँधली, निराशामयी घड़ियों में। तभी आप यह जान सकेंगे कि प्राची-गगन को स्वर्णिम केसर से भरता हुआ अपनी कनक-किरणों से प्रिय-आलिङ्गन-मोहित तरुणियों के कपोलों का स्पर्श करने वाला और नीलिमावृत आकाश-पथ में दिन भर चल कर पश्चिमी पर्वत श्रेणियों के उस पार किसी के तम-श्यामल वेश्म-द्वार पर जाकर मूर्च्छित हो जाने वाला यह ज्योतिर्मय देवता किस रूप का है! एक बार उसकी ओर देखिये। फिर कल्पना कीजिये कि वहाँ किस प्रकार की भीमकाय ज्वाला-तरंगे उत्थित और पतित हो रही होंगी—कितनी अस्थिरता, कितनी चंचलता वहाँ के कण-कण में छायी होगी!

सूर्य में यत्र-तत्र जो धब्बे दिखलायी देते है, वे भी अविस्मय-
ार नहीं है! यदि आप को वह शक्ति प्राप्त हो जाय कि
कसी प्रकार का भी तापमान या वातावरण विपर्यय आपके
ारीर का कोई अनिष्ट नहीं कर सके तो आप इन धब्बों की
ास्तविकता देखकर भयातिरेक से विह्वल हो उठेंगे! ये धब्बे
ा खाइयाँ है जिनमें हमारी पृथ्वी आसानी से समा जा सकती है!

सूर्य के बाद हमारे नेत्रों को अन्तरिक्ष-पथ मे सर्वाधिक आक-
र्षत करता है वह राकेश, जिसकी मदिरामयी ज्योत्स्ना पूर्णिमा-
निशीथ मे हमारे प्राणों को न जाने किस चिरवियुक्त जीवन-साथी
के श्री-चरणों की स्मृति से विह्वल कर डालती है!

कलाकार ने समस्त देशों मे समस्त युगों मे इस ज्योत्स्ना-दानी
चन्द्रमा से प्रेरणाएँ प्राप्त की है। न जाने कैसी तो इसकी श्वेतघन-
चुम्बित सुषमा मन-प्राण को एक अभिनव मोह-जाल मे बद्ध-सा
कर डालती है और एक विचित्र भोवोन्मादना-सी मस्तिष्क की
शिराओं को अभिभूत कर डालती है। मै औरों की बात नहीं
कहता, मेरा तो यह व्यक्तिगत अनुभव है कि चन्द्रिका-स्नात निशाएँ
पार्थिव चिन्ताओं को दूर करके दूरवर्ती स्वप्नों को अवतरित कराने
मे अनुपम है।

निरन्तर घटते-बढ़ते रहने वाले इस आकाशविहारी के सम्बन्ध
मे भी वैज्ञानिक युग के पहले पर्याप्त कल्पनाएँ की जा चुकी है।
लेकिन हमे तो वैज्ञानिक पद्धति से प्राप्त किये गये ज्ञान पर ही
भरोसा करना है।

वैज्ञानिक पद्धति से चन्द्रमा के सम्बन्ध में जो ज्ञान प्राप्त हुआ

है, वह चन्द्रमा का महत्व हमारी आँखों मे बढ़ाता नहीं, घटाता ही है! इसे कवि की कल्पना चाहे जिस अनिन्द्य सुन्दर रूप मे देखे—विरह-संतप्त प्राणी इसकी मदिरामयी किरणों से चाहे जितना आश्वासन प्राप्त करे,—रजत-मेघों मे छिप-छिपकर निकल-निकल पड़ने वाली इसकी छवि से कलाकार चाहे जितना विमोहित हो ले, विज्ञान इसे मृत ग्रह के अतिरिक्त और कुछ नहीं कह सकता। दूरवीक्षण यंत्रों से एवं वैज्ञानिक तर्क-पद्धति से चन्द्रमा मे किसी प्रकार के जीवन की अवस्थिति अस्वीकृत हो गयी है। वातावरण और जल—इन दोनों का वहाँ एकान्तिक अभाव है। और इनके अभाव मे वहाँ उस जीवन की स्थिति कैसे हो सकती है, जो हमें इस धरित्री पर दिखलायी देता है।

विज्ञान चन्द्रमा को उन ज्वालामुखियों से भरा हुआ मानता है जो अब मृत्यु द्वारा आलिङ्गित हो चुके हैं। ये प्रशान्त ज्वाला-गिरि छोटे-छोटे नहीं हैं। काफी बड़े हैं। पृथ्वी की पर्वतश्रेणियों मे लाखों वर्षों तक निरन्तर हिम, वर्षा, वायु प्रभृति का आक्रमण सहते रहने के कारण काफी परिवर्त्तन हुए हैं, किन्तु चन्द्रमा मे जो पर्वतश्रेणियाँ दृष्टिगत होती हैं, वे वैसी ही हैं, जैसी आज से कुछ लाख वर्ष पहले थीं।

चन्द्रलोक की गिरिश्रेणियों के सम्बन्ध में ज्योतिर्विज्ञानवेत्ताओं ने सन्तोषप्रद ज्ञान प्राप्त किया है। उनकी लंबाई और ऊँचाई प्रभृति से अभिज्ञ होने के साथ ही उन्होंने विभिन्न पर्वतों के विभिन्न नाम भी रख दिये हैं। चन्द्रलोक के ऊँचे पर्वत का नाम Mount Huyghaus रखा गया है। यह करीब १८००० फीट ऊँचा है।

१५००० से कुछ ऊपर की ऊँचाई वाले दो अन्य पर्वतों का नाम Mount Hadlay और Mount Bradlay रखा गया है। एक ३००० शिखरों वाली और ४५० मील लम्बी पर्वतमाला भी चन्द्र-लोक मे है, जिसका नाम Apanminas रखा गया है।

चन्द्रलोक का जो भाग एक बार सूर्याभिमुख हो जाता है, वह फिर चौदह दिनों तक सूर्य-किरणों से तप्त होता रहता है। परिणाम यह होता है कि उस भाग मे अत्यधिक उत्ताप छा जाता है। इस पृथ्वी के किसी भी भाग मे उतनी गर्मी नहीं पड़ती। साथ ही, वह भाग जो इतनी अवधितक सूर्य-किरणों से अस्पृष्ट रहता है, अत्यधिक शीतल रहता है!

चन्द्रलोक का निर्माण किन पदार्थों से हुआ है, इस सम्बन्ध मे एक पाश्चात्य वैज्ञानिक ने नई-नई बातों का पता लगाया है। उसके कथनानुसार चन्द्रलोक का ऊपरी स्तर ज्वालामुखियों की राख से भरा पड़ा है। उसके इस कहने का आधार बहुत ही रूशवत है, अतः इसे मानने मे किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होनी चाहिये। यह तो निर्विवाद है कि चन्द्रलोक से जो आलोक हमारे ग्रह तक आता है, वह चन्द्रलोक का अपना नहीं है। सूर्य का प्रकाश ही चन्द्रलोक से आलिङ्गित होकर नशीली चाँदनी बनकर हमारी दुनिया मे आता है। उस वैज्ञानिक ने नानाविधि पदार्थों से रिफ्लेक्ट किये हुए सूर्यालोक मे और चन्द्रगत आलोक मे कोई साम्य नहीं पाया। लेकिन ज्वालामुखियों की राख से रिफ्लेक्ट सूर्यालोक और चन्द्रगत आलोक की परीक्षा करने पर कोई भेद दोनों मे नहीं मालूम हुआ।

सर जेम्स जींस ने भी चन्द्रलोक के ऊपरी पृष्ठ को राख से ढँका

हुआ ही माना है। सूर्य की किरणों के निरन्तर चौदह दिनों तक चन्द्रलोक पर पड़ते रहने पर एक भाग मे काफी गर्मी हो जाती है इसमें कोई सन्देह नहीं, किन्तु वह गर्मी केवल ऊपरी भाग मे ही रहती है। धरातल के एक इंच नीचे हिमानीकी-सी ही शीतलता होनी चाहिये क्योंकि राख ताप-सञ्चरण की सशक्त अवरोधिका है।

चन्द्रलोक में इस समय वातावरण का अभाव है, इसमे कोई सन्देह नहीं। किन्तु एक समय ऐसा रहा होगा, जब उसमे वातावरण की स्थिति रही होगी। किन्तु वातावरण के रहने पर भी जीवन के चिह्न वहाँ शायद ही दिखलायी पड़े हों। इसके कई कारण हैं, जिनमें प्राधान्य उन भयानक ज्वालामुखियों का है।

जीवन का जो स्वरूप हमें इस ग्रह पर दिखलायी दे रहा है, वह चन्द्रलोक में नहीं है—हो भी नहीं सकता क्योंकि वहाँ उन वस्तुओं का ऐकान्तिक अभाव है, जो हमलोगों के अस्तित्व के लिए अनिवार्य है। किन्तु केवल इसीलिए उन समस्त लोकों को, जहाँ जलवायु प्रभृति के चिह्न नहीं दिखलायी देते, भीषण और निशीथ-नीरव मरुस्थली की उपमा देना युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता। कुल ९२ तत्वों ने मिलकर जिस प्रकार इस वैचित्र्य मय विश्व की रचना कर डाली है, जिसमें इतनी विराट विभिन्नताएँ दृष्टिगत होती हैं, उसी प्रकार क्या इस विराट विश्व मे जीवन के स्वरूपों में पर्याप्त विभिन्नताएँ नहीं हो सकती हैं?

हमारे वर्तमान जीवन का जो स्वरूप है, उसमें जलवायु प्रभृति की आवश्यकता अनिवार्य है, किन्तु जीवन के अन्य स्वरूपों को भी इन पदार्थों की ही आवश्यकता हो, यह कैसे माना जा सकता है?

अब हमारी दृष्टि के सामने सारा का सारा तारांकित नीलाकाश है। जैसे शर्वरी का श्यामाञ्चल हो हीरक-कण से जटित, या किसी विप्रयोगिनी के अणु-कण जो प्रिय-पथ में गिरने पर उसकी सौन्दर्य-ज्योत्स्ना से द्योतित हो रहे हों! या किसी पथहारा यात्री को आश्वस्त करने के लिए किसी के द्वारा जलाये गये विशृंखलित दीपक!

सचमुच, अन्तरिक्ष के तारकों को देख प्राणों मे न जाने कहाँ से रस का स्रोत-सा उमड़ आता है। कल्पना-विहग निद्रा त्याग कर दूर देश की ओर उड्डीन होने के लिए मचल उठता है। टूटते हुए तारों ने तो अनेक कवियों द्वारा अश्रुसिक्त कविताएँ भी लिखायी है।

इन तारों को ध्यानपूर्वक देखने से मालूम होता है कि इनकी दीप्ति मे स्थिरता नहीं है। ये दृढ़तापूर्वक आलोक विकीर्ण न करके झिलमिल-झिलमिल करते रहते है। लेकिन सब ऐसा नहीं करते। कुछ ऐसे भी है जो झिलमिल-झिलमिल नहीं करते—जिनकी दीप्ति मे कुछ अंशों तक स्थिरता रहती है। ये प्रकाश-विन्दु विज्ञान के लिए आकर्षण केन्द्र रहे है और विगत दो-तीन शताब्दियों मे दूरवीक्षण यंत्रों की सहायता से ज्योतिर्विज्ञानवेत्ताओं ने इनके सम्बन्ध मे कुछ बहुत ज्ञान प्राप्त भी किया है।

ये तारे नहीं है, हमारे सौरमण्डल के ग्रह है। जिस प्रकार हमारा वासस्थल सूर्य के चारो ओर अण्डाकार-पथ मे परिक्रमा किया करता है, उसी तरह ये भी। इनकी स्थिति का ज्ञान मिस्र और भारतवर्ष के प्राचीन ज्योतिर्वेत्ताओं को था, इसमे कोई सन्देह नहीं।

सूर्य और चन्द्र की तरह इन ग्रहों के आकार मे अन्तरिक्ष के अन्य ज्योतिष्कों से कोई विशिष्ट पार्थक्य नहीं दिखलायी देता, इसलिये ज्योतिर्विज्ञान के अध्येताओं के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों के लिए इनका पहचानना कुछ कठिन-सा है।

फिर भी, कुछ ऐसे उपाय है जिनके द्वारा इन्हे पहचाना जा सकता है। सबसे सरल उपाय तो यह है कि आप आकाश के सर्वाधिक दीप्तिमान तारे को खोजना आरंभ कीजिये। यदि वह अतिशय दीप्तिमान तारा सीरीयस नहीं हुआ तो इसी बात की अधिक सम्भावना रहती है कि वह हमारे सौरमण्डल का कोई ग्रह ही है, जो अपने ग्रह पथ के उस स्थान पर उस समय आ पहुँचा है, जहाँ से अन्य स्थानों की अपेक्षा अधिक तेजस्वी दृष्टिगत होता है।

जो ग्रह पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य से अधिक निकट है, उसका भ्रमण-पथ पृथ्वी के भ्रमण-पथ के अन्तर्गत ही होगा और जो ग्रह पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य से अधिक दूरी पर संस्थित है, उसका भ्रमण-पथ पृथ्वी के भ्रमण-पथ से बहिर्गत होगा; क्योंकि समस्त ग्रह सूर्य के चारो ओर अण्डाकार-पथ मे परिक्रमा किया करते है।

जो ग्रह पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य से अधिक निकट है, उसे पहचानने का तरीका बड़ा आसान है। यह तो स्पष्ट है कि वह ग्रह जब हमारे अत्यधिक निकट आ जायगा, उस समय वह बिल्कुल नहीं दिखलायी दे सकता क्योंकि उसका जो भाग सूर्य-किरण-धौत हो रहा होगा, वह तो ठीक हमारी प्रतिकूल दिशा मे होगा और जो भाग किरणों से संसृष्ट होगा, वह हमारी ओर। जिस समय वह हमसे

अत्यधिक दूरवर्ती स्थान पर चला जायगा, उस समय उसका किरण-स्नात भाग हमारी ओर होगा, किन्तु दूरी के कारण उस समय भी वह स्पष्ट रूप से नहीं देखा जा सकेगा। यह ग्रह सूर्य से ४५° से अधिक दूरी पर कदापि नहीं रहता। और जब इतनी दूरी पर रहता है, उस समय उसकी ज्योति अन्य तारों या ग्रहों से अधिक रहती है। आप संध्या की मनोहर घड़ियों मे किसी उन्मुक्त स्थान मे खड़े हो जाइये और प्रतीची-क्षितिज की ओर देखना आरम्भ कर दीजिये। जब यह ग्रह सूर्य से ४५° की दूरी पर रहता है, उस समय प्रतीची-गगन मे इसे सूर्यास्त के समय अच्छी तरह देखा जा सकता है।

जो ग्रह पृथ्वी के भ्रमण-पथ से बाहर है, वे उस समय सर्वाधिक दीप्तिमान रहते है, जब वे हमारे अतिशय समीप आ जाते है अर्थात् जब सूर्य, पृथ्वी और वह ग्रह तीनों एक पंक्ति मे हो जाते है, ऐसी अवस्था मे रात्रि की तिमिराकुल घड़ियों मे हम उन ग्रहों के विद्योतित भाग को सुगमतापूर्वक देख सकते है। सूर्यास्त के बाद काफी समय बीत जाने पर दक्षिण आकाश मे हमें यह ग्रह अतिशय दीप्तिमान दिखायी देते है।

इनमे से एक तो जब पृथ्वी से अत्यधिक समीप आने के कारण रात्रि के तिमिर-पथ मे सर्वाधिक ज्योति-वितरण करता-सा प्रतीत होने लगता है, उस समय ध्यानपूर्वक देखने पर उसमे कुछ रक्तिमा दिखलायी देगी, क्योंकि वहाँ का धरातल ज्वालामुखियों की राख से ढँका हुआ है। अत्यधिक दूरी के भ्रमण-पथ पर चक्कर लगाता हुआ एक ग्रह जब हमारी पृथ्वी के अत्यधिक समीप आ जाता है, उस समय उसकी ज्योति पीली दीख पड़ती है। अन्य ग्रहों से यह

बहुत बड़ा है। हमारे सौरमण्डल का वही सबसे बड़ा ग्रह है। उसकी ज्योति बहुत ही आकर्षक होती है,—ज्योति मे विशेषता होने के कारण नहीं, आकार में विशेषता होने के कारण ।

इस सौरमण्डल के सबसे बड़े ग्रह को एक और तरीके से पहचाना जा सकता है। आपेरा ग्लास आँखों मे लगा कर खड़े हो जाइये और फिर आकाश के उस तारे की ओर देखना आरम्भ कीजिये जो सर्वाधिक दीप्त हो रहें हो। यदि आपको उसके आस-पास चार-पाँच नन्हें-नन्हें आलोक-बिन्दु दिखलायी दें तो निश्चय कर लीजिये कि आप उसी ग्रह को देख रहे है जो हमारे सौरमण्डल में आकार में सबसे बड़ा है।

ग्रहों को पहचानने का दूसरा तरीका यह है कि तारे साधा-रणतः झिलमिलाते है और ग्रह झिलमिलाते नहीं।

तीसरा तरीका सबसे अच्छा है। ग्रह आकाश के सभी भागों में दिखलायी देते हैं। अधिकतर तारक-समूहों मे ग्रह कदापि नहीं दिखलायी देते। एक ही अनधिकविस्तृत मार्ग है जिससे होकर चन्द्र सूर्य ग्रह हमें दिखलायी देते है। इस मार्ग का ज्ञान हो जाने पर तो ग्रहों को पहचानने का कार्य बिल्कुल आसान हो जाता है। लेकिन यहाँ उन तारों का ज्ञान हो जाना आवश्यक है, जो सूर्य, चन्द्र, और ग्रहों के इस भ्रमण-पथ मे चमका करते है। लेकिन यह कार्य कोई कठिन नहीं है। तारकों के ऐटलस का समुचित निरीक्षण करने से इनकी संस्थिति का समुचित ज्ञान हो जाता है।

अब तक नवग्रहों की स्थिति का पता लग चुका है और इससे अधिक ग्रहों की सम्भावना नहीं है। हमारी इस पृथ्वी के ये

ही आठ साथी है, जो इसी की तरह सूर्य के चारों ओर परिक्रमा किया करते हैं! विश्व के अन्य सौरमण्डल से अत्यधिक दूरी पर अवस्थित यह सौरमण्डल वास्तव मे अपना विचित्र अस्तित्व रखता है ।

इन नवग्रहों मे सबसे अधिक विचित्र तो यह पृथ्वी है जिस पर बैठकर हम रात्रि की तमसाकीर्ण घड़ियों मे विश्व के एक भाग को टिमटिमाते हुए दीपकों के रूप मे देख भर पाते हैं—वहाँ तक पहुँचने का कोई साधन नहीं प्राप्त कर पाते—जहाँ के बन्धन हमारी हस्ती को निशि-वासर चीत्कारों से भरा करते हैं!—जहाँ से हम किसी प्रकार भी कुछ मीलों से ऊपर नहीं जा सकते—जहाँ प्रत्येक कदम पर हमे अपने विरोधियों को परास्त करने मे अपनी शक्तियों का निरर्थक अपचय करना पड़ता है ।

सूर्य के सर्वाधिक सन्निकट जो ग्रह है, वह अन्तरिक्ष मे सदैव सूर्य के निकट ही दृष्टिगत होता है । साथ ही इसे हम दो ही समय देख सकते हैं । या तो सूर्यास्त के कुछ क्षण उपरान्त या फिर सूर्यागमन के कुछ क्षण पहले ।

यह हमारे वासस्थल की अपेक्षा बहुत ही छोटा है । ऐसे-ऐसे १५-१६ ग्रह मिलकर हमारे वर्त्तमान वासस्थल का-सा आकार ग्रहण कर सकते हैं ।

प्रशान्त ज्वालामुखियों के समूह क्षाराच्छादित राकेश मे और इस ग्रह में बहुत कुछ सादृश्य है । गुरुत्वाकर्षण-शक्ति की न्यूनता के कारण यह भी वातावरण-विहीन है । जिस प्रकार चन्द्र पृथ्वी की ओर सदैव अपना एक ही भाग किये रहता है, उसी प्रकार यह

ग्रह सूर्य की ओर सदैव अपना एक ही भाग किये रहता है। विभेद यही है कि चन्द्रमा हमारे वर्त्तमान वासस्थल का गुरुत्वाकर्षण-शक्ति का बन्दी है और यह ग्रह सूर्य की गुरुत्वाकर्षण-शक्ति का बन्दी।

यूनानी दन्तकथाओं मे एक स्थान पर आलंकारिक रूप मे सूर्य की और इस ग्रह की मैत्री का वर्णन किया गया है। क्या यह ठीक नहीं है ?

चन्द्रमा की ही तरह उस ग्रह से आगत प्रकाश का विश्लेषण करने पर वैज्ञानिको को इस बात का विश्वास करना पड़ा कि यहाँ भी ऊपरी स्तर पर ज्वालामुखी की राख का ही आवरण होना चाहिये। चन्द्रमा कुछ अंशों मे इस ग्रह की अपेक्षा अधिक सौभाग्य-शाली है क्योकि वह सूर्य से काफी दूर पृथ्वी के आकर्षण-पाश मे बद्ध है। इसका जो भाग सूर्य-किरणों द्वारा काफी समय तक तापित होता रहता है, वह इस ग्रह के उस उत्तम भाग की तुलना मे कुछ भी नहीं है जो सूर्याभिमुखी रखता है। सूर्य इस ग्रह से है ही कितनी दूर।

इस ग्रह से कुछ ही दूरी पर एक दूसरा ग्रह है। यह भी अपने साथी की तरह रात्रि की तिमिराकीर्ण घड़ियों मे नहीं देखा जा सकता। इसे देखने का प्रयास भी दो ही समय होना चाहिये। या तो प्राभातिक रवि-किरणों के संसृति-पथ मे प्रविष्ट होने के कुछ पहले ब्राह्म मुहुर्त्त मे या सांध्य प्रहरों मे, दिनान्त के उपरान्त।

यह जब हमारे अत्यधिक समीप आ जाता है, उस समय जितना बड़ा दिखायी देता है, उससे छ गुना कम दिखलायी देता है। चन्द्रमा की तरह यह भी परिवर्तित रूपों मे दृष्टिगत होता है।

सूर्य और चन्द्र को छोड़कर शर्वरी के श्यामाञ्चल मे यही सबसे अधिक ज्योतिवाला हीरक-कण है! कभी-कभी तो यह अत्यधिक उज्वल हो जाता है, लेकिन सूर्य के समीप होने के कारण इसे अधिक देर तक इस रूप मे देखना कठिन सा है।

पश्चिमी अन्तरिक्ष में यह ग्रह अक्सर दिखलायी देता है। कभी-कभी यही वह पतला द्योतित अश्रु-कण होता है, जो यामिनी के नीलाञ्चल मे किसी पथहारा कवि की मुरझाई हुई आँखों से गिरता है! इसमें कोई सन्देह नहीं की कि सूर्यालोक से इसकी द्युति मन्द हो जाती है, किन्तु अन्य तारों की द्युति और अधिक मन्द हो जाती है।

प्राभातिक कनक-किरणे अन्तरिक्ष-पथ के अन्य समस्त तारक-कुसुमों की जोवन-श्री का तो अपहरण कर लेती है और उन्हे धरित्री के कुसुमों के नैश-मलिन अस्तित्व मे समाविष्ट करने मे समर्थ हो जाती है, लेकिन कभी-कभी इस ग्रह का वे कुछ भी नहीं बिगाड़ पातीं। आकाश के अन्य समस्त ज्योतिष्कों के चले जाने पर भी यह अपने स्थान पर खड़ा-खड़ा न जाने किसकी प्रतीक्षा करता रहता है! अन्य ज्योतिष्कुमार तो निराश हो कर चले जाते है, लेकिन यह न जाने किस युग के विश्वास को प्राणों मे भरकर चुपचाप प्रतीक्षा करता ही रहता है!

कभी-कभी तो यह दोपहर मे भी देखा गया है!

इन ग्रहों के बाद जो ग्रह आता है, उससे हम परिचित है। उसी पर हम रहते है, चलते है, खाते है, सोते है, जीते है। उसी पर हमारे ओठों पर हास्य का आलोक बिखरता है और हमारे नयनों के अश्रुकण उसी के रजकण को भिगोते है! उसी पर हम

किसी के सुकोमल प्रेम का संबल पाते हैं और उसी पर हम निराशा के घातक अन्धकार से आक्रान्त होकर चीत्कार करते हैं।

इसकी आयु के निर्धारण का भी प्रयास वैज्ञानिकों ने किया है। २,०००,०००,००० वर्षों से अधिक आयु हमारे वासस्थल की नहीं होनी चाहिये। सूर्य के चारों ओर यह प्रति सेकेंड १८ मील की गति से अपने भ्रमण-पथ पर चला करता है। एक्सप्रेस ट्रेन पर तो आप चढ़े ही होंगे। उसकी गति को १२०० से गुणित कर देन पर तब आप पृथ्वी की गति की कल्पना कर सकते हैं।

हमारी यह पृथ्वी !........इसको भी हमने कितने-कितने भागों मे विभक्त कर रखा है ! इसका अस्तित्व कितना क्षुद्र है, इसकी कल्पना इसी से की जा सकती है कि यदि तारकसमूह का एक छोटा-सा फोटो लिया जाय, और उस फोटो को इतना बड़ा किया जाय कि वह सारे के सारे योरप को ढँक ले, तब कहीं उसमे हमारी पृथ्वी दिखलायी दे सकेगी।

जो हो, इस ग्रह के बाद—हमारे वर्त्तमान वासस्थल, इस पृथ्वी के बाद दो ग्रह अतरिक्ष-पथ मे यदा-तदा सर्वाधिक ज्योतिर्मय दिखलायी देते हैं।

इनमे से एक तो इतना बड़ा है कि उसमे हमारे वर्त्तमान वासस्थल के समान १००० वासस्थलों से भी अधिक सन्निविष्ट हो सकते हैं। हमारे सौरमण्डल का यह सबसे बड़ा ग्रह है।

लेकिन आकार मे इतना बड़ा होने पर भी यह बजन मे केवल ३०० या ४०० पृथ्वियों के ही बराबर है।

यह सूर्य की परिक्रमा उतने समय मे ही समाप्त करता है जितने

समय में हमारी पृथ्वी चार बार सूर्य की परिक्रमा कर डालती है। इसकी गति हमारी पृथ्वी से बहुत कम है—प्रति सेकेण्ड केवल आठ मील।

यह ठीक भी है। स्थूलकाय व्यक्ति जल्दी-जल्दी चल भी तो नहीं पाते।

ज्योतिर्विज्ञानवेत्ताओं ने पता लगाया है कि इस ग्रह के नौ उपग्रह हैं। ये उपग्रह आयतन में हमारे ज्योत्स्नामय उपग्रह से काफी बड़े हैं। और जिस प्रकार हमारे चाँद में ग्रहण होते हैं, उसी प्रकार इस स्थूलकाय ग्रह के चन्द्र में भी ग्रहण लगा करते हैं।

वृहद् दूरवीक्षण यंत्र से देखने पर इस ग्रह में नानाविध वर्णों के चिह्न दिखलायी देते हैं। कुछ हरे, कुछ लाल, कुछ दूसरे ही रंग के।

इस ग्रह के ऊपर सूर्य का जो आलोक निपतित होता है वह उस आलोक से २७ गुना कम है, जो हमारे ग्रह पर निपतित होता है। इस पर भी यह ग्रह काफी उज्वल है। इसका कारण इसके ऊपरी भाग की मसृणता है। मसृण पदार्थों पर साधारण-सा आलोक भी असाधारण रूप ग्रहण करने लगता है! कुछ समय पहले के ज्योतिर्विज्ञानवेत्ता यह मानने लगे थे कि इस ग्रह का कुछ अपना भी आलोक है, किन्तु उनकी यह कल्पना नितान्त भ्रामक थी क्योंकि जब-जब इस ग्रह का कोई उपग्रह सूर्यालोक से विरहित हो पाता है, तबतक वह अदृश्य होता हुआ पाया गया है। इस ग्रह का अपना आलोक होने से ऐसा सम्भव नहीं था।

जैसा कि अनुमान किया जाता है, इस ग्रह के वायुमण्डल में हाइड्रोजन, आक्सिजन, हिलियम, आरगन, नियन इत्यादि वायवीय पदार्थ हैं। मियेन और एसेलरीन गैस भी हो सकती हैं। लेकिन इनका अस्तित्व संशयास्पद है। एमोनिया के अस्तिव पर अब लोगों को संदेह नहीं रह गया है।

कुछ विचारक तो यह भी सोचते हैं कि जिस प्रकार इस पृथ्वी के अधिवासियों के लिए जल अत्यावश्यक है, उसी प्रकार इस ग्रह के अधिवासियों के लिए एमोनिया।

इस ग्रह के ऊपरी भाग में सूर्य-किरणों से समुत्पन्न उत्ताप बहुत कम है, इसकी कल्पना तो इसी से की जा सकती है कि हमारी पृथ्वी पर आनेवाले सूर्यालोक के कितना कम सूर्यालोक इस विशालकाय ग्रह पर आ पाता है। सेफ्रेस नामक एक पाश्चात्य ज्योतिर्वेत्ता ने इस ग्रह के ऊपरी स्तर के सम्बन्ध मे अनुमान करो हुए लिखा है कि वहाँ हिम-संहति या जल का ही प्राधान्य होना चाहिये।

इस ग्रह का निरक्ष-वृत्त इसके भ्रमण-पथ से बहुत कम आनत है। इस भ्रमण-पथ और निरक्षवृत्त में जो कोण निर्मित होता है, वह तीन डिग्री से भी कम हे। हमारे ग्रह के निरक्षवृत्त में और भ्रमण-पथ में जो कोण निर्मित होता है, वह साढ़े तेइस डिग्री के करीब है। हमारी पृथ्वी जिस बंकिम रूपां में सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण करती है, उस रूप मे वह विशालकाय ग्रह नहीं करता। इसी से अनुमान किया जाता है कि ऋतु-परिवर्त्तन संभावनाएँ इस ग्रह में नहीं हैं।

हमारे सौरमण्डल के समस्त ग्रहों में एक ग्रह बड़ा ही विचित्र और आकर्षक है। इस सौरमण्डल के सब से बड़े ग्रह की तरह तो उपग्रह इसके भी कई है, किन्तु उपग्रहों के आधिक्य के कारण ही इसका आकर्षण विवर्धित नहीं होता। इसको तीन गोलाकार रिंग्स भी घेरे हुए है। सन् १६१० मे गैलिलियो ने इन को पहले पहल देखा था। फिर १७५० मे थामस राइट ने इनके सम्बन्ध मे यह अनुमान किया कि ये इनके अन्य नव उपग्रहों की अपेक्षा अन्य कई छोटे-छोटे उपग्रहों के ही समह है जिन्हे हम अपने वर्त्तमान दूरवीक्षण यंत्र से नहीं देख सकते। सन् १८५७ मे विख्यात गणितज्ञ मैक्सवैल ने इस अनुमान की सत्यता पर प्रकाश डाला। उसके बाद सन् १८९५ मे अमेरिका के ख्यातनामा ज्योतिर्वेत्ता केपलर ने भी इनके सम्बन्ध में काफी गवेषणाएँ कीं। सर जेम्स जींस भी यही मानते हैं कि ये अनेकानेक नन्हे-नन्हे उपग्रह किसी समय एक ही विशाल उपग्रह के रूप मे रहे होंगे।

एक शताब्दी पहले तक जिस ग्रह को इस सौरमण्डल का अन्तिम और सबसे ज्यादा दूरी पर अवस्थित ग्रह समझा जाता था, उसके बाद के भी दो ग्रहों का पता ज्योतिर्विज्ञानवेत्ताओं को लगा है। इनमें से एक ग्रह के ज्ञान का श्रेय इंग्लैण्ड के एक गणितज्ञ जे० सी० आदस्य और एक अन्य ज्योतिर्वेत्ता यू० जे० जे० लेवेरियट को है! दूसरे ग्रह की अवस्थिति के ज्ञान का श्रेय एक अमेरिकन ज्योतिर्वेत्ता दर्सीवल लोवेल को है। इनके जीवन-काल मे इस ग्रह की संस्थिति का पता तो नहीं लग सका था, किन्तु इसके सम्बन्ध में इन्होंने कई अनुमान किये थे, जो १९३० के मार्च मे इनकी मृत्यु

के उपरान्त करीब-करीब सच निकले और मानव-जाति को अपने सौरमण्डल के एक अविज्ञात ग्रह का ज्ञान प्राप्त हुआ।

यह ग्रह सूर्य से इतनी दूरी पर स्थित है कि सूर्य की एक परिक्रमा देने में इसे उतना ही समय लगता है जितना हमारी पृथ्वी को २५० परिक्रमाएँ करने में लगता है। हमारा वासस्थल सूर्य से जितनी दूरी पर है, उससे यह ४० गुनी अधिक दूरी पर स्थित है!

सूर्य से इतनी दूरी पर रहने के कारण इसकी कैसी अवस्था होगी, इसकी कल्पना आसानी से की जा सकती है! इसका जलीय भाग ही नहीं, शायद इसका वाष्पीय भाग भी जम गया होगा।

जो हो, ये नवग्रह अपनी-अपनी विशिष्ट विचित्रताओं को लिये हुए विश्व के एक सुनसान कोने में अपनी हस्ती सम्हाले हुए खड़े हैं। इनकी उत्पत्ति कैसे हुई, इस सम्बन्ध मे निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। ग्रहोत्पत्ति के सम्बन्ध में कल्पनाएँ तो कई प्रकार की की गयी हैं, और आज से एक शताब्दी पूर्व जिस कल्पना का प्राधान्य था, वह आज सर्वथा गौण हो गयी है। आजकल अधिकतर ज्योतिर्वेत्ता यही मानते हैं कि सुदूर अतीत में हमारे सूर्य के पास से होकर एक बहुत विराट तारा निकला। उसके खिचाव के कारण हमारे सूर्य का एक भाग खिचाकर बाहर निकल गया और फिर वही विच्छिन्न अंश विभिन्न ग्रहों का रूप ग्रहण करके अपने जन्मदाता के चारो ओर परिक्रमा करने लगा। ग्रहों के आकार और वजन को देखते हुए इस अनुमान को अन्य अनुमानों की अपेक्षा अधिक प्रश्रय दिया जा सकता है।

इस सौरमण्डल के सम्बध में विज्ञान ने जो ज्ञान प्राप्त किया है, विगत पृष्ठों मे उसपर अच्छी तरह प्रकाश निक्षिप्त हो चुका है। अब आकाश के सुनील पथ मे स्वर्ण-कणों की भाँति बिखरे हुए तारकों के सम्बध में ज्योतिर्विज्ञानवेत्ताओं ने जो ज्ञानोपलब्धि की है, उसे भी स्मृति-पथ मे लाना आवश्यक है।

तारकों के विभिन्न आलोक के अनुपात के अनुसार यूनानी तारक-दर्शकों ने उनका विभिन्न नामकरण किया है। सर्वाधिक दीप्तिवाले तारों को प्रथम श्रेणी का तारा, उससे कम दीप्तिवाले तारे को द्वितीय श्रेणी वाला तारा और इसी प्रकार तृतीय, चतुर्थ एवं पञ्चम श्रेणी के तारों को वे एक दूसरे से पृथक करके देखा करते थे।

प्रथम श्रेणी का तारा षष्ठम श्रेणी के तारों की अपेक्षा साधारणतः १०० गुना अधिक दीप्तिवाला होता है। सर्वाधिक शक्तिवाले दूरवीक्षण यंत्र से केवल २०वीं श्रेणी तक के तारे को ही देखा जा सकता है। इससे भी कम दीप्तिवाले तारो को देखने में इस समय का कोई भी दूरवीक्षण यंत्र समर्थ नहीं है। प्रथम श्रेणी का तारा उस तारे की अपेक्षा कई लाख गुना अधिक दीप्तिमान होता है जो दूरवीक्षण यंत्र की सहायता से देखा जाता है।

यह तो आकाश के साधारण निरीक्षण से ही पता चल जाता है कि प्रथम या द्वितीय श्रेणी के तारों की संख्या बहुत कम है। अधिकांश तारे अधिक दीप्त दिखलायी नहीं देते। ज्योतिर्विज्ञान-वेत्ताओं ने सफलतापूर्वक तारकों की विभिन्न श्रेणियों की संख्या का पता लगाया है। यह कोई कठिन काम नहीं है। आप स्वयं

किसी स्वच्छ अन्धकारित यामिनी मे अपनी छत पर या किसी उन्मुक्त स्थान मे बैठकर सर्वाधिक तारों को गिनना आरंभ कर दीजिये। प्रथम श्रेणी के तारो से अधिक ज्योतित केवल ११ तारे मिलेगे, द्वितीय श्रेणी के ३९ तारे और तृतीय श्रेणी के १३३। द्वितीय श्रेणी के बाद के तारों की गणना करने मे आपको काफी कष्ट होगा और शायद आप असमर्थता का भी अनुभव करें। चतुर्थ श्रेणी के तारों की संख्या ४४६ है; पञ्चम श्रेणी के तारों की संख्या १४६६ और षष्ठम श्रेणी के तारों की संख्या ४७३२। इसके बाद के तारों की संख्या बढ़ने लगती है। चर्मचक्षुओं से वे देखे भी नहीं जा सकते। दूरवीक्षण यंत्र की सहायता आवश्यक है। नवीं श्रेणी के तारों की संख्या १३९३०० है, बारहवीं श्रेणी के तारों की संख्या २,५८८,००० है। १५वीं श्रेणी के तारों की संख्या २७,५४०,००० है। २० वीं श्रेणी के तारों की संख्या ५३०,९००,००० के करीब है।

हमलोगों का तारा सूर्य प्रथम श्रेणी के तारे की अपेक्षा १०,०००,०००,००० गुना ज्योतित है।

प्रथम श्रेणी के तारों का पाश्चात्य ज्योतिर्वेत्ताओं ने नामकरण कर दिया है। लेकिन वे नाम प्रिय नहीं मालम होते। मंने उन तारों के कुछ कोमल नाम रख दिये है। साथ ही, वे नाम पाश्चात्य नामों से मिलते-जुलते भी हैं, फलतः हिन्दी नाम लेने से ही पाश्चात्य नाम स्मरण हो आयेगा और पाश्चात्य नाम लेने से ही हिन्दी नाम। जैसे, एक तारे का नाम 'सीरियस' है। यह अन्य तारों की अपेक्षा बहुत ही ज्योतित तारा है। प्रथम श्रेणी के

तारों मे उसी का स्थान सबसे पहले आता है। इसका नाम मैंने 'श्री' रख दिया है। श्री नाम की कोमलता और म्रदिमा से कोई इन्कार नहीं कर सकता। साथ ही सीरियस मे और श्री मे नाम का सादृश्य भी है। इसी प्रकार 'कैनोपस' का 'कानन' रख दिया है। Vege का वेग, Capella का कपिल, Arcturus का अर्क, Rigel का रज, Procayon का प्रसन्न, Achernar का अनश्वर, Beta का व्रती, Altair का अत्रि, Betelgeuse का वातप्रमी, Aldeberan का देवर्ण, Pollux का पौलस्त्य, Spica का पिक, Antes का अन्तरेश, Fonanhaut का फेनिल, Regulus का गुलाब नाम रखा है! मै समझता हूँ, हिन्दी संसार को तारकों के ये हिन्दी नाम अपना लेने मे कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। इन हिन्दी नामों को याद करने से ही उनके अंग्रेजी नाम भी याद हो जाते है—नाम-सादृश्य के कारण। साथ ही, भारतीय श्रवणो को पाश्चात्य नामों मे जो एक प्रकार की परुषता-सी प्रतीत होती है, वह भी जाती रहती है।

आकाश-पथ मे कौन-सा तारा कहां पर स्थित है, यह जानने के लिए तारों के ऐटलस को और एक टार्च को पास मे रखना अत्यावश्यक है, ताकि अँधेरे मे एटलस को उसके प्रकाश मे देखा जा सके।

आकाश के ये छोटे-छोटे तारे आकार मे हमारे सूर्य से भी बड़े है और हमारे वर्त्तमान वासस्थल—इस पृथ्वी के समान कितनी ही पृथ्वियाँ उनमे लुप्त हो सकती है, इस पर साधारण मानवी मस्तिष्क विचार नहीं करना चाहता। ये तारे यहाँ से इतनी दूर है, इसीलिये ये इतने छोटे दिखलायी देते है, यह तर्क भी उसे

रुचिकर नहीं प्रतीत होता। दुर्भाग्यवश कोई भी ऐसा दूरवीक्षण यंत्र नहीं निर्मित हो सका है जो तारकों के वास्तविक स्वरूप को और उनके आकार-प्रकार को दिखला सके। लेकिन योतिर्विज्ञान-वेत्ताओं ने दूरवीक्षण यंत्र की सहायता लेते हुए अपने मस्तिष्क की शक्तियों का समुचित उपयोग करके तारकों के आकार की गरिमा का जो ज्ञान मानव-जाति को प्रदान किया है, वह वास्तविकता के बहुत समीप है। उनकी प्रणाली बहुत ही युक्तिसंगत है। तारकों का आकार कितना बड़ा होता है, इसकी कल्पना इसी से की जा सकती है कि एक तारे का वृत्त-व्यास २६०,०००,००० मील पाया गया है। यदि सूर्य को इस तारे के केन्द्र मे रख दिया जाय तो हमारी पृथ्वी अपना वार्षिक परिभ्रमण इसी तारे मे कर लेगी। पाठक इस तारे के आकार-प्रकार की कल्पना से विस्मयान्वित न हों। इससे भी बड़े तारे का पता लगा है। 'अन्तरेश' नामक एक तारक इसके कहीं बड़ा है। इसके वृत्त का व्यास करीब ४००,०००,००० मील है। यह माप पूर्णतया शुद्ध नहीं है, लेकिन पूर्णतया शुद्ध माप से अधिक दूरी पर भी नहीं है।

तारों से इस मर्त्यलोक तक आनेवाला प्रकाश अनेकानेक रहस्यों का समुद्घाटन करता है। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि प्रायः समस्त तारकों का निर्माण एक ही प्रकार की सामग्री से हुआ है। विकास की गति-पार्थक्य के कारण उनमे जो पार्थक्य दृष्टिगत होते हैं, उनको छोड़ दिया जाय, तो करीब-करीब सभी तारे तीन या चार श्रेणियों में सरलतापूर्वक विभक्त किये जा सकते हैं। साथ ही साथ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि जिन तत्त्वों

से हमारे वर्त्तमान ग्रह का निर्माण हुआ है, उन्हीं से ये समस्त तारे भी निर्मित हुए है। ऑक्सिजन, नाइट्रोजन, हिलियम, हाइड्रोजन, कार्बन, लोहा प्रभृति अपनी विशिष्ट प्रकाशधारा तारों से निक्षिप्त करते है। तारों के द्वारा जो प्रकाश हमारे इस मर्त्यलोक तक पहुँच पाता है, इससे वहाँ के पदार्थों की स्थिति का एवं उनके तापमान प्रभति का भी ज्ञान ज्योर्तिविज्ञानवेत्ताओं ने प्राप्त किया है। तारों के ऊपरी पृष्ठ के तापमान का ज्ञान उनके रंगों द्वारा प्राप्त किया गया है। हमारे सौरमण्डल का तारा सूर्य पीतवर्ण है, अतएव इसका तापमान ५००० ° से ६००० ° सेटीग्रेड के बीच का होना चाहिए। जिन तारो का रंग रक्तवर्ण है, उनका ताप मान २००० ° से ३००० ° सेटीग्रेड के बीच होना चाहिए। उस वृहद् तारे का, जिसका उल्लेख मै आगे कर चुका हूँ, रंग रक्तवर्ण है, अतएव उसका तापमान २००० ° से ३००० ° सेटीग्रेड बीच मे ही है; इससे अधिक या कम होने की सम्भावना नहीं प्रतीत होती। 'श्री' नाम का तारा श्वेतवर्ण का है, और श्वेतवर्ण के तारों का तापमान ८००० ° से लेकर ११,००० ° सेंटीग्रेड तक होने की सम्भावना है। 'आतपत्र' नामक तारे का रंग नारंगी पाया गया है, फलतः इस नियम के अनुसार उसका तापमान ४००० ° सेटीग्रेड के करीब होना चाहिए। रंगों के द्वारा तापमान-निर्धारण की यह यह पद्धति भ्रामक नहीं है।

कानन (कैंपोपस) नामक एक तारा हमारे इस सूर्य की अपेक्षा ८०,००० गुना अधिक प्रकाश विकीरित करता है। इसका आकार-प्रकार इतना बड़ा है कि वेनस के समूचे भ्रमण-पथ को

अपने मे सन्निविष्ट कर सकता है। जो जितनी अधिक ज्योति विकीर्ण करता है, उसका वजन भी उतना ही अधिक पाया गया है। तारों के संबन्ध में इधर गणित पर आधारित एक नवीन सिद्धान्त का आविष्करण हुआ है। इसके अनुसार तारों का केन्द्र अत्यधिक सघन होता है। १,०००,०००,०००,०००° संटीग्रेड के करीब तारों के केन्द्र का तापमान होता है। सघनता एवं तापमान केन्द्र के ऊपरी पृष्ठ पर बराबर कम होते जाते हैं। प्रायः समस्त तारों के मध्यवर्ती भाग मे सघनता के सिद्धान्त को स्वीकार कर लेने से उनके दो भागों में विभक्त हो जाने की क्रिया सरलतापूर्वक समझ में आ जाती है। केवल वाष्पीय तारे दो तारों मे परिणत नहीं हो सकते। इस सिद्धान्त के अनुसार एक बात और भी विचारणीय है। तारों के केन्द्रवर्ती भाग में तापमानका आधिक्य होते हुए भी उसका व्यापार इस प्रकार का होता है, जैसे वह हिम-शीतल हो। इस अत्यधिक तापमान की अवस्था में अणुओं से विकिरण की शक्ति नष्ट हो जाती है और इसीलिये यह भाग सर्वथा शीतल प्रतीत होता है। सघनता का एक और प्रमाण है। हेलियम पर पर्याप्त दबाव डालकर ४० सेंटीग्रेड के तापमान तक उसे सघन रूप में रखा गया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि दबाव पर्याप्त होने से तापमान का आधिक्य होते हुए भी पदार्थ की सघनता नष्ट नहीं हो पाती और वह वाष्पीय रूप में परिणत नहीं हो पाता।

तारों से जो प्रकाश हमारी इस पृथ्वी तक आता है, उसके विश्लेषण से यह प्रमाणित हो गया है कि ये तारे बिल्कुल सूर्य के समान हैं। रजनी के तिमिराकीर्ण अन्तरिक्ष-पथ में किसी बिछुड़े

हुए साथी की सुकोमल स्मृति में समान टिमटिमाने वाले ये तारे दूरवर्ती सूर्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

सौभाग्यवश ज्योतिर्विज्ञान के अध्येताओं को दूरवीक्षण यंत्र के रूप में एक सच्चा सहायक मिल गया है, अन्यथा विज्ञान की यह शाखा एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकती। दूरवीक्षण यंत्र के अभाव में तारों के अध्ययन का प्रयास किया गया है, इसमें कोई सन्देह नहीं, किन्तु वह सर्वथा महत्त्वहीन है। यूनान के एक सत्यान्वेषी के जीसस क्राइस्ट की मृत्यु के करीव-करीब १३७ वर्षों के उपरान्त केवल १०२५ तारों की स्थिति का परिचय जिज्ञासु-जगत् को दिया था। कुछ-कुछ इतने ही तारों की स्थिति का पता समरकंद के एक विचारक ने भी लगाया था—यूनानी ज्योतिर्वेत्ता के करीब १३००० वर्ष बाद। सन् १५८० ईस्वी में एक ज्योतिर्वेत्ता ने तारों की गणना का प्रयास फिर किया और करीब-करीब उतने ही तारों की स्थिति का पता वह भी लगा सका। यदि दूरवीक्षण यंत्र मानव-जाति को नहीं मिल पाता, तो शायद इससे अधिक तारों की संख्या का पता अभी तक नहीं चल पाता क्योंकि चर्म-चक्षुओं के द्वारा एक हजार से अधिक तारे नहीं देखे जा सकते और यदि बहुत ही स्वच्छ निशा हो एवं नेत्रों की शक्ति भी अत्यधिक हो तो अधिक से अधिक ३००० तारे देखे जा सकते हैं। ऐसी अवस्था में यदि उन ज्योतिर्वेत्ताओं ने इतने कम तारों की तालिका बनायी तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं।

लेकिन ज्यों-ज्यों दूरवीक्षण यंत्र का परिष्कार होने लगा, त्यों-त्यों तारों की संख्या भी बढ़ती गयी। ढाई इञ्च के दूरवीक्षण

यंत्र से करीब ३०००,००० तारे अन्तरिक्ष के आधे भाग मे देखे गये। माऊंट विलसन की वेधशाला के १०० इञ्चवाले दूरवीक्षण यंत्र से १००००० – १००००० तारे दिखलाई देते हैं। हो सकता है, दूर-वीक्षण यंत्र की शक्ति अधिक बढ़ने पर अधिक तारे दिखलायी दें।

तारे हमारे चर्म-चक्षुओं को किसी विप्रयोगी के उन अक्षु-विन्दुओं के रूपों मे क्यों न दिखायी दे, जो निष्ठुर प्रिय की सौन्दर्य-ज्योत्स्ना से चमकते रहते हैं, वे वास्तव मे हे सूर्य ही और उनका वृत्तव्यास कम से कम ५०,००० मील का तो अवश्य ही है। वातप्रमी नामक एक तारे का वृत्तव्यास २९०,०००,०० मील पाया गया है। यदि हमारा आलोकदाता सूर्य इस तारे के ठीक केन्द्र मे रख दिया जाय तो हमारी यह पृथ्वी इस तारे मे ही अपनी वार्षिक परिक्रमा कर लिया करे।

ज्योतिर्विज्ञानवेत्ता निरन्तर तारों के सम्बन्ध मे नूतन ज्ञान प्राप्त करते जा रहे हैं। अभी तक तारों के सम्बन्ध में हमने जो ज्ञान प्राप्त किया है, वह उस ज्ञान के सामने सर्वथा नगण्य है, जो हमने तारों के बारे में नहीं प्राप्त किया है। फिर भी विज्ञान अपने कदम बढ़ा रहा है और अपनी बुद्धि के बल पर धीरे-धीरे वह नानाविध निष्कर्ष भी निकालता जा रहा है। कवि को वैज्ञानिकों की इस तपस्या से लाभ पहुँच रहा है, इसमे कोई सन्देह नहीं। पहले तारकों की ओर आधीरात के सन्नाटे ने जब वह देखता था तो प्रवासी की वेदना से उसका हृदय अभिभूत हो जाता था और उसका मानस-विहग उन दूरवर्ती आकाश-विन्दुओं में किसी खोये हुए देश का अन्वेषण करने लगता था। लेकिन वह

अपनी इस प्रभृत्ति का कारण नहीं समझ पाता था। विज्ञान ने उसे इसका कारण समझने मे पूरी मदद पहुँचायी है।

इस सौरमण्डल के सम्बन्ध में और अन्य कोटि-कोटि सूर्यों के सम्बन्ध मे वैज्ञानिक निरीक्षणों ने जो प्रकाश निक्षिप्त किया है, उसकी अभिव्यक्ति हो चुकी। अब सारे के सारे विश्व को विज्ञान की दृष्टि से देखना अयौक्तिक नहीं प्रतीत होता।

यह विश्व बहुत ही बड़ा है, यह तो देख ही लिया गया—इतना बड़ा है कि हमारे इस वासस्थल का अस्तित्व ही इसमे लुप्त हो जाता है। हमारा ग्रह ही क्या, हमारा सौर-मण्डल ही इसमे न जाने कहाँ खो जाता है। लेकिन यहाँ एक बात विचारणीय है। विश्व की यह महत्ता हमारी कल्पना को इसीलिये चमत्कृत और विस्यमान्वित करती है कि हम स्वयं क्षुद्र है। विश्व की इस महत्ता को हमारी क्षुद्रता की अपेक्षा है। मान लीजिये, मै आकार मे इस विश्व से भी बड़ा होता, तो मेरे लिए इस विश्व की महत्ता एक प्रकार से नष्ट ही हो जाती। मै इसे उसी दृष्टि से देखता, जिस दृष्टि से अपने से छोटे आकार वाले अन्य प्राणियों को देखता हूँ। या मान लीजिये, जिस मकान मे बैठकर मै यह पुस्तक लिख रहा हूँ, वह मुझसे जितना बड़ा है, उतना ही बड़ा मुझसे यह विश्व रहा होता तो मै इसे उसी दृष्टि से देखता, जिस दृष्टि से अपने इस मकान को देख रहा हूँ। मेरा यह मकान मेरे लिये तनिक भी विस्मयोत्पादक नहीं। उसी प्रकार यह विश्व भी मेरे लिये एक सामान्य-सी चीज हो गया होता। विश्व के सम्बन्ध मे मेरी जो धारणाएँ उस समय है, वे बदल जातीं, लेकिन विश्व मे तो कोई परिवर्त्तन नहीं होता।

हो सकता है, इस विश्व के अन्य ग्रह के रहनेवाले उत्कृष्ट प्राणियों के लिए इसका वही स्थान हो, जो हमारे लिए इस ग्रह का है। यह अनावश्यक है कि उनका आकार मानवी आकार से अधिक हो। हाँ, उनके मस्तिष्क की क्षमता मानवी मस्तिष्क की अपेक्षा करोड़ों गुनी अधिक अवश्य होनी चाहिये। इसी ग्रह पर देखिये न। अभी-अभी मेरे घर के अन्दर एक युवती ने प्रवेश किया है--प्रतिवेशिनी युवती ने। वह इस पृथ्वी को क्या जाने कितनी बड़ी समझती होगी। यहाँ के नगरों का स्वरूप भी उसके लिये बहुत बड़ा है। लेकिन जो व्यक्ति देशदेशान्तर की यात्रा कर चुका है, उसके लिये इन नगरों का स्वरूप छोटा हो जाता है। जिस व्यक्ति का जितना ही सुमहान् मस्तिष्क होगा, उसके लिये यह पृथ्वी उतनी ही छोटी होगी। इस पृथ्वी पर ऐसे भी कुछ महामनीषी होंगे जिनकी दृष्टि मे एशिया, यूरोप या अमेरिका उतना ही बड़ा होगा, जितना बड़ा किसी अशिक्षित नारी की दृष्टि में यह राँची शहर।

इसी प्रकार यह असम्भव नहीं है कि अन्य उत्कृष्ट ग्रहों के अधिवासियों के लिये यह विश्व उतना विराट और रहस्यमय नहीं हो, जितना हम लोगों के लिये है!

कवि यदि व्योम-पथ के दीपकों के रूप मे तारों को देखता है तो वैज्ञानिकों को उस पर हँसना पड़ता है। ऐसा करके वे अपना ही अपमान करते हैं। मेरी मेज पर यह जो लालटेन जल रही है, वह मेरे लिये लालटेन है, लेकिन एक चींटी के लिये वह कितनी महान् होगी! यदि वह चींटी इस लालटेन की महत्ता का ज्ञान

प्राप्त करके मेरा उपहास करने लगे तो सच्चे अर्थों मे कौन उप-हसित होगा ? मै या चींटी ?

जो हो, जिस प्रकार का जीवन हम इस ग्रह पर बिता रहे है, उसे देखते हुए तो यह विश्व बहुत ही विराट है—इनना विराट कि ह्दय विस्मय-विह्वल हो उठता है।

विश्व भी एक नहीं अनेक है, ज्योतिर्विज्ञानवेत्ता यह मानने लग है। सर्वाधिक शक्तिशाली दूरवीक्षण यंत्र से व्योम मे नन्हे से मेघखंड की तरह जो चीज दिखलायी देती है, वह दूरवर्ती विश्व के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। वहाँ के ग्रह पर यदि हम अपने दूरवीक्षण यंत्र को लेकर बैठे और देखना आरम्भ करें तो यह विश्व भी, जिसके एक नन्हे-से कोने मे हमारा सौर-मण्डल नीरव क्रन्दन किया करता है, नन्हे-से श्वेत मेघखण्ड की ही तरह दिखलायी देगा !

विश्व की इस विराटता को देखते हुए यह कहना कि अन्य तारों के ग्रह नहीं है और यदि संयोगवश कहीं-कहीं वे उत्पन्न भी हो गये है तो वहाँ जीवन की अवस्थिति नहीं है, अर्थात् भ्रमपूर्ण अहम्मन्यता का परिचय देना है। हमारा सूर्य ही इन अरबों-खरबों सूर्यो मे एक ऐसे ग्रह का जन्मदाता हो सके, जिसमे जीवन नाम की चीज का समुद्भव हो गया है, यह बात सर्वथा अमान्य-सी प्रतीत होती है।

यदि मै भूलता नहीं हूँ तो शायद हक्सले ने अपनी किसी किताब में लिखा है कि यदि किसी बन्दर को टाइपराइटर पर उटपटांग तरीके से हाथ मारने को छोड़ दिया जाय और वह करोड़ों

वर्षों तक टाइप करता जाय तो दुनिया की जितनी भी अच्छी या बुरी किताबें है सब उसके द्वारा लिख दी जायँगी। शेक्सपियर, मिल्टन, कोलरिज, वर्डस्वर्थ प्रभृति की कविताएँ भी वह टाइप कर देगा! लेकिन उन किताबों की संख्या अधिक रहेगी, जो अर्थहीन होंगी। इसी प्रकार क्या यह संभव नहीं कि इस विराट विश्व में भी जो कार्य हो रहा है, वह उस बन्दर के कार्य की ही तरह अन्धाधुन्ध हो रहा हो, लेकिन कहीं-कहीं जीवन नाम की चीज स्वतः उत्पन्न हो गयी हो!

ऊपर से देखने पर हक्सले का यह सिद्धान्त कुछ सशक्त-सा प्रतीत होता है, लेकिन गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर इसकी निस्सारता स्पष्ट हो जाती है। विश्व की क्रियाएँ अन्धाधुन्ध हो रही है या किसी सज्ञान शक्ति द्वारा ठीक तरह नियमबद्ध रूप में हो रही है, इसको अभी छोड़ दीजिए। इस सम्बन्ध मे विचार करने की अभी कोई आवश्यकता नहीं। अभी तो हमे यह देखना है कि इस पृथ्वी के अतिरिक्त अन्य ग्रहों पर जीवन की अवस्थिति है या नहीं। कई ज्योतिर्विज्ञानवेत्ता तो अन्य सौर-मण्डलों की स्थिति ही नहीं मानते क्योंकि उनके दूरवीक्षण यंत्र दूरवर्ती तारों को तो देख पाते है, किन्तु उनके ग्रहों को नहीं। लेकिन दूरवीक्षण यंत्र के द्वारा दूरवर्ती ग्रहों को न देख पाने का यह जो कारण है, वह कोई तथ्य नहीं रखता। दूरवीक्षण यंत्र मे अभी क्या जाने कितने परिष्करण की आवश्यकता है।

साथ ही, बहुत-से ज्योतिर्विज्ञानवेत्ता यह भी कहते है कि इस विश्व में दो तारों के पास-पास आने की घटनाएँ बहुत कम हो

सकी होंगी, क्योंकि रिक्त स्थानों का बाहुल्य है! संयोगवश ही हमारे तारे से एक दूसरा तारा टकराता है और इस तरह की घटनाएँ जब अन्यत्र नहीं हो सकती हैं, तब ग्रहों की समुत्पत्ति कैसे सम्भव है?

लेकिन यह दलील बहुत दुर्बल है। एक तो यह कहना कि किसी अन्य तारे के टकराने से ही ग्रह-मण्डल की समुत्पत्ति हुई है, कोई सशक्त आधार नहीं रखता। और यदि इसे मान भी लिया जाय तो यह कैसे कहा जा सकता है कि अन्यत्र भी ग्रहों का समुद्भव इसी नियम से होना चाहिये। हो सकता है, वहाँ ग्रहोंका समुद्भव कुछ दूसरी ही प्रणालियों से हुआ हो! यह कोई आवश्यक नहीं है कि एक ही कारण सर्वत्र ग्रहों का निर्माणकारी हो!

विश्व मे करोड़ों ग्रहों के अस्तित्व को हमे मानना ही पड़ता है। वहाँ जीवन की भी अवस्थिति होगी, यह भी मानना अनिवार्य हे। हमारे दूरवीक्षण यन्त्र अभी इस योग्य नहीं हो पाये है कि केवल उन्हीं पर हम भरोसा करके सत्य को पहचानने की चेष्टा करें। हमे अपनी चिन्तन-शक्ति पर भी भरोसा रखना चाहिये।

विश्व के स्वरूप के बारे मे कुछ लिख कर तब मै जीवन के सम्बन्ध मे और इसके वास्तविक स्वरूप के सम्बन्ध मे प्रकाश डालूँगा।

सबसे पहले विश्व पर विचार करते समय हमारे सामने जो प्रश्न ज्वलन्त रूप मे उपस्थित होता है—वह है विश्व की सान्तता और अनन्तता का।

यह कोटि-कोटि सूर्यो, ग्रहों एवं उपग्रहों से शोभित विराट विश्व अनादि और अनन्त है, यह मानना विज्ञान के आलोक में

असम्भव-सा हो चला है। इसमे कोई सन्देह नहीं कि अभी भी कुछ विज्ञानवेता ऐसे है जो इस विश्व को अनादि और अनन्त मानते हैं, लेकिन उनकी यह धारणा भ्रान्ति पर आधारित है। भारत के भी अनेकानेक अतीतकालीन विचारकों ने इस आश्चर्योत्पादित सृष्टि को अनादि और अनन्त माना है। किन्तु विज्ञान के अनुसन्धानों से यह बात स्पष्ट हो गयी है कि विश्व के समस्त पदार्थ एकसम तापमान की ओर द्रुत गति से अग्रसर है, और तापमान का साम्य सभी प्रकार के कार्यों के अवसान का द्योतक हैं। जब यह मान लिया जाता है कि सृष्टि सान्त है तो उसे अनादि मानना सर्वथा अयौक्तिक एवं निराधार सा प्रतीत होने लगता है। जिसका आदि है, उसीके अन्त की कल्पना भी की जा सकती है। अनादित्व और अनन्तत्व साथ-साथ चलते हैं। सादित्व और सान्तत्व भी। लेकिन जब हम यह मान लेते हैं कि यह सृष्टि सादि है, और सान्त है तो यह प्रश्न हमारे मनमे कुछ कम आश्चर्यमयी विह्वलता नहीं जागृत करता कि आखिर तब सृष्टि के निर्माण के पहले क्या था और इसके विनाश के उपरान्त क्या रहेगा! इसके अतिरिक्त एक प्रश्न अपने स्वरूप अत्यधिक ज्वलन्त रूप प्रदान करके हमारे समक्ष उपस्थित हो जाता है और वह यह कि आखिर इस सृष्टि का कारण क्या है--क्यों यह विचित्र-सा खेल उत्पन्न हुआ, कुछ समय तक इस विराट शून्य में होता रहा और फिर एक मिथ्या स्वप्न की तरह तिरोहित हो गया! सृष्टि को अनादि या अनन्त मान लेने पर इस प्रश्न की गरिमा उतनी नहीं रहती, किन्तु इसको साद्यन्त मान लेने पर इन इन प्रश्नों का सम्मुखीन होना नितान्त आवश्यक हो जाता है।

प्राचीन भारतीय ऋषियों, महर्षियों ने नानाविध रूपों में इस प्रश्न का उत्तर दिया है और सृष्टि की उत्पत्ति के कारणों पर प्रकाश डाला है। पाश्चात्य देश-निवासियों ने भी अपनी-अपनी बौद्धिक शक्तियों के अनुसार एवं अपने-अपने सांसारिक अनुभवों और वासनाओं के अनुसार संसार की उत्पत्ति के रहस्यों को प्रकाश में लाने का प्रयास किया है।

जो हो, इतना तो हम देख ही चुके है कि जिस परिस्थिति मे हम इस समय है, उसमें यह विश्व अत्यन्त महान्, आश्चर्यकर और विचित्रातिविचित्र है।

विज्ञानवेत्ताओं ने इस विश्व का स्वरूप निर्धारण करते हुए इसे ३८४,०००,०००,००० × दस खरब × दस खरब × दस खरब × दस खरब क्यूबिक मील का माना है।

यदि विश्व को विश्व से परे हो कर देखा जाय तो यह एक सीमित, कम्पमान एवं प्रसरण शील बुलबुले के समान मालूम होगा? और इस विश्व के लिए इससे सुन्दर उपमा और कोई हो भी नहीं सकती। ये कोटि-कोटि सूर्य, ग्रह एवं उपग्रह जो हमारे लिए इतने महत्वपूर्ण है, उसके लिए—विश्व को विश्व से परे होकर देखनेवाले के लिए सर्वथा नगण्य अस्तितत्ववाले प्रतीत होंगे।

हमारे इस विश्व में करीब २०००,००० द्वीपविश्व है और वे प्रतिक्षण १००० मील की गति से स्थानच्युत होते जा रहे है। यह संख्या उन्हीं द्वीपविश्वों की है, जिन्हें दूरवीक्षण यन्त्र द्वारा देखा जा सकता है। इनके अतिरिक्त अनेक द्वीपविश्वों की स्थिति है, जिनका आभास भी मानव-जाति को नहीं मिल सका है।

यह विराट विश्व स्थिर नहीं है, प्रसरणशील है और गणि-तज्ञों ने पता लगाया है कि यह विश्व अपना वृत्तव्यास प्रत्येक १,४००,०००,००० वर्ष मे द्विगुणित करता जा रहा है। लेकिन इसकी सत्यता अभी निश्चित नहीं है। यदि वास्तव मे ऐसी बात है तो कई द्वीपविश्व, जो आज इस ग्रह की वेधशालाओं से दिखलायी दे रहे है, शीघ्र ही इस ग्रह के निवासियों के लिए सदा के लिए अदृश्य हो जायँगे और उस समय के मानव द्वीपविश्वों की जो संख्या निर्धारित करेंगे, वह इस समय की निर्धारित द्वीपविश्वों की संख्या मे अनेकांश मे कम होगी। इससे यह स्पष्टतः प्रमाणित हो जाता है कि इस ग्रह की वेधशालाओं से बहुत कम द्वीपविश्वों का का ज्ञान मानव-जाति को प्राप्त हो रहा है।

इस विश्व के एवं इस विश्व के पदार्थो के आकार-प्रकार के सम्बन्ध मे गणितज्ञों ने जो निष्कर्ष निकाला है, उसे पाठकों के समक्ष रखने के उपरान्त मै विश्व की प्रसरणशीलता पर प्रकाश डालूँगा।

द्वीपविश्वों का वृत्त-व्यास ३०,०००—३००,००० प्रकाश-वर्ष है। तारक-समूहों का वृत्त-व्यास २—१०० प्रकाश-वर्ष है और तारकों का ४,०००–४००,००,०००० मील है। ग्रहों का ४,०००—८०,००० मील है एवं उपग्रहों का २०—४,००० मील है। ग्रहो के मध्यवर्ती उपग्रहों एवं पुच्छल ताराओं का ४८० मील है। यह तो हुआ वृत्त-व्यास के सम्बन्ध में। अब इनके परिमाण के सम्बन्ध में जो अनुमान किया गया है, वह यों है। द्वीप विश्वो का परिमाण २,०००—२००,००० लाख सूर्यों के बराबर है।

तारक-समूहों का १००,००० सूर्य के समान है। तारकों का $\frac{1}{4}$--१०० सूर्यों के समान। ग्रहों मे हमारे इस वासस्थल का ६००० लाख × दस लाख × २८ मन है। चन्द्रमा का ६५ लाख × दस खरब × २८ मन है। पुच्छलताराओं का १ लाख × दस खरब × २८ मन के करीब है।

और, इन सबों का संकलन यह विश्व दस × दस खरब × दस खरब सूर्यो के समान है और इसका परिमाण १,४००,०००,००० प्रकाश-वर्ष है।

आइंस्टीन के सापेक्षवाद को लेकर विभिन्न पथों के वैज्ञानिकों ने अपना मार्ग-परिष्करण करना १९१७ बाद आरंभ कर दिया था। ज्योतिर्विज्ञान के क्षेत्र मे जिन कारणों का निक्षेपण सापेक्षवाद द्वारा हुआ है, वे हमारे लिए अतिशय महत्त्वपूर्ण हैं और विश्व की रूप-रेखा के निर्धारण मे हम उनकी अवहेलना नहीं कर सकते। विश्व की प्रसरणशीलता के सम्बन्ध मे जो कल्पना योतिर्विज्ञान के अध्येताओं मे उत्पन्न हुई, उसका श्रेय आइंस्टीन के इस सापेक्षवाद को ही है।

ज्योतिष्क-पर्यवेक्षण विश्व की प्रसरणशीलता का समर्थन कर रहा है। इस विराट विश्व को सम्पूर्णतः अपने पर्यवेक्षण का विषय विज्ञान बना सकेगा, इसकी कल्पना सर्वथा निराधार है। किन्तु फिर भी कम से कम जितने अंश को अपने अध्ययन का विषय बना सकने में मानव-जाति को सफलता प्राप्त हो रही है, वह भी भी उपेक्षणीय नहीं। जो स्थान हमारे इस ग्रह पर फ्रांस का है, मै समझता हूँ, मानव-जाति के सर्वोत्कृष्ट मस्तिष्कों के अध्ययन का विषय विश्व का जो अंश बन पाया है, वह निखिल में वह स्थान भी नहीं रखता है। १५० लाख प्रकाश-वर्षों की दूरी तक

को ज्योतिर्विज्ञानवेत्ताओं ने अपने निरीक्षण का विषय बना लिया है, और हमारे इस क्षुद्र सौरमण्डल को देखते हुए यह दूरी कितना महत्व रखती है, यह बताने की आवश्यकता नहीं। इस दूरी के अन्दर जो कुछ निरीक्षण किया गया है, उससे यह परिज्ञात हुआ है कि ज्यों-ज्यों दूरी बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों हम यह पाते हैं कि अन्य तारक-समूह अधिक द्रुतगति से भागे जा रहे हैं।

यहाँ मैं एक बात और कह देना चाहता हूँ। विश्व की प्रसरण-शीलता के इस सिद्धान्त के पीछे केवल निरीक्षण ही नहीं है और गंभीरतापूर्वक विचार करने पर इसी निष्कर्ष के पीछे क्यों, अधिकांश वैज्ञानिक निष्कर्षों के पीछे केवल प्रयोग और पर्यवेक्षण ही नहीं मिलेंगे, अन्य बहुत-सी बातें भी मिलेंगी। यह कहा जाता है कि विज्ञानवेत्ता अपने विश्वासों का आधार पर्यवेक्षण को बनाता है, अनुमानों को नहीं। अनुमान और कल्पनाएँ अभिनव प्रयोगों का पथ प्रशस्त करती हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं, लेकिन निष्कर्ष निकालने के लिये उनका अवलम्बन ठीक नहीं। लेकिन अनुमानों से पूर्ण विमुक्त हो कर निष्कर्ष निकालने का प्रयास असंभव है, विशेषकर ज्योतिविज्ञान मे। इस ग्रहसे परे के ग्रहों, सूर्यों, द्वीपविश्वों प्रभृति का ज्ञान हमे प्राप्त होता है, उसका स्वरूप-निर्धारण केवल पर्यवेक्षणसे नहीं होता, अनुमान का प्रवेश वहाँ अत्यावश्यक है। हाँ, वे अनुमान स्वस्थ अनुभवों पर आधारित होने चाहिये। अतएव विश्व की प्रसरणशीलता के सम्बन्ध में यही समझना चाहिये।

जिस गति से दूरवर्त्ती द्वीपविश्व हम से दूर हटते जा रहे हैं, वह उपेक्षणीय नहीं है। ज्यों-ज्यों नूतन निरीक्षण होते जा रहे

है, त्यों-त्यों इन द्वीप-विश्वों के दूर-गमन की गति पर भी अधिकाधिक प्रकाश पड़ता जा रहा है। इस समय तक जिस तारक समूह की गति सर्वाधिक पायी गयी है, वह प्रति सेकंड १५००० मील की गति से दूर हटता चला जा रहा है। यह हमारे ग्रहसे १५०,०००,००० प्रकाश-वर्षों की दूरी पर अवस्थित है। इस के आगे के तारक-समूहों के सम्बन्ध मे भी यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि वे इस की अपेक्षा अधिक द्रुतगति से हटते चले जा रहे होंगे।

प्रति ३२६ लाख प्रकाश-वर्षो की दूरी प्रत्येक क्षण मे ५५० किलोमीटर के नियम से गति-वृद्धि करती है। कहने का तात्पर्य यह है कि यहाँ से ३·२६ लाख प्रकाश-वर्षोकी दूरी पर स्थित तारक-समूह के हटने की गति प्रति क्षण ५५० किलोमीटर होगी। इसी प्रकार ३·२६ × ३० प्रकाश-वर्षों की दूरी पर स्थित तारक-समूहों के दूर भागने की गति प्रति क्षण ५५० × ३० किलोमीटरकी होगी। गति-निर्धारण की यह पद्धति एक ख्यातनामा वैज्ञानिक की निकाली हुई है, लेकिन उसकी पद्धति अभ्रामक नहीं प्रतीत होती। फिर भी यह हमे एक अस्पष्ट चित्र तो प्रदान करती ही है। इधर इस में बहुत से संशोधन किये गये है और उनके द्वारा जो गति निर्धारित हुई है वह गति को विवर्धित करती है। प्रति ३·२६ लाख प्रकाशवर्षों की दूरी प्रत्येक क्षण मे ५५० किलोमीटर ही नहीं, अपितु १००० किलोमीटर तक की गति इन संशोधनों के आधार पर रखती है।

जिस गति से अन्य तारक-समूह,—अन्य द्वीपविश्व हम से दूर हटते चले जा रहे है, उसे देखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है

कि वह समय दूर नहीं है, जब अनेकानेक तारक-समूह सदा के लिए इस ग्रह के निवासियों के निरीक्षण-क्षेत्र से बाहर निकल जायँगे ।

न्यूटनने केवल विश्व के समस्त पदार्थों की पारस्परिक आकर्षण-शक्ति पर ही प्रकाश निक्षिप्त किया था, किन्तु आकर्षण-शक्ति के साथ ही साथ इस विराट सृष्टि मे एक भीषण विकर्षण भी विद्यमान है, इस की कल्पना भी जागृत नहीं हो सकी थी। विकर्षण के सिद्धान्त का स्पष्टीकरण तो विश्व की इस प्रसरण-शीलता के ज्ञान से हुआ है, लेकिन आइंस्टीन को ही इस के आविष्करण का श्रेय मिलना चाहिये ।

यह विकर्षण हमारे सौरमण्डलमें या अन्य निकटवर्त्ती तारकों मे भी हो रहा है, इस मे कोई सन्देह नहीं, किन्तु इस की गति का ज्ञान हमे उसकी न्यूनता के कारण नहीं हो पाता । ज्यों-ज्यों हम दूरवर्त्ती पदार्थों की ओर अपने ध्यान को केन्द्रित करते है, त्यो-त्यों इस विकर्षण का स्पष्टीकरण होता जाता है, क्योंकि हमारे सौर-मण्डल से जो तारक या जो द्वीपविश्व जितनी ही दूरी पर है, उनके विकर्षण की गति भी उतनी ही अधिक है ।

लेकिन जितने भी परिवर्तन हो रहे है, सब सापेक्ष है । निरपेक्ष सत्य को छोड़ कर और कुछ भी नहीं है । विश्व का प्रस-रण हमारे भौतिक दृष्टिकोण से निरपेक्ष नहीं है । विश्व के इस प्रतिक्षण क्रियाशील प्रसरण को हम अणु का सूक्ष्मीकरण भी कह सकते है । ज्यों-ज्यों विश्व बढ़ता चला जा रहा है, त्यों-त्यों उसी दृष्टिकोण से, अणु का सूक्ष्मीकरण भी होता जा रहा है ।

इस प्रसरणशील विश्वको रबर के बैलून से उपमित करने का दुस्साहस कोई उतना बड़ा अपराध नहीं समझा जा सकता। द्वीप-विश्वों को इस मे सन्निविष्ट समझिये। अब इस बैलून में अच्छी तरह से हवा भरने दीजिये। बैलून का विस्तार बढ़ता जायगा। हमारी इस सृष्टि की प्रसरणशीलता को आप इस तरह समझ सकते है।

प्रसरणकी इस क्रियाके आरंभ होने के पहले इस विश्व का वृत्तव्यास १,०६८ लाख प्रकाश-वर्ष था, ऐसा सोचा जाता है। लेकिन अब इस समय इसका वृत्त-व्यास कितना है, इसका पता लगाना अतिशय कठिन है और इस के ज्ञान की कोई आशा भी नहीं दीखती। हाँ, यदि काँस्मिक किरणे वास्तव मे बहिर्जगत की हुई तो इन के द्वारा एक दिन विश्व के साम्प्रतिक वृत्त-व्यास का पता किसी सीमा तक लगाया जा सकेगा। अन्यथा वर्त्तमान वृत्तव्यास का पता लगाने का एक मात्र उपाय है कि विश्व की औसत सघनता का पता लगा कर फिर आरंभिक सघनता से उसकी तुलना करके देख लिया जाय। आरंभिक सघनता का अनुमान गणितज्ञों ने किया है। वर्त्तमान सघनता का पता लगाने की यही विधि है कि एक द्वीपविश्व को ले लिया जाय। फिर उसके समस्त तारों की गणना करके उनकी सघनता का अनुमान कर लिया जाय। फिर द्वीप-विश्वों को गुणित कर दिया जाय। इस प्रकार कम से कम १०० × १००० × १००००० × १०० × १००० × १००००० तारों का अस्तित्व मानना पड़ता है।

जो हो, इतना तो हमे मालूम हो ही गया है कि हम जिस

विश्व के एक नन्हे से ग्रह पर इस समय अपना जीवन-यापन कर रहे हैं, उसका स्थान सर्वथा नगण्य है और धीरे-धीरे सारा का सारा विश्व उससे दूर हटता जा रहा है—जैसे घोर घृणा से भर कर। जैसे, हमारा यह ग्रह कोई ऐसा स्थान हो जिसका संसर्ग भी उन्हें अपावन कर देगा! जैसे, राजयक्ष्मा के कीटाणुओं से हमारा सौरमण्डल भरा पड़ा हो!!

—×—

: ३ :

ज्ञानेन्द्रियों की सहायता से विश्व का जो स्वरूप अभी तक हमें प्राप्त हो सका है, उस पर अत्यंत संक्षेप में प्रकाश डाला जा चुका। अब विश्व के उस स्वरूप की ओर देखना है, ज्ञान प्राप्त करने मे हमारी वर्त्तमान भौतिक ज्ञानेन्द्रियाँ अक्षम है।

दार्शनिकों और कवियों ने तो इस अदृष्ट जगत् की ओर पर्याप्त ध्यान दिया है,—इसे समझने की चेष्टाएँ भी की हैं, किन्तु वैज्ञानिकवृन्द कुछ दशाब्दियों के पहले तक अदृष्ट जगत् से अपना सम्बन्ध विच्छिन्न रखना ही श्रेयस्कर समझते थे। अधिकांश वैज्ञानिक आज भी अदृष्ट जगत् को अपनी गवेषणा का विषय न बनाना ही उचित समझते है। जो कुछ उन्हें दिखलायी देता है—जो कुछ वे सुन सकते हैं—ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा जिनकी उन्हें अनुभूति होती है, उसके अतिरिक्त वे किसी भी विषय को विचार का विषय बनाने में अपनी बुद्धि का दुरुपयोग समझते हैं।

दृष्ट जगत को ही सब कुछ समझने वाले व्यक्ति अपनी अह-म्मन्यतापूर्ण अज्ञानता का ही परिचय देते हैं। ये जड़वादी इस ग्रह के परे की सुमहान् सुषमा की कल्पना भी कहाँ से कर सकते हैं, जब ये अपने शरीर को, अपने विचारों को ही अच्छी तरह नहीं समझ पा रहे हैं। इस ग्रह के अधिवासी अन्य ग्रहों एवं द्वीप-विश्वों के सम्बन्ध में विचार करने से पहले यह अच्छी तरह समझ ले कि वे विश्व के एक अत्यन्त नगण्य और तुच्छातितुच्छ प्रकाश स्पर्शित भाग को ही देख सकते हैं, जिसे वे प्रकृति के नाम से अभिहित करते हैं। प्रकृति ही सब कुछ है, यह कहने से पहले ये भ्रान्त जड़वादी प्रकृति को समझने की चेष्टा करें तो अधिक उपयुक्त होगा। ऐसा करने पर उन्हें अपनी क्षुद्रता का बोध अनायास ही हो जावेगा। इस ग्रह के अधिवासी अपने नेत्रों, श्रवणों, हाथों एवं अन्य अंगों के द्वारा अनुभूत विश्व को ही यदि विश्व का सम्पूर्ण रूप समझते हैं तो इससे बढ़ कर अबौद्धिकतापूर्ण दम्भ और क्या हो सकता है? हमें समझना चाहिए कि इस मायालोक की ही सहस्रों वस्तुओं को हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा नहीं देख सकते, फिर उस पार की चीजों को तो देख ही कहाँ से सकते हैं। इस ग्रह के अन्तिम छोर पर क्या हो रहा है, इस की अभिज्ञता मानवों को नहीं हो पाती है, इसी से उसको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। जब कवि अपने जीवन साथी को इस मायालोक की अन्तिम सीमा पर खड़ा होकर उसे अपने पास बुलाता हुआ देखता है, उस समय वह इन दाम्भिक जड़वादियों के लिए भले ही हास्यास्पद प्रतीत होता हो, किन्तु सत्य की किरणें उस समय उसी के कल्पना-पथ का शृंगार करती रहती हैं।

मानव-जाति का यह सौभाग्य है कि अदृष्ट जगत् पर विगत दशाब्दियों मे वैज्ञानिकों का ध्यान गया है और विज्ञानसम्मत प्रणालियो से इनके ज्ञान की प्राप्ति-चेष्टाएँ की गयी है। यूरोप की Psychical Research Society ने इस सम्बन्ध मे प्रशंसनीय प्रयास किया है और उसकी Proceeding मे अदृष्ट जगत् के सम्बन्ध मे की गयी गवेषणाओ का जो वर्णन है, वह मानव-जाति के ज्ञानकोष मे महत्वपूर्ण है। सर ऑलिवर लाज, फ्रेडरिक मायर्स, डॉ० हडसन, प्रो० बैरेट जैसे मनीषियो के अनवरत उद्योग से इस संस्था की नीव पुष्ट हुई थी और इन्ही महानुभावो की अक्लान्त साधना के फलस्वरूप मानवी व्यक्तियों की वास्तविकता पर विज्ञानसम्मत प्रकाश डाला जा सका है। विज्ञान के समग्र इतिहास मे इन मनीषियों के कार्य-कलाप का महत्त्व इस समय ज्योतिर्विज्ञान की गवेषणाओं को छोड़ कर सर्वोच्च है। मृत्यु के उपरान्त मानवी व्यक्तित्व का भी सम्पूर्ण विनाश हो जाता है या वह किसी रूप मे विद्यमान रहता है, इसकी ज्ञान-प्राप्ति किये बिना मानव-जाति की सारी ज्ञान-प्राप्ति निरर्थक है,—निस्सार है।

दुर्भाग्यवश विज्ञानवेत्तागण अभी तक ज्ञान-महोदधि की तट-वर्तिनी लहरों से ही स्पर्शित हो रहे है,—उसके आगे की लहरों से वे जब तक परिचित नहीं हो जाते, तब तक प्रकृति को वे इसी प्रकार अणुओं की पारस्परिक क्रिया समझते रहेंगे और जीवन को एक व्यर्थ का क्षुद्र विस्फूर्जन। अज्ञान और माया के इस कालिमा-मय आवरण को चीरती हुई ज्ञान की किरणे इस ग्रह पर कब आ सकेंगी, यह नहीं कहा जा सकता। यह भी हो सकता है कि यह

ग्रह युगयुगान्त तक इसी प्रकार अज्ञान-तिमिर से आक्रान्त रहे! लेकिन ज्ञान को न प्राप्त कर सकना उतना घातक नहीं, जितना अज्ञान को ज्ञान समझना। ज्ञानार्जन की अक्षमता की अवस्था में सांशयिकता को प्रश्रय देना अनौचित्यपूर्ण नहीं कहा जा सकता। यूनानी दार्शनिक पाइरो का संशयवाद निन्दनीय नहीं है।

लेकिन किसी विषय को न समझ कर उसकी अहम्मन्यतापूर्वक अवहेलना करना सर्वथा बौद्धिक दौर्बल्य का द्योतक है। आत्मा-सम्बन्धी विषयों मे वैज्ञानिक जगत् ने जो अवमानना प्रकट की है, वह उसके मस्तिष्क की ही अवमानना करती है,—आत्मा-सम्बन्धी गवेषणाओं की नहीं। नम्रतापूर्वक आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करने में अपने को असमर्थ माननेवाले वैज्ञानिकों के प्रति यह आक्षेप नहीं है। आईस्टीन ने आत्मा के अस्तित्व को मानने मे अपनी असमर्थता प्रदर्शित की है, लेकिन अहम्मन्यतापूर्वक नहीं। जो हो, भौतिक शरीर से विरहित आत्माओं के अस्तित्व के अनेक प्रमाण मिले हैं। कई सशक्त संकल्प-शक्तिवाले व्यक्तियों ने तो उन पर अपने अधिकार की स्थापना भी की है और आश्चर्यजनक कार्य करने में भी वे समर्थ हुए हैं। इस ग्रह पर निवास करने वाली भौतिक-शरीर-विरहित आत्माओं पर ही नहीं, अन्यान्य ग्रहों को गई हुई आत्माओं को भी प्रचण्ड इच्छा-शक्ति के द्वारा पुनर्वार इस ग्रह पर बुलाया जा सकता है—बुलाया गया है। लेकिन इस महान शक्ति से सम्पन्न व्यक्ति का आगमन इस ग्रह में यदा-कदा ही होता है।

इस भौतिक शरीर को परित्याग करने के उपरान्त आत्माएँ इस ग्रह पर विचरण करती हैं और आवश्यक शक्ति से सम्पन्न

होने पर उन की उपस्थिति से अभिज्ञ भी हुआ जा सकता है। बहुत-सी भौतिक शरीरधारिणी आत्माओं को भौतिक शरीर से रहित आत्माओं के द्वारा जीनव-पथ में साहाय्य भी मिलता रहता है--पारस्परिक स्नेह के कारण, जो कि एक के लिये प्रच्छन्न रहता है। सुकरात को अपने जीवन-पथ मे इसी प्रकार का साहाय्य प्राप्त होता था, जिसकी चर्चा उसने स्वयं की थी। सुकरात को अन्धविश्वासी या भावुक कहकर उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। चार्ल्स डिकेंस और जार्ज इलियट प्रभृति ने अपनी साहित्य-सर्जना मे जिन अदृष्य शक्तियों के सहयोग का उल्लेख किया है, वह उपेक्षणीय नहीं।

भौतिक शरीरधारी आत्माओं को भौतिक शरीर से विरक्ति होते हुए भी इस ग्रह पर रहनेवाली आत्माओं के द्वारा साहाय्य किस प्रकार मिलता है, इसे समझने के लिए नीचे के उदाहरण पर्याप्त होंगे। इसकी सत्यता मे सन्देह करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वैज्ञानिक जगत् के सामने इन्हे उपस्थित करने वाले सभी व्यक्ति प्रतिष्ठित एवं स्वस्थ मस्तिष्क वाले माने गये हैं--वैज्ञानिक जगत् मे समादृत भी।

Psychical Research के विद्वान् लेखक श्री डबल्यू० एफ० बैरेट एफ० आर० एस० ने अपने दो परिचित व्यक्तियों का इस सम्बन्ध में उल्लेख किया है। एक तो चीफ जस्टिस की पत्नी थीं, जो अपनी साधारण स्थिति मे किसी प्रकार की भी चित्रकला का प्रदर्शन नहीं कर सकती थीं और दूसरी एक ख्यातनामा नाटककार की वृद्धा माता थी। वह भी अपनी स्वाभाविक स्थिति मे एक रेखा भी अच्छी तरह नहीं खींच सकती थी। चीफ जस्टिस की पत्नी

के हाथ को सर्वथा क्रियाविरहित कर देने पर संध्या की धूसर घड़ियों मे उसने इतने सुन्दर चेहरे चित्रित कर दिये कि साधारण चित्र उनके सामने सर्वथा नगण्य मालूम होते थे। लेकिन अपनी वास्तविक स्थिति में लौटने पर फिर वह उनका अनुकरण लाख चेष्टा करके भी नहीं कर सकी। वृद्धा ने भी उस निष्क्रियीकरण स्थिति मे ऐसे रहस्यमय और गहन पर्णसमूह चित्रित कर दिये, जिन्हें किसी सिद्धहस्त चित्रकार की तूलिका ही चित्रित कर सकती थी।

डबल्यू स्टेटन मोसेज लन्दन युनिवर्सिटी कालेज स्कूल मे बीस वर्षो तक अध्यापक थे। उनके द्वारा भौतिक शरीर से विरहित आत्माओं ने लेखन-कार्य सम्पन्न किया था। वह वैज्ञानिक जगत् को ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी के एक एम० ए० के द्वारा उपलब्ध हुआ है, जिसकी सत्यप्रियता एवं बुद्धिमत्ता अविसंवादित है। मि० मोसेज की हस्तलिपि पर Human personality और Psychic Research की proceeding मे पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। मि० मोसेज की अपनी हस्तलिपि से उस हस्तलिपि में जो कि निष्क्रियीकरण-स्थिति में उनके हाथों के द्वारा लिखी गयी थी, महान् अन्तर विद्यमान है। मि० मोसेज की अपनी हस्तलिपि में सुन्दरता का लेश भी नहीं था, लेकिन उन हस्तलिपियों को सुन्दर कहना अनौचित्यपूर्ण प्रतीत होता है। मि० मोसेज का हाथ जिस समय इस लेखन-कार्य में व्यस्त रहता था, वे अपने मस्तिष्क को जटिल एवं बोधागम्य पुस्तकों के अध्ययन में व्यस्त रखते थे ताकि उनकी चेतना का प्रभाव उनके लेख पर न पड़े। वे लिखने की क्रिया को कभी भी अपने

अधिकार मे नहीं रख पाते थे। यह सर्वथा अप्रत्याशित होती थी और एक आकस्मिक एवं अनवरोधी शक्ति उन्हे लिखने के लिए विवश कर डालती थी। कभी-कभी वे एक विचित्र अचैतन्य एवं मूर्च्छना की अवस्था मे पड़ जाते थे और उस पराधिकृत अवस्था मे ऐसे-ऐसे शब्दों का उच्चारण करते थे जिनकी स्मृति उन्हे साधारण अवस्था मे तनिक भी नहीं रहती थी। उन स्वतः लिखित लेखों की रूप-रेखा को देखने से एवं उनमे जिन बातों का प्रतिपादन किया जाता था, उन पर विचार करने से मि० मोसेज को इस बात का दृढ़ विश्वास हो गया था कि वे उन अदृश्य एवं महान् आत्माओं के केवल यंत्रमात्र हो जाया करते थे। अदृष्ट जगत के सम्बन्ध मे उनकी विचारधारा मे इसके कारण क्रान्ति-सी हो गयी थी। यहां एक शंका की जा सकती है। वह यह कि मि० मोसेज की ही अप्रज्ञात चेतना के द्वारा लेख लिखे जाते थे और किसी आत्मा का इसमे कोई हाथ नहीं रहता था। किन्तु उनके उन लेखों मे कई ऐसी बाते पायी गयी है, जो इस शंका का निराकरण करती है। तीन बार उनके लेखों में मृत्यु का पूर्व-ज्ञान पाया गया, जब कि किसी को इसका आभास तक नहीं मिल पाया था। Psychical Research के लेखक के एक सुपरिचित व्यक्ति मि० मोसेज के पास बैठे हुए थे और उन्होंने इस घटना का पूर्ण वर्णन किया था। मि० मोसेज ने अकस्मात् ही एक घोड़ा गाड़ी का रेखाचित्र कागज पर अंकित किया और उसके बाद लिखा—"मैने आज अपने को मार डाला, बेकर स्ट्रीट !" और इसके बाद एक प्रकार की अचैतन्यावस्था में आकर अतिशय उत्तेजित होते हुए वे बोले—"हाँ, हाँ, मैने आज

अपने को एक स्टीम-रोलर के नीचे मार डाला—हाँ, हाँ, मार डाला !" उपस्थित व्यक्तियों मे किसी को भी पता नहीं चला कि इन शब्दों का क्या अर्थ था। लेकिन पीछे सांध्य समाचार-पत्र में यह पढ़ा गया कि एक मनुष्य ने बेकर स्ट्रीट मे स्टीम-रोलर के नीचे आत्महत्या कर ली थी।

ऐसे अनुभव कई व्यक्तियों को हुए है, किन्तु यहाँ सब का उल्लेख निरर्थक होगा। श्रीमती पाइपर जब किसी आत्मा से अधिकृत होती थीं तो मुख के द्वारा भाव-प्रकाश होता था। अधिकतर एक डाक्टर फिनुइट की आत्मा से ही वे अधिकृत होती थीं। कुछ व्यक्तियों ने श्रीमती पाइपर के ही दूसरे व्यक्तित्त्व को डाक्टर फिनुइट माना है, लेकिन यह सर्वथा भ्रामक प्रतीत होता है क्योंकि कई व्यक्तियों ने अपने मृत मित्रों के अस्तित्त्व के सम्बन्ध में विश्वसनीय बातों की अभिज्ञता इस डाक्टर की आत्मा के द्वारा प्राप्त की। कुछ दिनों के बाद श्रीमती पाइपर बोलने के स्थान पर लिखने लगीं। वह अचैतन्य एवं व्यामोह की अवस्था में लेटी रहती थीं और उनके पास ही कई व्यक्ति बैठे रहते थे। एक-एक करके वे उस लिखने वाले हाथ से बाते करते थे, जिनका उत्तर हाथ लिख कर देता था। इस प्रकार जिन बातों का पता लगा, वे अपना महत्व कम नहीं रखतीं। एक बार तो दो आत्माओं ने, जो श्रीमती पाइपर की मूर्च्छनावस्था में आयी हुई थीं, अपने को होमर और यूलेसिज बतलाया था !

पाठकों की मनस्तुष्टि के लिए मै कतिपय प्रयोगों का वर्णन करने के उपरान्त मै आगे बढ़ूँगा। इन प्रयोगों की सत्यता पर किसी प्रकार का सन्देह करना नितान्त निरर्थक है।

सर आलिवर लाज के ग्रंथ Survival of man में अनेक महत्वपूर्ण वर्णन है। उनमें एक यों है--

अमेरिका। १९०५ की १३ वीं दिसम्बर। श्रीमती पाइपर और डॉ० आर० हडसन।

भौतिक-शरीर-विरहित आत्मा ने श्रीमती पाइपर को माध्यम बना कर बातचीत करना शुरू कर दिया है।

--क्या आपने जार्ज से कोई सन्देश सुना है ?

आर० एच०--हाँ, कल रात को। धन्यवाद।

--उस नवयुवक के पिता का कुछ प्रभाव आप पर पड़ा ?

आर० एच०--नही।

--एक प्रकार का अन्याय-सा मालूम होता है कि हमलोग फिर उससे नहीं मिले। इससे सन्देश-प्रेषक आत्मा को भी पर्याप्त सहायता मिलती और हमारे लिए भी अच्छा होता।

आर० एच०--मैंने उसे सब समझा दिया है। वह इंग्लैण्ड से वापस आने पर अपने पिता के कुछ लेख भेजेगा। उसे यहाँ अधिक समय नही था और वह अब अपनी राय पर है। उसे घर छोड़ने के पहले यह जानने का कोई अवसर ही नही मिला कि उसे क्या करना चाहिये।

--हम लोग समझते है। और जब वह आत्मा हमलोगों के विश्वासी एवं श्रेष्ठ सहकर्मी जार्ज (बलहम) के साथ प्रतीक्षा कर रही है, हमलोग आरम्भिक बातों का ठीक कर लेने के उपरांत उसके कथन को सुनेगे।

आर० एच०--मुझे प्रसन्नता होगी।

—उस नवयुवक के पास स्वयं एक विशिष्ट प्रकाश था।

[अटपटी रेखाएँ अंकित होने लगीं। अन्तिम शब्द थे—मेरी सहायता करो।]

आर० एच०—कृपया आप जो कुछ चाहती हों, मुझे बताये।

—मैं अपने हाथ में इस बोतल को पकड़े हुए हूँ, ताकि पहचान लिया जाऊँ.....बोतल.....मेरे हाथ मे।

आर० एच०—हाँ ?

—मैं जब तुम्हारे लोक में था, उस समय मुझे उनसे बहुत कुछ कहना था।

आर० एच०—तुम कौन हो ?

—मुझे लोग कहते थे डाक्टर—मैं यू—

[उसकी आकांक्षा चिकित्सा-विज्ञान से सम्बद्ध थी और वह थामसन एण्ड कैंपर में साझेदार भी था!]

[जी पी० विचार प्रेषण कर रहा है] वह बहुत प्रयत्न कर रहा है।

ओह! वह मुझसे कह रहा है। तुम्हे बहुत-बहुत धन्यवाद। मुझे सोचने दो।

मै इन सबके बारे में जानने को बहुत उत्सुक हूँ। तब मैं तुम से बातें करूँगा।

आर० एच०—अच्छा, अब मि०......

—हमलोग कहाँ है ? मैने कुछ समय पहले अपना शरीर छोड़ दिया था। तुम कहाँ हो ?

आर० एच०—यह अमेरिका है, जहाँ मै आयी हूँ।

—अमेरिका ?

आर० एच०—हाँ।

—हाँ, हाँ, यह मेरे लिए बड़ा आकर्षक मालूम होता है।

क्या तुम शरीर में हो ?

आर० एच०—हाँ, मै शरीरयुक्त हूँ।

—अच्छा, प्रसन्न हो ?

आर० एच०—हाँ, दोनों ही बातें है। धन्यवाद।

खब। मै अब समझ रहा हूँ।

आर० एच०—अच्छा, अब मै तुम्हें अपने बारे में तथा और लोगों के बारे में कुछ अधिक बताऊँगा।

—मेरी पत्नी अच्छी है, धन्यवाद। मेरी उनपर निगाह है। लेकिन मेरा कार्य समय पाकर ठीक हो सकेगा। मै बच्चों के लिए इसको ठीक करने की चेष्टा कर रहा हूँ।

आर० एच०—हाँ। मि०.......क्या आपने कहा था कि आप जब शरीर मे थे, उस समय आपके तीन लड़कियाँ और एक लड़का था ?

—हाँ.... !

मेरी पत्नी चश्मा पहनती थी....उसे, मै सोचता हूँ, हमलोग उपनेत्र कहते थे।

आर० एच०—तुमने उसकी आँखों की शिकायत का भी जिक्र किया था।

—ओह, हो सकता है ! मेरे मन में यह था।

मेरे लड़के के साथ यह रमणी कौन है ?

आर० एच०—मै उसके सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता।

नहीं....

अच्छा, मे समझ गया। मुझे एक काम था, जिसका नाम....
ड्रग्स की तरह कुछ।

मै अपने भरसक सहायता कर रहा हूँ (स्पष्टतः यह रेक्टर था)

[हाथ जोरों से कम्पित होने लगता है।]

उसे विश्राम अवश्य करना चाहिये....(यह आज्ञापक का हस्ताक्षर है।)

आर० एच०--मुझे प्रसन्नता होगी यदि आप एकबार फिर आयें और अपने परिवार के लिए जो सन्देश भेजना चाहते हों, भेजें।

--मित्र, वह एक क्षण में लौट आयेगा। लेकिन मै उसे एक क्षण के लिए जाने की आज्ञा देता हूँ। और....

(हाथ कॉप रहा है।)

श्रीमती....कृपया।

आपका मित्र जार्ज हमलोगों का सबसे अच्छा सहायक है।

--मै उसके प्रति बहुत कृतज्ञ हूँ।

क्या उसकी आत्मा कुछ स्पष्टतर प्रतीत हुई?

आर० एच०--हॉं, मै समझता हूँ कि शीघ्र ही वह एक बहुत स्पष्ट भाव-प्रेषिका आत्मा हो जायेगी।

--मैं अपने भरसक पूरी चेष्टा करूँगा। क्योंकि मै अपने परिवार तक पहुँचना चाहता हूँ। बहुत ज्यादा इच्छा....।

आर० एच०--मेरी आत्मा सम्बन्धी कार्यों में बड़ी दिलचस्पी है और मैने श्रीमती पाइपर को कई वर्ष पहले इंगलैण्ड भेजा था। क्या तुम्हें श्रीमती पाइपर की याद नहीं है?

--पाइपर ?

आर० एच०—हाँ, और....

(हाथों में कम्पन)

ओह, हाँ, मै पाइपर को याद कर रहा हूँ। क्या श्रीमती पाइपर एक अमेरिकन रमणी थीं और माध्यम का काम करती थीं ?

आर० एच०—हाँ।

—ओह, हाँ। अरे, हाँ। मुझे याद है। मुझे याद है। मै उसे खोज निकालूँगा और यदि सम्भव हो सका तो तुम तक आऊँगा। तुम्हारा क्या नाम है ?

आर० एच०—मेरा नाम हडसन है। रिचर्ड हडसन।

—क्या तुम मेरे लिए इसके हिज्जे नहीं कर सकते ?

—ह ड स न।

(उत्तेजनाके कारण पुनः लिखावट रुक जाती है)

ड्रग्स ?.....

मत जाओ। मेरे लिए रुको।

लिवर स्टूल।

आर० एच०—लिवर पूल, तुम्हारे कहने का मतलब है ?

हाँ, मै यही कहता हूँ।

मै यही कहता हूँ, मै यही कहता हूँ, मै यही कहता हूँ, मै यही कहता हूँ।

आर० एच०—मै समझ गया।

मै यही कहता हूँ।

लिवर स्टल।

—लिवर पूल।

—पूल आर (आर—रेक्टर)

मै हूँ, मै हूँ। मेरे लड़कियाँ थीं, एक लड़का भी।

(कागज पर अटपटी रेखाएँ)

मै उन सब को, सब को, सबको सहायता प्रदान करना चाहता हूँ। ईश्वर उन्हें यह समझने में सहायता प्रदान करे कि मै जीवित हूँ।

आर० एच०—हाँ!

मै गड़बड़ा गया हूँ। कोई सन्देह नही, लेकिन मै शीघ्र ही अच्छा हो जाऊँगा। समझने मे बड़ी कठिनाई होती है। तुम कैसे तो लगते हो। एक काला बादल तुम्हारे ऊपर चला आता है, और मै तुम्हें बड़ी कठिनाई से देख पाता हूँ। तुम मुझे जानते हो?

आर० एच०—मै तुम्हे व्यक्तिगत रूप से नहीं जानता। लेकिन मै अब तुम्हारे पुत्र को जानता हूँ, जो मेरे साथ आया था। क्या तुमने प्रोफेसर लाज के साथ उस रमणी को नहीं देखा था, जिसको... जिसको माध्यम बनाकर तुम मुझसे बातें कर रहे हो? मेरा मतलब प्रकाश से है।

—ओह! मै अभी तक नही कह सकता। ठहरो, जब तक मै अपनी राह निकाल लूँ।

आर० एच०—नहीं......

—पहले तुम मुझे अपने सम्बन्ध मे सब कुछ बतला दो। मै तुमसे परिचित होना चाहता हूँ।

आर० एच०—हाँ, मै परिचय देता हूँ। कृपया सुनो—यदि वह कुछ भी स्पष्ट कह सके तो उसके उत्साह को बढ़ाओ और सदैव इसे स्मरण रखो कि यहाँ उसे लाने वाला तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं है।

आर० एच०—हाँ। क्या वह उस नवयुवक का पिता है?

—अवश्य। अग्नेस उसकी पुत्री है।

आर० एच०—हाँ?

—ऐसा ही तो वह कह रहा है।

आर० एच०—क्या मैं उससे बाते करूँ?

—तुम कौन हो और तुम्हारा क्या उद्देश्य है, यह बता कर उसको थोड़ा बढ़ावा दो। इससे उसे बड़ी मदद मिलेगी।

आर० एच०—तुम्हारे इस प्रश्न के उत्तर मे कि मैं कौन हूँ, मैं बताऊँगा कि मैं प्रोफेसर लाज का एक पुराना मित्र हूँ।

—लाज?

—हाँ।

—क्या मेरा पुराना प्रतिवेशी लिव....

(हाथ में उत्तेजना होती है।)

शान्त बनो मित्र आत्माओं मे। लि....

जब वह आये तो उससे बाते करो। वह भले ही तुम्हें मौका दे या न दे।...मौका दे या न दे....वह बहुत व्यग्र... हमारे तरीकों को वह समझ नहीं पाती है।

आर० एच०—नहीं।

मैं कहता हूँ, मैं लौटूँगा और तुम्हारी मदद करूँगा। बहुत-बहुत प्रसन्न था कि मैं आया।

आर०—बहुत बहुत धन्यवाद।

जब तुम यहाँ थे तो मैं कुछ भी नहीं समझ पाया, लेकिन तुम्हारे जाने पर मैं उसे देख सका। तो—

आर०—मैं समझा।

[जागरण की स्थिति]

(जागरण की स्थिति मे श्रीमती पाइपर बोली)...थामसन (सिक)....तुम सब के साथ (यह पहला समय था जब कि नामोल्लेख किया गया)

मैं तुम्हे जाने दूँ इसके पहले....तुम इसे मि० हडसन के पास इसे अवश्य ले जाओ....उसे कहो—

आर०—उसे कहो ?

श्रीमती थामसन से कहो कि मुझे इस बात की बड़ी प्रसन्नता है कि मैं यहाँ हूँ। यह बहुत अच्छा है। मैं ईश्वर का, इन सहायताओं के लिए, अनुगृहित हूँ।

....सत्य अपना मार्ग निकाल लेगा।

विदा। अल्विदा....शान्ति ...

(रुकावट)

दो सज्जन थे। एक दूसरे से मिलते हुए। एक तो जार्ज था और दूसरा आदमी उसके समान मालूम हो रहा था।

इसमें जो-जो बातें बतलायी गयी हैं, वे सब ठीक है। बोतल श्रौर भेषज प्रभृति का जो उल्लेख है, वह उनके कार्य का संकेत करता है।

Psychical Research society की Proceeding में इस प्रकार के अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण प्रयोगों का उल्लेख है, जिनसे इस बात का स्पष्टीकरण हो जाता है कि शरीर-विरहित आत्माएँ शरीर की कारा में बद्ध आत्माओं के साथ कतिपय क्षण के लिए विचारो के आदान-प्रदान को समुत्सुक करती रहती है। जो आत्माएँ इस काम में अधिक अभ्यस्त हो जाती है, वे अन्य अनभ्यस्त, किन्तु विचार-प्रेषणोत्सुक आत्माओं को सहायता प्रदान करती है। इन प्रयोगों से हमे इस बात पर विश्वास करना ही पड़ता है कि यदि हम प्राणपण से चेष्टा करे तो अपने इस विचित्र कारागार से परे के अधिवासियों से भी किसी न किसी प्रकार की सम्बन्ध स्थापना कर सकते है। हाँ, इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस सम्बन्ध-स्थापना का रूप अधिक स्पष्ट और प्रोज्वल नही हो सकता। हमारे समस्त प्रयास इस दिशा में विफलता में ही पर्यवसित होंगे। और हम लोगों के वर्तमान अस्तित्व की यह वेदनाप्रद विवशता ही हमें अपने वर्तमान की वासस्थल वास्तविकता समझने मे सहायता प्रदान करेगी।

हम यह जानकर भी कि अन्य हस्तियाँ हमसे विचारों का आदान प्रदान करने के लिये समुत्सुक है, उनसे किसी प्रकार के भी लाभप्रद सम्बन्ध की स्थापना नहीं कर सकते,—इससे बढ़ कर बन्धन—प्राणप्रपीड़क बन्धन और क्या हो सकते हैं!

और, इतने पर भी हम यदि अपने को स्वतन्त्र कहने का दुस्साहस करते हैं तो इससे बढ़कर हास्यास्पद बात और क्या होगी !

शरीर-विरहित आत्माओं के सज्ञान अस्तित्व पर पाठकों के मन मे आस्था जागृत करने के लिए कतिपय प्रयोगों का उल्लेख करके ही आगे बढ़ूंगा ।

१८७४ की ८वी एप्रिल । सन्ध्या बेला । बेडफोर्ड म मि० स्टेंटन मोसेज अपने माता-पिता के साथ थे । उन दिनो दिन मे उन्हे पुराचीन धर्मो के सम्बन्ध मे सन्देश-प्राप्ति हुआ करती थी । उन्होने एक प्रश्न आरम्भ किया—"मै चाहता हूँ कि—!" वे इतना ही लिख पाये थे कि कुछ अर्थहीन लाइने शदो के स्थान पर अंकित हो गयीं ।

यहाँ पाठको को एक बात से अभिज्ञ हो जाना चाहिए । मि० स्टेंटन मोसेज को इसका अभ्यास हो गया था कि वे पहले तो अपना प्रश्न अपने हाथ से लिख लेते थे और उसके बाद अपने को इस योग्य कर लेते थे कि सन्देशदात्री आत्मा उनके हाथों द्वारा लिखकर भाव-प्रकाश कर सके ।

जब शब्दों के स्थान पर अर्थहीन लाइनें अंकित हो गयीं, तो मि० मोसेज ने पूछा—यह क्या हुआ ? मै क्यों रोक लिया गया ?

उत्तर—एक आत्मा अपना भाव-प्रकाश करना चाहती है । हमें उसको ऐसा करने देने की आज्ञा मिली । वह सुविधापूर्वक नहीं लिख सकती, लेकिन हम लोगों द्वारा भावनाओं को प्रकाशित करेगी । उसका नाम फैनी वेस्टाय है । आप इस नाम से परिचित हैं ?

प्रश्न--नहीं। मुझे तो याद नहीं है।

उत्तर--आपकी माँ इसे अच्छी तरह जानती है। यह उसकी भतीजी है। यह तुम्हारे गृह से १५ वीं मई को विदा हुई थी।

प्रश्न--क्या वह विवाहिता थी ?

उत्तर--हाँ, कौमार्यावस्था मे उसका नाम किरखैम था।

प्रश्न--फैनी किरखैम। हाँ, मुझे उसकी एक धुँधली सी याद है। वह मार्कबे में रहती थी।

उत्तर--वह कहती है कि उसका जन्म अल्फोर्ड में हुआ था। वह मकान आजकल सैमस्टोवेसन के द्वारा अधिकृत है। उसके बाद वह मार्कवे में रहने लगी और वेल्शफोर्ड मे उसने विवाह कर लिया। हार्नकास में ६३ वर्ष की अवस्था में उसने देहत्याग किया। तुम्हें याद नहीं। १८४५ मे तुम उसे मार्कवे में देखने गये थे। उसकी माँ एलिजबेथ किरखैम उस समय बुखार से उठी ही थीं। और तुम्हारी माँ अपनी नानी के साथ समवेदना प्रकट करने गयी थीं। तुम एक बकरे पर चढ़कर खेतों के पास घुमाये जा रहे थे और उसने खेल ही खेल मे तुम्हे गेहूँ के ढेर में फेंक दिया। परिणामतः तुम्हें वहाँ के कीड़ों से बहुत परेशान होना पड़ा। उसे इस बात की बड़ी इच्छा है कि तुम अपनी माँ को इस बातों की याद दिला दो।

प्रश्न--अच्छा, लेकिन क्या यह ठीक होगा ?

उत्तर--तुम उसे इस सम्बन्ध मे जाँच-पड़ताल करने के लिए समुद्यत नहीं कर पाओगे, लेकिन तुम ऐसा करके अपने को सन्तुष्ट

कर सकते हो कि जो कुछ कहा जा रहा है, वह सत्य है।

प्रश्न--क्या उसे कोई सन्देश देना है?

उत्तर--वह कहती है--'शारीरिक क्षुधा की परितृप्ति के लिए मैंने उन्नति के अनेकानेक अवसरों को खो दिया और पीछे की ओर ढकेल दी गयी। मेरी अग्रगति के दिन अब आने वाले हैं। मै अपने वर्तमान जीवन को तुम लोगों के जीवन से कोई अधिक विभिन्न नहीं पा रही हूँ। मैं करीब-करीब वैसी ही हूँ। मेरी इच्छा तो है कि मै मेरी को प्रभावित करूँ, लेकिन, मैं उसके पास जाने में असमर्थ हूँ।

प्रश्न--क्या वह मुझे इसका विश्वास दिला सकती है कि वह फैनी ही है?

उत्तर--इसके अतिरिक्त अब वह और कोई प्रमाण आपको नहीं देगी। ठहरिये। आप अपने पिता से डार्निंगटन के सम्बन्ध मे और कूटद्वार के सम्बन्ध में पूछिये।

प्रश्न--मैं कुछ नही समझ पाता, इसका क्या तात्पर्य है। खैर, ठीक है। मैं पूछूँगा। और भी कुछ? वह प्रसन्न तो है न?

उत्तर--वह अपनी वर्तमान स्थिति मे उतनी ही प्रसन्न है जितनी कि हो सकती है।

प्रश्न--उसने मुझे खोज कैसे लिया?

उत्तर--अकस्मात् ही ऐसा हो गया है। सर्वथा संयोगवश घूमती हुई वह चली गयी। अपने मित्र के पास। और इस का पता उसे लग गया कि वह विचारों की अभिव्यक्ति कर सकती है। वह अब लौट जायेगी।

प्रश्न—क्या मैं उसकी सहायता कर सकता हूँ ?

उत्तर—हाँ। वही नहीं, हमलोग सबके सब उस समय सहायता प्राप्त करते हैं, जब आप लोग इच्छापूर्वक अपनी बौद्धिक शक्तियों से हमें सहायता प्रदान करते हैं।

प्रश्न—आपके कहने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—सतर्कता और न्याय के साथ हमारे उद्देश्य का पक्ष-समर्थन करते हुए और उसे आगे बढ़ाते हुए। ऐसी अवस्था मे हमलोग अतिशय प्रसन्न होते हैं। सर्वोपरि शक्ति आपको सुखी रखे।

श्रीयुत मोसेज ने इसके बाद अपनी माँ से इस सम्बन्ध मे पूछा और पता लगाया तो सब बातें ठीक निकली। उनकी माँ को आश्चर्य होने लगा कि उनके पुत्र को वे बातें अब तक कैसे याद है, जो उस समय हुई थीं, जब वह केवल ५ वर्षो का था। श्रीयुत मोसेज ने अपनी माँ को आत्मा के साथ विचारों के आदान-प्रदान के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा क्योंकि उनकी समझ में यह सर्वथा निरर्थक होता। कूट द्वार के सम्बन्ध मे पहले तो उन्हें अपने से कुछ भी नहीं मालूम हुआ, लेकिन ९ वीं एप्रिल को उनके पिता को याद हो आया। डेंनिगटन में वे जिस घर मे रहते थे, वहाँ छत की ओर जाने के लिए एक कूटद्वार था। मकान की दोहरी छत थी। किरखैम वहाँ जाने का प्रयास करते वक्त आधे रास्ते मे ही अटक गयी थी। इससे काफी हँसी हुई थी।

सुप्रसिद्ध विद्वान फ्रेडरिक मायर्स ने मृत्यु के रजिस्टर में

श्रीमती वेस्टबाय की मृत्यु के समय को मिलाकर देखा तो वह बिलकुल ठीक निकली। तारीख, समय और स्थान प्रभृति को ठीक-ठीक बहुत कम आत्माएँ बता सकती है क्योंकि इन्हें कौन याद रखता है !

Human Personality के द्वितीय खण्ड में एक और ध्यान देने योग्य प्रयोग का उल्लेख है। Human Personality के लेखक श्री मायर्स ने इसकी सत्यता का पूरा पता लगाकर ही इसकी उल्लेख किया था। श्री मोसेज की नोटबुक में जहाँ यह "स्वतः लेख" लिखित था, वहाँ गोंद लगा दिया गया था और उसके ऊपर 'प्राइवेट' लिख दिया गया था। इसका उल्लेख भी उन्होंने किसी के सामने नहीं किया था, लेकिन कई वर्षों के बाद, श्री स्टेंटन मोसेज की मृत्यु के उपरान्त श्री मायर्स को यह और इसके अतिरिक्त अन्य कई पुस्तिकाएँ मिलीं। श्रीयुक्त मायर्स यह देखकर आश्चर्य-चकित हो गये कि उनमें से एक लेख उनकी एक सुपरिचित रमणी की विशिष्ट हस्तलिपि में था, जो करीब ४० वर्ष आगे लन्दन से कोई २०० मील की दूरी पर रविवार की दोपहर को मर चुकी थी। उन्होंने देखा कि उसी दिन आधी रात के करीब उसकी मृत्यु की सूचना लन्दन के उत्तर में श्रीयुत मोसेज के निर्जन निवास में पहुँच जाती है। और उसके बाद वह रमणी स्वयं कुछ पंक्तियाँ लिखती है—प्रत्यक्षतः। उस हस्तलिपि का सम्यक् निरीक्षण केवल श्रीमायर्स ने ही नहीं किया, अपितु उस रमणी के परिवार के एक व्यक्ति ने भी उसे देखकर यही कहा कि यह उसी की हस्त-

लिपि है। यह सर्वथा असम्भव है कि श्रीयुत मोसेज ने कभी उसकी हस्तलिपि देखी हो।

श्रीयुत मोसेज की नोटबुक में जो लेख है, वह यों है। उसका आरम्भ कुछ अटपटी सी रेखाओं में से है, जैसे किसी विहंगम की उड़ान हो। उसके बाद एक प्रश्न है जिसमें उसका अर्थ पूछा गया है। उसके बाद यों है—

उत्तर—"यह एक आत्मा है, जिसने अभी ही भौतिक शरीर का परित्याग किया है। भौतिक शरीर में उसका नाम था ब्लांश ऐवरअम्बी। मैं उसे लाया हूँ। बस, और कुछ नहीं। एम।"

प्रश्न—तुम्हारा मतलब क्या है—

कोई उत्तर नहीं—[रविवार की अर्ध निशा]

(सोमवार को प्रातःकाल फिर स्वतः लेख आरम्भ होता है।)

प्रश्न—मैं कल रात्रि की घटना के सम्बन्ध में अधिक जानना चाहता हूँ। क्या वह सच है? क्या वह मेटर था?

उत्तर—हाँ, मेरे मित्र, वह मेंटर ही था। उसे एक आत्मा-पर दया आ गयी, जो अपनी गलतियों को सुधारना चाहती थी। वह हमलोगों से ऐसा कहलाना चाहती है। वह सदैव जिज्ञासु रही है और अचानक ही तुम्हारे लोक से बुला ली गयी है। वह शीघ्र ही विश्राम करेगी। मृत्यु के उपरान्त भी अस्तित्व रहता है, इसका एक और प्रमाण दिया गया। कृतज्ञ बनो और प्रार्थनापूर्वक ध्यान दो। अब अधिक की खोज मत करो। अब हम नहीं चाहते कि तुम कोई प्रश्न पूछो।

एक सप्ताह के बाद—

प्रश्न—"क्या तुम अब लिख सकते हो ?"

उत्तर—हाँ, प्रधान यहाँ है।

प्रश्न—अच्छा, यह कैसे हुआ कि वह आत्मा (ब्लांशे एवर-अम्बी) मेरे पास चली आयी ?

उत्तर—विषय की ओर मन को लगाया गया और सक्रिय होने के कारण यह तुम तक चली आयी। और साथ ही हमलोगों को इस बात की प्रसन्नता है कि हम लोग जो कहते हैं, उसकी सत्यता का दूसरा प्रमाण दे सकते हैं।

प्रश्न—अच्छा, क्या यह कहना ठीक है कि विचार को केन्द्रित करने के कारण ही आत्मा उपस्थित हो जाती है ?

उत्तर—कभी-कभी ऐसा ही होता है। आत्मा की महान् क्रिया-शीलता वस्तुओं के रहस्यों को खोजने में एवं सत्य के आविष्करण की दुर्दान्त कामना से संयुक्त होकर एक आत्मा के प्रकटीकरण को सम्भव कर देती है। इतना ही नहीं, विचारों का निर्देश विचारों को निर्देश या स्थान प्रदान करता है। इसमे हमारा तात्पर्य यह है कि वह इच्छा या विचार या प्रवृत्ति प्रकटीकरण की असंभवता दूर कर देती है। तब हमारे जैसों की सहायता से, जो मूल-तत्वों को अनुकूल कर सकते हैं, प्रकटीकरण होता है। परिस्थितियों का संयोजन भी इस प्रकार के प्रकटीकरण के लिए अत्यावश्यक है। इस प्रकार का संयोजन बहुत कम हो पाता है। इस कारण ऐसी घटनाएँ इतनी कम होती हैं। उसे अनुकूल करने में हमे बड़ी

कठिनाई होती है। विशेषकर उस समय जब भौतिक शरीर में अत्यधिक उत्कण्ठा-सी छा जाती है। जैसे किसी मित्र की आत्मा की उपस्थिति के लिये छा जाया करती है। बहुत सम्भव है कि इस प्रकार का प्रमाण पुनर्वार न प्राप्त हो।

प्रश्न--तब अनुकूल परिस्थितियों के संयोग ने तुम्हारी सहायता की। वह आत्मा विश्राम करेगी या उसे इसकी कोई आवश्यकता नहीं है ?

उत्तर--उस आत्मा का क्या होना है, हम नहीं जानते। हमलोगों के अधिकार से वह निकल जायगी। परिस्थितियों ने हमे उसकी उपस्थिति को उपयोग मे लाने दिया; लेकिन अब उसकी उपस्थिति नहीं रहेगी।

प्रश्न--यदि विचार की गति-दिशा गति का उद्भव करती है, तो मै समझता हूँ कि मेरे मित्रों के साथ भी ऐसा ही होना चाहिये और उन्हे भी आना चाहिये।

भौतिक शरीर से वियुक्त होने के उपरान्त भी आत्माएँ दुःख और सुख का अनुभव करती एवं प्रीति से उनका अन्तर्तम स्पर्शित, हिल्लोलित होता रहता है, इसका एक सशक्त प्रमाण ख्यातनामा वैज्ञानिक हीरे प्राइस की लिखी हुई Fifty years of Psychical Research नाम की पुस्तक मे लिखित अनुभवों से उपलब्ध होता है। इसके लेखक ने स्वयं इस सम्बन्ध में अनेकानेक अनुभव प्राप्त किये थे। उनमे से एक का उद्धरण पर्याप्त होगा। श्रीयुत हीरे प्राइस ने एक पत्र में आत्माओं के सम्बन्ध में एक लेख लिखा था। उस

लेख को पढ़ कर एक सम्पन्न एवं प्रतिष्ठित परिवार की एक युवती उनके पास पहुँची और बोली—"आपके लेख को मैंने बहुत ही ध्यानपूर्वक पढ़ा। लेकिन आपने जिन अनुभवों का वर्णन किया है, उनसे कहीं अधिक आश्चर्यजनक अनुभव मैं आपको कराऊँगी। मेरे यहाँ एक लड़की का देहान्त हो गया था। उसकी आत्मा अपनी माँ से मिलने के लिए बराबर आती है; वह अपनी माँको बहुत प्यार करती है।" हीरे प्राइस महोदय की उत्सुकता एवं जिज्ञासा बढ़ी। उन्होंने उसके आगमन-दृश्य को देखने की इच्छा प्रकट की। उस रमणी ने स्वीकार कर लिया। हीरे प्राइस महोदय ठीक समय से कुछ पहले ही निर्दिष्ट मकान मे पहुँच गये। वहाँ कई रमणियाँ पहले से विद्यमान थीं। हीरे प्राइस के साथ एक व्यक्ति और था। उन लोगों ने उनसे अकेले ही भीतर आने का अनुरोध किया। भीतर के बड़े कमरे मे पूर्ण शान्ति छायी हुई थी। उन्होंने अच्छी तरह उस स्थान को देख लिया; साथ ही युवतियों को भी। उसके बाद रोशनी बुझा दी गयी। एलीसा के आने का समय हो रहा था। उसकी माँ ने आवाज दी—"मेरी बेटी, मेरी बेटी!" कोई उत्तर नहीं मिला। उपस्थित रमणियाँ रोने लगीं। एकाएक आवाज सुनायी दी। ऐसा मालूम होने लगा जैसे कोई आ रहा है। उसकी पगध्वनियाँ कुछ-कुछ स्पष्ट भी हो गयीं। उसके आने पर चारों ओर पहले तो एक शान्ति-सी छा गयी और फिर हर्षातिरेक से माँ रोने-सी लगी। आगन्तुक लड़की के रोने की भी आवाज सुनायी देने लगी। चारों ओर जो निष्कपटतापूर्ण, आडम्बर-

हीन वातावरण छाया था। जिस रीति से वे माँ बेटी मिल रही थीं, उसे देखते हुए उनके आचरण मे किसी प्रकार के संशय की आवश्यकता नहीं है। उस लड़की की आत्मा के चले जाने के बाद हीरे प्राइस महोदय ने इस सम्बन्ध मे पर्याप्त जाँच पड़ताल की। उन्हें सन्देह का कोई कारण नहीं मालूम हुआ। और भला वे भले घर की सम्पन्न वयोवृद्ध स्त्रियाँ मिथ्या अभिनय करती ही क्यों? इससे उनको लाभ ही क्या होता!

इस भौतिक शरीर मे वियुक्त होने के उपरान्त भी आत्माएँ देख सकती है, सुन सकती है, बोल सकती है और हँस सकती है। वर्त्तमान शरीर उनके चिरन्तन शरीर के एक मायामय आच्छादन के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। इस चिरन्तन शरीर को भारत के प्राचीन दार्शनिको एवं ऋषि-महर्षियो ने सूक्ष्म शरीर के नाम से अभिहित किया है।

भौतिक शरीर से वियुक्त होने के उपरान्त भी आत्माएँ पढ़ सकती है, इसके भी कई प्रमाण मिले है, जिन पर अविश्वास करना सर्वथा निराधार है। युनिवर्सिटी कालेज स्कूल लण्डन के एक अध्यापक महोदय, जिनका नाम श्री स्टेटन मोसेज था, प्रति दिन प्राभातिक नीरवता मे आत्माओं का आह्वान किया करते थे और अपने हाथों को उनके अधिकार मे देकर लिखा करते थे। उनके इस प्रकार के अनेकानेक लेख प्रकाश मे आ चुके है। एस० पी० आर० के कार्यक्रम के ग्यारहवे खण्ड के १०६ पृष्ठ मे एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रयोग का उल्लेख है। अध्यापक महोदय ने आत्मा का

आह्वान किया था और वे उनके प्रश्नों का उनके ही हाथों से लिखकर उत्तर दे रही थीं।

अध्यापक महोदय—"क्या आप पढ़ सकते है ?"—"नहीं मित्रवर, मै नहीं पढ़ सकता। जाशेरी ग्रे और प्रधान पढ़ सकते हैं। मै अपने को भौतिकता से पुनः सम्बद्ध नहीं कर सकता और न भौतिक तत्वों पर अधिकार ही है।"

अध्यापक—"वे दोनों आत्माएँ यहाँ है क्या ?"

—"मै एक को ले आऊँगा। मै भेज दूंगा.....

"हाँ, रेक्टर यहाँ है।"

अध्यापक—"मुझे बताया गया है कि आप पढ़ सकते है। क्या यह ठीक है ? क्या आप किताब पढ़ सकते हैं ?"

—(हस्तलिपि परिर्वातत हो गयी है।) हाँ, मित्र, मै पढ़ सकता हूँ, लेकिन कुछ कठिनाई के साथ।

अध्यापक—क्या आप Aneid की पहली पुस्तक की अन्तिम पंक्ति लिखने का कष्ट करेंगे ?

—"ठहरिये—Omnibus errantem terris et fluctibus aertus," (ठीक यही पंक्ति पुस्तक के अन्त मे है :)

अध्यापक—बिल्कुल ठीक है। लेकिन शायद मैं इसे जानता था। क्या आप पुस्तकों के केस के पास जा सकते है और दूसरे सेल्फपर अन्तिम पुस्तक के ठीक पहले वाली पुस्तक ले सकते है ? और क्या ९४ पृष्ठ का अन्तिम अनुच्छेद पढ़कर मुझे बताने का कष्ट करेंगे ?

"मैंने इसे देखा नहीं है। देखना तो दूर रहा, मैं इसका नाम तक नहीं जानता।"

(कुछ देरी के बाद नीचे लिखी हुई पंक्तियाँ हाथों के द्वारा लिखी गयीं।)

"I will curtly prove by a short historcial narrative, that popery is a novelty and has gradually arisen or grown up since the primitive and pure time of christianity, not only since the apostolic age, but even since the lamentable union of church and state by Constantine."

(ये पंक्तियाँ बिलकुल ठीक थीं। केवल account के स्थान-पर narrative को रख दिया गया है।)

अध्यापक—इतने युक्तियुक्त वाक्य के स्थल का चुनाव कैसे हो गया!

"मित्र, मैं नहीं जानता। संयोगवश ऐसा हो गया है। गलती से एक शब्द परिवर्तित भी हो गया है। गलती करते समय मुझे मालूम था, लेकिन मैं रोक नहीं सका।"

अध्यापक—आप कैसे पढ़ते है? साथ ही आपने बहुत धीरे-धीरे लिखा और वह भी बीच-बीच में रुककर।

—"जितना मुझे स्मरण रहा उतना मैंने लिखा; फिर आगे के लिए चला गया। पढ़ने के लिए विशिष्ट प्रयास करना पड़ता है और परीक्षा के लिए ही उपयोगी भी है। कल आपके मित्र ने

ठीक कहा था। हम पढ़ सकते है, लेकिन तभी जब परिस्थितियाँ बहुत अच्छी हों। हम एक बार फिर पढ़ेगे और लिखेंगे— "Pope is the last great writer of that school of poetry, the poetry of the intellect or of the intellect mingled with the fancy. वास्तव मे यही लिखा है। जाइये और उसी फलक की ग्यारहवीं पुस्तक उठाइये।

[अध्यापक महोदय ने किताब उठा ली। नाम था—Poetry, Romance and Rhetoric]

आपके लिए इसका यह पृष्ठ स्वयं खुल जायेगा; इसे लेकर पढ़िये। और हमारी शक्तियों को पहिचानिये। साथ ही इस बात को भी कि ईश्वर हमे भौतिक पदार्थो पर अपनी शक्तियों के प्रदर्शन का मौका देता है। धन्य है वह! आमीन।"

पुस्तक का १४५ वाँ पृष्ठ खुला। वह उद्धरण वहाँ ठीक-ठीक पाया गया। अध्यापक महोदय ने उस किताब को पहले कभी नहीं देखा था और उसके सम्बन्ध मे किसी प्रकार का ज्ञान उन्हे नहीं था। ये पुस्तके डा० स्पीर के पुस्तकालय मे थीं और वहीं यह प्रयोग हुआ भी था।

माध्यम के द्वारा वे विदेशीय भाषाएँ भी भौतिक शरीर-विरहित आत्माएँ लिखने मे समर्थ हुई है, जिनका कोई भी ज्ञान माध्यम को नहीं था। इस प्रकार के प्रयोगों मे उतनी सफलता नहीं मिली, जितनी अन्य प्रयोगों मे, किन्तु जो थोड़ी बहुत सफलता मिली है, उससे भौतिक शरीर से विमुक्त आत्माओं के स्वरूप-निर्धारण में पर्याप्त सहायता मिलती है।

एस० पी० आर० के कार्यक्रम के १३ वें खण्ड मे इस प्रकार के इस महत्वपूर्ण प्रयोग का उल्लेख है। शरीर-विरहित आत्मा ने, जो माध्यम के द्वारा अपनी अभिव्यक्ति भौतिक शरीरयुक्त आत्माओं के समक्ष कर रही थी, बतलाया कि वह होनोलूलू में कलुआ नामक एक लड़के के रूप मे थी। कलुआ से मि० ब्रिन्स की घनिष्टता हो गयी थी। मि० ब्रिन्स १८८३ मे होनोलूलू मे छः महीनों के लिए थे। उसी समय कतिपय कारणों से वह मि० ब्रिस के साथ बोस्टन चला गया। पर वहाँ से वह शीघ्र ही अपनी मातृभूमि को भेज दिया गया। किन्तु पुनः बोस्टन को लौट आया। वहाँ १८८६ मे वह न जाने कैसे गोली से मार डाला गया। एक व्यक्ति पर लोगों को शंका हुई थी, लेकिन किसी सबल प्रमाण के अभाव मे उसे दण्ड नहीं मिल सका। उस व्यक्ति ने बताया कि कलुआ ने स्वयं रिवाल्वर से संयोगवश अपने को मार डाला था और साथ ही उसने यह भी स्वीकार कर लिया कि रिवाल्वर को उसी ने छिपा दिया था। मि० ब्रिन्स कलुआ के एक रूमाल को लेकर माध्यम के समीप बैठे थे। कलुआ के हृदय मे गोली लगी थी और जो आत्मा माध्यम के द्वारा भाव-प्रकाश कर रही थी, उसके उदर और उदर के पार्श्ववर्ती भावों मे पीड़ा की अभिव्यक्ति हुई। मि० ब्रिस ने इस बात की जिज्ञासा की कि वह कलुआ की आत्मा थी या और किसी की। पता चला कि वह कलुआ की ही थी। उसने बताया कि उसने अपने ऊपर गोली नहीं चलायी बल्कि एक दूसरे ही व्यक्ति का यह काम था, जिसके साथ वह जुआ खेल रहा था। कलुआ की आत्मा ने कुछ लिखने की चेष्टा भी की, लेकिन उसकी

लिखावट में lei ये तीन अक्षर ही पढ़े जा सके। उन लोगों की भाषा में इसका अर्थ पुष्पहार होता है जिन्हें वह प्रतिदिन मि० ब्रिन्स के लिए बनाया करता था। कलुआ का पिता उस समय कहाँ था, इसकी जिज्ञासा की गयी और उसका उत्तर मिला—"हवाइयन द्वीप" एक प्रश्न का उत्तर कावाई लिखकर दिया गया, जहाँ कलुआ उत्पन्न हुआ था, अर्थात् जहाँ कलुआ ने भौतिक शरीर ग्रहण किया था।

जो भौतिक शरीर-विरहित आत्माएँ माध्यम के द्वारा लिखती या बोलती हैं, उनको कम बाधाओं का सामना नहीं करना पड़ता और इसीलिए इस प्रकार के लेख भी कभी-कभी अस्पष्ट-से प्रतीत होते हैं। सबसे पहली बाधा तो यह है कि जिस व्यक्ति को अपना यन्त्र बनाकर भौतिक शरीर से विरहित आत्माएँ अपना भाव-प्रकाश करती हैं, वह पूर्णतः निष्क्रिय तो होता नहीं,—पूर्णतः ग्रहणशीलता भी उसमे नहीं आ पाती। इसके अतिरिक्त वह शरीर एक दूसरी आत्मा से अधिकृत रहता है, अतः उसका उपयोग वह नहीं कर सकती। वह इतना ही कर पाती है कि अपने विचार की लहरों को उसके विशिथिल मस्तिष्क में प्रबल वेग से भेजती है और तब उसके भाव लेख के रूप में या बोली के रूप मे प्रकट होते हैं। सर आलिवर लाज ने भी इन्हीं कठिनाइयों का उल्लेख करते हुए लिखा है—"The Process of communication is sophisticated by many influences, so that it is very difficult, perhaps at present impossible, to disentangle and exhibit clearly the part that each plays." इसके अतिरिक्त और भी कठिनाइयाँ हो

सकती है। Psychic Research के लेखक ने उनका उल्लेख करते हुए लिखा है—"We must allow likewise for the possibility, if not probability, of other still more baffling impedim-ents, unimaginable by us in our ignorance of what the conditions are in the spirit-world."

कई विज्ञानवेत्ताओं ने अत्यधिक सांशयिक होकर इस विषय की गवेषणाएँ कीं और उनमें अधिकांश को इस बात की सत्यता से सहमत होना पड़ा कि मोहावस्था में जो लेख या उक्तियाँ बहिर्गत होती है, वे अर्धचेतन व्यक्ति के मस्तिष्क से सम्बन्ध नहीं रखतीं, बल्कि कोई शरीर-विरहित आत्मा ही उसकी अभिव्यक्ति करती है। श्रीमती पाइपर की अर्धचेतनावस्था में उद्‌गारों के सम्बन्ध में डा० हाजसन ने अत्यधिक सांशयिक होकर छानबीन आरम्भ की थी और कई वर्ष की अनवरत गवेषणाओं के उपरान्त वे इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि इस प्रकार की उक्तियों या लेखों में शरीर-विरहित आत्माओं का ही हाथ रहता है। उन्होंने लिखा है—The chief communicators are veritably the personalities that they claim to be and that they have survived the change we call death. डा० हाजसन के निष्कर्ष की महत्ता अविसंवादित होनी चाहिये, क्योंकि उन्होंने इस सम्बन्ध मे पर्याप्त परिश्रम किया है और उनकी विद्वत्ता भी साधारण नहीं थी। डा० हाजसन के अतिरिक्त जिन अन्य व्यक्तियों ने भी सांशयिकतापूर्वक इस विषय की गवेषणाएँ कीं, वे भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे है।

इस जीवन की परिसमाप्ति करने के उपरान्त नवीन जीवन-पथ को स्वीकार करने के पहले आत्मा अपने प्रिय व्यक्तियों से भी मिल सकती है, इसके इतने उदाहरण मिले हैं कि अब इसपर शंका करना मस्तिष्क की शंकाशीलता का परिचय देना होगा। मिस हर्बे नामक एक अंग्रेज रमणी हैसमानिया मे रहती थी। उसका स्वास्थ्य बिलकुल ठीक था। कई घण्टे के आनन्दोत्पादक अश्वारोहण के बाद वह अपनी एक सखी के साथ अपने मकान मे कोठे पर चाय पीने के लिए जा रही थी। उसका मस्तिष्क उस समय अतिशय सुस्त स्थिति मे था। किसी प्रकार के शारीरिक व्यायाम के बाद जो एक विशिष्ट उल्लास प्राणों मे छा जाता है, वही उस समय मिस हर्बे मे भी छाया हुआ था। सीढ़ियों पर उसने अपनी एक सम्बन्धिनी को देखा जो उस समय डबलिन मे नर्स का काम कर रही थी। वह भूरे रंग के वस्त्र पहने हुई थी। मिस हर्बे तुरन्त अपनी सखी के पास गयी और बताया कि किस प्रकार उसने वहाँ से कोसों दूर रहने वाली अपनी सम्बन्धिनी को इस प्रकार देखा। उसकी सखी ने वही उत्तर दिया जो कि सामान्यतः दिया जाता है। उसने कलम उठायी, लेकिन साथ ही डायरी मे इस घटना का उल्लेख करने को भी कहा। मिस हर्बे ने अपनी डायरी मे इस घटना को यों लिखा—"Saturday, April 1888, 6 P. M. Vision of.......... in grey dress." और फिर तिरोहित हो गई।

कुछ समय के उपरान्त ज्ञात हुआ कि वह दूरवर्तिनी सम्बन्धिनी इस लोक से विदा ग्रहण कर चुकी थी। इस प्रकार की अनेकानेक

घटनाओं मे एक और घटना मुझे याद आ रही है, व्यक्ति का नाम स्मरण नहीं। सुविधा के लिए उन्हे श्रीयुत क कहा जाय। वे एक दिन अपनी पत्नी के साथ बैठे थे। अचानक उन्हे अपना एक सुदूर-निवासी मित्र व्योम-पथ से जाता हुआ दिखलायी दिया। उन्हे लगा, जैसे वह कह रहा हो—"मै जा रहा हूँ, एक अनिश्चित अवधि के लिए।" श्रीयुत क के रोगटे खड़े हो गये और कंपँपी-सी मालूम होने लगी। वे कह उठे—"And lo ! a spirit passed before me, and the hairs of my flesh stood up." उनकी पत्नी का मुख दूसरी दिशा की ओर था। उसने यह सब कुछ भी नहीं देखा था। श्रीयुत क ने उससे समय पूछा। उनकी पत्नी ने बताया कि नौ बजने मे बारह मिनट बाकी है। उन्होंने इसपर अपनी पत्नी से कहा कि मैंने अभी-अभी अपने मित्र को यहाँ देखा है और इसीलिये मैंने समय पूछा है क्योंकि उसकी मृत्यु हो गयी है। उनकी पत्नी ने उन्हे बहुतेरा समझाया कि यह सब आपका मानसिक भ्रान्ति है और कुछ नही है, लेकिन श्रीयुत क को अपने ऊपर तनिक भी शंका नहीं हुई और बराबर वे यही कहते रहे कि उनके मित्र की मृत्यु हो गयी है। उनका चेहरा हतप्रभ हो गया था और वे उत्तेजित-से मालूम हो रहे थे। रविवार के मध्याह्न मे करीब तीन बजे उनके मित्र का भाई उनके मकान पर यह बताने के लिए आया कि उनके मित्र की मृत्यु हो गयी है।

भविष्य-ज्ञान के भी कतिपय प्रमाण प्राप्त हुए हैं और उनके कारण विचारकों को कई उलझनों का सामना करना पड़ा है घटनाओं के पहले ही उनका ज्ञान सर्वथा अशक्य है, अतएव

इस सम्बन्ध में किसी प्रकार की गवेषणा करना या चिन्तन करना अपनी बौद्धिक शक्तियों का दुरुपयोग करना है, ऐसा सोचने वाले वैज्ञानिकों की कमी नहीं है। लेकिन मस्तिष्क की यह प्रवृत्ति सर्वथा अग्राह्य ही नहीं, अपितु सत्यान्वेषण के पथ में अतीव घातक भी है। भविष्यज्ञान के जो प्रमाण प्राप्त हुए है, उनपर स्पष्टता एवं शक्ति के साथ विचार करके उनके करणों का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास ही विज्ञान-सम्मत है; उनकी उपेक्षा नहीं।

सुना है, अतीतकालीन भारतवासी ऋषियों को भूत, वर्त्तमान, भविष्य तीनों का ज्ञान हो जाता था। वे त्रिकालज्ञ कहलाते थे। मिस्र के पुजारियों के सम्बन्ध मे भी ऐसा कहा जाता है कि उनमें से कई भविष्य का ज्ञान प्राप्त कर लेते थे। न तो इस समय इस ग्रहपर उस रूप मे वे पुरातन भारतवासी ऋषि ही दिखलायी देते और न वे मिस्रनिवासी ही। अतः इस कथन की सत्यता का पता लगाना असम्भव-सा है। फिर भी इस कथन की अवहेलना नहीं की जा सकती।

घटनाओं के घटित होने के पहले ही उनका ज्ञान प्राप्त हो जाने के दो तीन उदाहरणों का उल्लेख Physical Research Society की Proceedings के ५ वें खण्ड में है। अमेरिका में एक इंजिन ड्राइवर के अनुभव का वर्णन यों किया गया है—(१८५३ में) मे एक अति सुन्दर और नये इंजन को चलाने की तैयारियाँ कर रहा था। मुझे इस बात का अभिमान था। इतने सुन्दर इंजिन को चलाने का अवसर पाकर मै अपने भाग्य को सराह रहा था। १८५३ की २६वीं मई की रात को मैंने स्वप्न देखा कि

ट्रेन एक पुलपर से होकर जा रही थी। एकाएक इंजिन ७० फीट नीचे नदी में गिर पड़ा। मैंने दूसरे दिन एक रमणी से कहा। उसने मुझसे कहा कि तुम्हारी मृत्यु करीब मालूम होती है, लेकिन मैंने उससे कहा कि मुझे स्वप्न में इस बात का विश्वास था कि मुझे जरा भी चोट नहीं आयेगी। स्वप्न देखने के बाद दूसरे ही दिन हम एक ऐसे रास्ते मे भेज दिये गये जो मेरे लिए अविदित था और वैसे ही छिछले स्थान पर हमलोग पहुँचे, जैसा मैंने स्वप्न मे देखा था। लाइन पर कई मनुष्य दीख पड़े। इंजीनियर अपने दृष्टिगत दोष के कारण उन्हे नहीं देख सका। मैंने उसे इंजिन रोकने को कहा उसने इसकी कोशिश भी की, लेकिन ट्रैक भींगा हुआ था। वह इंजिन से कूद गया? मै उसी पर बैठा रहा और रोकने की चेष्टा की। लेकिन ऐसा कर सकने के पहले ही हमलोग पत्थर के पुलपर पहुँच गये। और इंजिन ने ट्रैक को छोड़ दिया और पुल के दूसरे किनारे से नीचे तक पहुँचने के पहले दो बार घूम गया और साथ ही साथ मै भी। मेरे जरा सी खरोंच आयी? मै तट पर चढ़ गया और वे सभी घटनाएँ देखीं, जिन्हे मैंने स्वप्न मे देखा था। पुल २०० फीट लम्बा था। ५ फीट ऊँचे ५ पत्थर के आर्च थे और नीचे का तट, जहाँ पर इंजिन गिरा था, ७० फीट नीचा था।

शरीर विरहित आत्माओं के स्वरूप-निर्धारण के सम्बन्ध मे सर आलिवर लाज ने The survival of man मे लिखा है—

"But let us not jump to the conclusion that the idea of "space" no longer means anything to persons removed from the planet. They are no longer in touch with matter

truly, and therefore can no longer appeal to our organs of sense, as they did when they had bodies for that express purpose; but, for all we know, they may exist in the ether and be as are of space and the of truths of geometry, though not of geography as we are. Let us not be too sure that their condition and surroundings are alotgether and utterly different from those of mankind. That is one of the things we may gradually find our not to be true.

The first thing we learn, perhaps the only thing we clearly learn in the first instance, is continuity. There is no such sudden break in the conditions of existence as may have been anticipated, and no break at all in the continuous and conscious idenity of genuine character and personality. Essential belongings, such as memory, culutre, education, habits, character, and affection,—all these, and to a certain extent tastes and interests, for better for worse, are retained."

इससे स्पष्ट हो जाता है कि प्रतिभा, बुद्धिमत्ता, कलात्मकता प्रभृति का विकास आकस्मिक नहीं होता है। विगत जीवनों के सञ्चित ज्ञान के अभाव मे केवल इस जीवन के अध्ययन से कोई आइंस्टाइन, हाइडेगर या सर ओलिवर लाज की-सी बौद्धिक शक्तियों का प्रदर्शन नहीं कर सकता।

भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन के प्रश्न का जो उत्तर दिया था, उससे भी यही ध्वनि निकलती है—

अर्जुन— कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ।।

श्रीकृष्ण—पार्थ, नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गति तात गच्छति ।।
प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ।।
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतंर लोके जन्म यदीदृशम् ।।
तत्र तं बुद्धिसंयोग लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ।।

डा० हाजसन ने इन घटानाओं का यथेष्ट विश्लेषण किया है और ऐसा करने के उपरान्त उन्हे आत्मा के अस्तित्व पर विश्वास करने को बाध्य होना पड़ा है। डा० हाजसन ने इन घटानाओं से जो निष्कर्ष निकाला है, उसकी अवमानना नहीं की जा सकती। उनका अनुभव बहुत विशाल एवं उनकी आलोचनात्मक शक्तियाँ अत्यन्त जागरूक थीं।

सर आलिवर लाज ने श्रीमती पाइपर के माध्यम के द्वारा जो बातें शरीर-विरहित आत्माओं मे लिखित रूप मे या कथित रूप में की थीं, उनसे उन्हे मृत्यु के उपरान्त व्यक्तित्व की एवं उसके ज्ञान की अवस्थिति के अतिरिक्त अन्य कोई निष्कर्ष निकालना सर्वथा

अयौक्तिक-सा मालूम होता था। उन्हीं के शब्दों में—The hypothesis of surviving intelligence and personality,—not only surviving but anxious and able with difficulty to communicate,—is the simplest and most straightforward and the only one that fits all the facts.

हाँ, इसमें कोई सन्देह नहीं कि शरीर-विरहित आत्माओं के अभी तक माध्यमों द्वारा जो संदेश प्राप्त हुए है और प्रश्नों के जो उत्तर मिले है, उनका पर्याप्त विश्लेषण करके ही उन्हे मानना श्रेयस्कर है।

अब मै इस सम्बन्ध मे अधिक लिखना निरर्थक समझता हूँ। विज्ञानसम्मत गवेषणाओं, परीक्षणों एवं निरीक्षणों द्वारा शरीर-त्याग के उपरान्त भी व्यक्तियों का अस्तित्व प्रमाणित हो गया है। ऐसे-ऐसे व्यक्तियों को माध्यम बना कर देखा गया है जिनके चरित्र के सम्बन्ध में किसी प्रकार का भी संशय नहीं किया जा सकता। धूर्त्तता का दोषारोपण सर्वथा अयौक्तिक प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त Cross correspondence से तो सब प्रकार की शंकाओं का निराकरण हो जाता है। पी० आर० एस० के उद्योगी सदस्यों को शरीर त्याग के उपरान्त विभिन्न माध्यमों के द्वारा संदेश भेजते हुए पाया गया है और साथ ही उनकी भावाभि-व्यक्ति की शैली में भी वही वैशिष्ट पाया गया है जो उनके पार्थिव अस्तित्व में सम्भव था। उन लोगों ने माध्यमों द्वारा विचार-प्रेषण करते समय इस बात की पूरी चेष्टा भी की थी कि उनके

मर्त्यलोक-निवासी मित्र उन्हें पहचान लें, क्योंकि वे यहाँ के अज्ञानान्धकार को विस्मृत नहीं कर पाये थे। उन्हे मालूम था कि उस लोक जाने पर अपने स्वरूप की विस्मृति हो जाती है।

आत्मा के अस्तित्व को वे सभी वैज्ञानिक मानते थे जिनका मस्तिष्क इस ह की छलनाओं से पर्याप्त रूप मे आक्रान्त नहीं हो गया है। सर आलिवर लौज ने आत्मा के अस्तित्व का समर्थन यत्र-तत्र बड़े ही सशक्त शब्दों मे किया है। एक स्थान पर वे लिखते हैं—"In my opinion, life is neither matter nor energy, nor even a function of matter or energy, but is something belonging to a different category,—it can also exist independently." प्राचीन युग के दार्शनिकों मे भी बहुत से आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते थे, किन्तु उनके तर्कों को अत्यन्त सरलतापूर्वक छिन्न-भिन्न किया जा सकता है। प्राचीन युग के हों या अर्वाचीन युग के, सभी स्वस्थ एवं सशक्त मस्तिष्कों ने मृत्यु के बाद के जीवन को स्वीकार किया है। भारतवासी ऋषियों के सम्बन्ध मे तो कहना ही क्या है? उन्होंने तो आत्मा के अस्तित्व को ही सत्य माना है; शरीर के अस्तित्व को मिथ्या! शरीर के लिये जिस प्रकार कपड़ों का बदलना कोई महत्व नहीं रखता, उसी प्रकार आत्मा के लिये भी जीर्ण शरीरों का त्याग एवं नूतन शरीरों का ग्रहण एक साधारण-सी बात है—जगद्गुरु श्रीकृष्ण की इस युक्ति मे जो सत्य अन्तर्निहित है, उसकी अवहेलना करना ज्ञान के आलोक की अवहेलना करना है।

वेदों, शास्त्रों पुराणों, स्मृतियों, काव्यों मे सवत्र पुनर्जन्म का समर्थन किया गया है। भारत के ही समान गौरवोज्जवल सभ्यता वाले मिस्र के मनीषियों ने भी मृत्यु के उपरान्त आत्मा की सत्ता स्वीकृत की थी। वहाँ के शिलालेखों मे आत्मा के अस्तित्व का एवं उसके बार-बार जन्म-ग्रहण करने का स्पष्ट उल्लेख पाया गया है। यूनान के अनेकानेक सत्यान्वेषियों की भी आत्मा के अस्तित्व पर पूर्ण आस्था थी। थेल्स, एम्पिडौक्लीज, फिरिडाइडिस, पिथागोरस प्रभृति विद्वान पुनर्जन्म के सिद्धान्त का पूर्ण विश्वास रखते थे। महामनीषी प्लेटो का तो यह कहना ही था कि इस जीवन मे हम जो ज्ञान प्रदर्शित करते है, उसका अधिकांश हमारे पूर्वजन्म के उपार्जित ज्ञानों की स्मृति मात्र है। प्लोटीनस यूनान का ख्यातनामा विचारक था। उसका सिद्धान्त था कि आत्मा सूक्ष्म वायवीय रूप से इस ग्रह पर अवतरित होती है और कुछ वर्षो तक शरीर-यात्रा करके फिर सूक्ष्म वायवीय रूप की होकर अपने गन्तव्य स्थान की ओर चल देती है। एम्पि-डोक्लीज का स्थान भी यूनानी दर्शन में साधारण नहीं है। आत्मा के आवागमन के सिद्धान्त पर उसका र्ण विश्वास था।

कहने का तात्पर्य यह है कि आत्मा के अस्तित्व के सम्बन्ध में संशयास्पद होने की कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि इसके अभाव में शरीर यात्रा असंभव है। बहुत वैज्ञानिक यह कहते है कि इस दुनिया के विभिन्न तत्वों के मिश्रण से वह शक्ति उत्पन्न हो जाती है जिसे हम आत्मा कहते हैं और शरीर के विनाश के साथ-साथ उसका भी विनाश हो जाता है। किन्तु यह युक्ति सर्वथा निस्सार है। कोई भी वैज्ञानिक अभी तक ऐसा नहीं हुआ जो दुनिया के विभिन्न

तत्वों के मिश्रण से जीवन समुत्पन्न कर दे। कुछ वर्ष पहले आत्मा के अस्तित्व का विरोध करने वाले वैज्ञानिक कहा करते थे कि जिस प्रकार गन्दे स्थानों मे स्वयं तरह-तरह के कीड़े उत्पन्न हो जाते है, उसी प्रकार अन्य समस्त प्राणि-समूह की उत्पत्ति हो गयी है। किन्तु वैज्ञानिक अनुसंधानों से यह पता चलता है कि उस स्थान मे ही उनकी उत्पत्ति हो सकती है, जहाँ पहले से जीवन किसी न किसी रूप मे विद्यमान रहता है। इधर कुछ दशाब्दियों से एक विचित्रता पूर्ण प्रयास कुछ वैज्ञानिक कर रहे है। वे अपनी प्रयोगशालाओं मे मानव-निर्माण करना चाहते है। यह विचार सर्वथा हास्यास्पद है। मानव-जाति के सर्वोत्कृष्ट वैज्ञानिक एक को तो अभी तक जीवन दान देने मे समर्थ ही नहीं हो पाये है, और चले है मानव-निर्माण के स्वप्न देखने !

आत्मा के अस्तित्व के विरोधी एक और हास्यास्पद तर्क उपस्थित करते है--चार्वाक के चरण-चिह्नों पर चलने का प्रयास करते हुए। वे कहते है कि आत्मा जब देह से विनिर्गत हो कर दूसरे लोक को चली जाती है तो वह बन्धु-स्नेह से प्रेरित होकर फिर क्यों नहीं चली आती !........इस प्रकार का तर्क स्पष्टतः प्रमाणित करता है कि ये लोग आत्मा के स्वरूप से पूर्णतः अनभिज्ञ है। आत्मा को यदि इन्हीं चर्मचक्षुओं से देखा जा सकता है तो फिर मरण-काल मे वह क्यों नहीं दृष्टिगत होती। इन चक्षुओं से आत्मा को देखना असंभव है, जब तक कि विशिष्ट साधनाओं द्वारा इनकी शक्ति बढ़ाई न जाय। एक तो आत्माएँ जब तक मुक्त नहीं हो जातीं, तब तक इच्छानुसार स्थान पर जाने की क्षमता उनमें नहीं

रहती, अतएव वह बन्धुओं के पास नहीं आती है और यदि वे आती भी होंगी तो इन सशक्त चर्मचक्षुओं के द्वारा उन्हें देखना संभव नहीं। सुनने में बात कुछ विचित्र सी मालूम होती है और प्रायः सभी अपरिज्ञात बातें विचित्र-सी मालूम हुआ करती हैं। मैं इस कमरे में बैठ कर लिख रहा हूँ। क्या प्रमाण है कि किसी की आत्मा मेरे इस कार्य का ध्यानपूर्वक निरीक्षण नहीं करती होगी? इन्द्रियों से उसकी अनुभूति नहीं होती, यह कहना कोई अर्थ नहीं रखता क्योंकि संसार की प्रायः समस्त सार वस्तुएँ इन्द्रियों की शक्ति से परे हैं।

पूर्वजन्म है तो हमें उसकी स्मृति क्यों नहीं रहती? यह प्रश्न भी अक्सर सामने आता है। मैं इस समय हिन्दी में लिख रहा हूँ। इस समय मेरी चेतना की सतह में—उसके ऊपरी पृष्ठ में हिन्दी भाषा के ही शब्द विद्यमान हैं, अन्य भाषाओं के नहीं। लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि अन्य भाषाओं का अस्तित्व मेरे मस्तिष्क में नहीं है। वह है, लेकिन इस समय कार्य करने की स्थिति में नहीं है। इसी प्रकार अतीत कालीन जन्मों की अनुभूतियाँ हममें हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं, लेकिन वह हमारी अप्रज्ञात चेतना में हैं; हमारी चेतना के उस ऊपरी स्तर में नहीं जिसे फ्रायड प्रभृति विद्वान् हमारी ज्ञान-चेतना कहते हैं। अप्रज्ञात चेतना के अस्तित्व को वर्त्तमान मनोवैज्ञानिक जगत् मान रहा है और यह उसके ज्ञान की प्रगति का एक शुभ लक्षण है, किन्तु इसकी जो रूपरेखा फ्रायड प्रभृति विद्वानों द्वारा निर्धारित हुई है, वह सर्वतोभावेन शुद्ध नहीं है। हमारी अप्रज्ञात चेतना हमारी अपूरित कामनाओं प्रभृति की ही वासस्थली नहीं है,

वह हमारे पूर्वजन्मों के अनुभवों की भी सञ्चयित्री है। हम विगत अनुभवों को याद नहीं कर पाते, इसीलिये अपने मस्तिष्कों मे उनके अस्तित्व को अस्वीकार नहीं कर सकते। यदि करते है तो मनो-विज्ञान के अध्ययन की दुर्बलता प्रकट करते है। मनोवैज्ञानिक जगत् यह अच्छी तरह जान गया है कि हमारी ज्ञानेन्द्रियों से जो कुछ भी विचार हमारे मस्तिष्क तक जाता है, वह किसी न किसी रूप मे हमारे मस्तिष्क मे चिह्नित हो जाता है। उचित और अनुकूल अवसर उपस्थित होने पर उनकी वे स्मृतियाँ सजग हो सकती है, जिनका हमे अभी ध्यान तक नहीं है।

योगी अरविन्द ने The Riddle of this world मे पूर्व जन्म की बातों के विस्मरण का कारण बताया है। वे कहते है कि एक जन्म के अनुभवों का सारमात्र आत्मा के साथ रहता है और वही दूसरे जन्म मे प्रकट होता है। यह सिद्धान्त भी अमान्य नहीं प्रतीत होता। एक जर्मन मनोवैज्ञानिक की किताब मे पढ़ा था कि एक लड़की बचपन मे अपने पिता से होमर का इलियड सुना करती थी। ग्रीक भाषा का उसे तनिक भी ज्ञान नहीं था। कई वर्षों के बाद एकाएक अस्वस्थ हो जाने पर न जाने उसके मस्तिष्क मे क्या हो गया कि वह सारा का सारा होमर सुनाने लगी जैसे उसे कण्ठगत हो।

अब आप ही सोचिये, जब इस जन्म की ही अधिकांश अनु-भूतियाँ मस्तिष्क मे रहकर भी हमारी चेतना की ऊपरी सतह पर नहीं आ पातीं, तो उन जन्मों की स्मृतियाँ कैसे जागृत हो सकती है जिनमे हमने जो शरीर धारण किया था, वह आज हमारे साथ

नहीं है। पूर्वजन्मों की स्मृतियाँ स्पष्ट रूप मे तो शायद ही किसी व्यक्ति मे मिले, लेकिन नानाविध रूपों मे वे अपनी अभिव्यक्ति करती रहती है। अनेकानेक कलाकारों की कमनीय कलाओं एवं दार्शनिकों की गंभीर एवं प्राञ्जल विचार-धारा में उनके पूर्व जीवनों की साधना नव-नव रूपों में अभिव्यक्ति पाती रहती है।

फ्रेडरिक डबल्यू० एच० मायेर्स की लिखी हुई विद्वतापूर्ण पुस्तक Human Personality मानवी सत्ता पर जो प्रकाश निक्षिप्त करती है, वह वास्तव मे महत्वपूर्ण है। इस महान् ग्रंथ मे दिखलाया गया है कि हमारा अहं हमारी इस साधारण चेतना मे ही प्रकट है, यह बात सर्वथा भ्रान्ति पर आधारित है। अधिकांश मनोविज्ञानवेत्ताओं ने—पुराने मनोविज्ञानवेत्ताओं ने हमारी साधारण चेतना को ही हमारे अहं का उद्भावक माना है। लेकिन वास्तविक बात तो यह है कि हमारा सचेतन व्यक्तित्व जिससे हम अपने जागृत जीवन में परिचित रहते है, एक अधिक सत्य, ज्ञानमय एवं शाश्वत चेतना का एक अंशमात्र है। यह चेतना पार्थिव अस्तित्व-काल मे बन्दिनी-सी रहती है, किन्तु मृत्यु रूपी परिवर्त्तन इसे शक्ति-प्रकाश के लिए मुक्त करने में समर्थ हो सकता है।

प्रयोगात्मक मनोविज्ञान द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि हमारी परिचित चेतना के साथ ही एक अज्ञात चेतना भी हममे है। Human Personality के विद्वान लेखक ने इसे Subliminal self की संज्ञा दी है। इस अप्रज्ञात चेतना के लिए हमारी यह परिचित चेतना एक प्रकार से प्रवेश-द्वार का-सा

काम करती है। इसे जीवन के अनन्त सागर की साधारण कूल-रेखा भी कह सकते है। इसके ऊपर हमारी इस सचेतन हस्ती के अनेकानेक द्वीप सम्भूत होते है, लेकिन यह दृष्ट अंश एक अदृष्ट और इससे अतिशय महान् अंश पर आधारित है। हमारी अप्रज्ञात चेतना मे हमारे पूर्वजन्मों की स्मृतियों का कोष सुरक्षित है। कवियों की कविता मे, उपन्यासकारों के उपन्यास मे, नाटककारों के नाटकों में, चित्रकारों की चित्र-सर्जना मे अप्रज्ञात चेतना का जितना हाथ है, उतना ज्ञात का नहीं। अनुभव के बिना कल्पना नहीं हो सकती है। देखे हुए, सुने हुए और पढ़े हुए दृष्यों एवं घटनाओं को लेकर कल्पना-शक्ति पख पसारती है। यह आवश्यक नहीं कि संसार के अनेक उत्कृष्ट उपन्यासों मे कल्पना-शक्ति की जो आश्चर्यजनक कुशलता दिखलायी गयी है, उसके पीछे इसी जन्म के अनुभव काम कर रहे हों। यदि कई उपन्यासकारों के उपन्यास उनके पूर्वजन्म की जीवन-गाथा हों, तो कोई आश्चर्य नहीं।

मनोविज्ञान वेत्ताओं ने वंशानुसंक्रान्ति और पारिपार्श्विक वातावरण को व्यक्ति के स्वरूप-निर्धारण मे सर्वाधिक महत्त्व दिया है। ये दोनों महत्त्वपूर्ण है, इसमे कोई सन्देह नहीं और पारिपार्श्विक वातावरण तो वास्तव मे बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, किन्तु जो चीज सबसे अधिक महत्त्व की है, मनोविज्ञानवेत्ता का ध्यान अभी तक उस ओर नहीं जा पाया है। इसका कारण वही है, जिस पर मैं पहले प्रकाश डाल चुका हूँ। वह चीज है, पूर्वजीवन और पूर्वजीवनों के अनुभव। आज कोई व्यक्ति क्या है, इसके लिए केवल उसके

पूर्वज और उसका समाज ही उत्तरदायी नहीं है, अपितु उसके जन्म जन्मान्तर के संस्कार भी।

एडिनवर्ग के एक सज्जन मि० ई० बेडियन ने अपने भाई बैंजामिन के सम्बन्ध में बताया है कि वह छः वर्ष की अवस्था में अपने पिता के साथ जलपान करने के पहले टहल रहा था। उसने अपने पिता से पूछा कि मै कै बजे उत्पन्न हुआ था। पिता ने उसे बताया कि तुम चार बजे उत्पन्न हुए थे। इस पर उसने पूछा कि अभी कै बजे है। उत्तर मिला, साढ़े सात बजे है। बेंजामिन कुछ देर चलता रहा, फिर उसने पिता को यह बता दिया कि वह इस पृथ्वी पर कुल मिला कर कितने सेकेण्ड तक रहा है। उसके पिता ने संख्या लिख ली। घर आने पर उन्होंने हिसाब किया और बेंजामिन को बुलाकर कहा कि तुम्हारी संख्या ठीक नहीं है; उसमे और वास्तविक संख्या मे १७२,०० सेकेण्ड का अन्तर है। बेंजामिन ने छूटते ही उत्तर दिया—"ओह, आपने १८२० और १८२४ के लीपईयर्स के दो दिन छोड़ दिये है।" और वास्तव मे ऐसी ही बात भी थी।

छः वर्ष की अवस्था मे गणित की शक्ति का यह प्रदर्शन सर्वथा आश्चर्यजनक है। वास्तव मे यह शक्ति बेजामिन की अप्रज्ञात-चेतना द्वारा विनिःसृत एक किरण मात्र थी। Human Personality के लेखक ने इसे Subliminal uprush कहा है। सर जॉन हर्शेल नामक लब्धप्रतिष्ठ वैज्ञानिक ने भी हमारी ज्ञान चेतना के परे एक महान् अप्रज्ञात चेतना के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए लिखा है—There is evidence of a thought, an

intelligence working within our own organization, distinct from that of our own personality.

इस अप्रज्ञात चेतना के अस्तित्व को तो प्रायः सभी उच्च-कोटि के मनोविज्ञानवेत्ता मानने लगे है, किन्तु इसके स्वरूप के सम्बन्ध मे अभी पर्याप्त मतभेद है।

जो हो, मै इसे पूर्व जीवनों का स्मृति-संचय मानता हूँ।

मनोविज्ञान अभी एक प्रकार से अपनी शैशवावस्था मे ही है। मानव मस्तिष्क के सम्बन्ध मे बहुत कम बाते अभी तक जानी जा सकी है। विचारों के सम्बन्ध मे मनोविज्ञानवेत्ता अभी तक कोई निश्चिन्त एवं सशक्त निष्कर्ष नही निकाल पाये है। फिर भी विगत वर्षो मे मनोविज्ञान मे जो उन्नति हुई है, वह प्रशंसनीय है। पुराने मनोविज्ञान के जिन सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया गया है, वे तो सर्वथा हास्यास्पद है।

मानव मस्तिष्क इस ग्रह का सबसे अधिक शक्तिशाली और आश्चर्यजनक यन्त्र है। इससे उत्पन्न होने वाले विचारों को सूर्य के प्रकाश की उपमा देना अधिक युक्तियुक्त होगा। जिस प्रकार सूर्य की किरणे अत्यधिक त्वरित गति से चारों ओर प्रसारित होती है, उसी प्रकार हमारी विचार-धाराएँ भी। मानसिक सशक्तता ही विचारों की गति को भी सशक्त रूप प्रदान करती है। दुर्बल मानसिक स्थिति वाले व्यक्ति के विचारों की किरणों मे (इन्हे आप लहर या तरंग भी कह सकते है, क्योंकि किरणे भी तो आखिर लहरें ही है।) सशक्तता नहीं आ सकती।

विचारों का, कल्पनाओं का, आकाक्षांओं का इनके उद्गम स्थान के परिपार्श्विक वातावरण में जो प्रभाव पड़ता है, वह सर्वविदित है। दार्शनिकों के वासस्थल मे जाने से और फिर थोड़ी ही देर के बाद किसी व्यवसायी के वासस्थल पर जाने से जो विभिन्न मनः-स्थितियाँ होती हैं, उनपर गम्भीरतापूर्वक विचार करने से यह स्पष्ट हो जायगा।

विचार एक मस्तिष्क से दूसरे मस्तिष्क तक पहुँचाये जा सकते हैं, यह बात सुनने मे विचित्र-सी मालूम होती है, लेकिन इस संबंध मे अनेकानेक प्रयोग किये हैं, जो इसकी सत्यतापर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं।

सबल मन निर्बल मन को केवल प्रभावित ही नहीं कर सकता, उसको अपने साँचे मे भी ढाल सकता है।

श्री मैलकोम गुथरी विचारों के प्रेषण के प्रयोग कर रहे थे। उन्होंने सर आलिवर लाज, डा० हडसन एवं एक या दो और ख्यातनामा वैज्ञानिकों को प्रयोग स्थान पर उपस्थित रहने के लिये अनुरोध किया। इन लोगों ने सहर्ष उनका अनुरोध स्वीकार कर लिया और प्रयोग स्थान मे सबके साथ एकत्र होते रहे। सबों की आँखे वैज्ञानिक सुलभ सतर्कता के साथ घटनाओं का परीक्षण कर रही थीं। सर आलिवर लाज ने तो विचार-प्रेषण की सत्यता को स्वीकार करते हुए स्पष्ट लिख दिया है—I will just say that the conditions under which apparent transference of thought occurs from one or more persons, steadfastly thinking, to another in the same

room blindfold and wholly disconnected from the others seem to me absolutely satisfactory, and such as to preclude the possiblity of concious collusion on the one hand or unconcious muscular indication on the other.

दो व्यक्तियों को विचार-ग्राहक के मस्तिष्क तक उन चित्रों या पदार्थों का विचार पहुँचाते हुए देखकर जिनपर उन लोगों का अवधान केन्द्रित रहता था, सर आलिवर लॉज अपने साथ एक मोटा और सर्वथा अपारदर्शक कागज लेते आये जिसके एक ओर त्रिभुज अंकित था और दूसरी ओर : का चिह्न था। शान्तिपूर्वक उन्होंने इस कागज के टुकड़े को उन दोनों व्यक्तियों के बीच इस प्रकार रख दिया कि उस तरफ के चित्र का क्षीणाभास तक भी इधर के व्यक्ति को नहीं मिल सकता था और न इधर के चित्र का अत्यल्पाभास उधर के व्यक्ति को। विचार-ग्राहक को यह भी नहीं बताया गया कि ये लोग एक नवीन रूप से काम ले रहे है। उन तीनों के बीच मे किसी प्रकार का भी सम्बन्ध नहीं था—रिक्त स्थान के अतिरिक्त। कुछ ही क्षणों के उपरान्त विचार-ग्राहक बोल उठा,"वह स्थिर नहीं रह सकेगी। मै वस्तुओं को इधर-उधर घूमती हुई देख रहा हूँ। कभी मै एक चीज वहाँ देखता हूँ, उसके ऊपर, तो कभी एक वहाँ देखता हूँ, उसके नीचे। मै दोनों मे से किसी को भी स्पष्टतः नहीं देख पाता।" चारों ओर पूर्ण शान्ति छाई हुई थी। सबके सब अत्यन्त सतर्क होकर उन तीनों की ओर देख रहे थे। विचार-ग्राहक की ऐसी बाते सुनकर उस कागज को हटाकर दिया गया

और विचार-ग्राहक की आँखों मे पट्टी बँधवा दी गयी। फिर उससे अपने मस्तिष्क में पड़े हुए प्रभाव को कागज पर अंकित करने के लिये कहा गया। उसने एक त्रिभुज खींच दिया और बोला—"इसके साथ ही साथ दूसरी चीज भी थी।" और ऐसा कहकर उस त्रिभुज के बीच मे एक क्रास अंकित कर दिया और उसके बाद बोला—"मै नहीं जानता, मैने इसे त्रिभुज के भीतर क्यों अंकित किया।"

इस उदाहरण से पाठकों के सामने यह बात स्पष्ट हो गयी होगी कि विचार किस प्रकार अभीष्ट स्थानों तक पहुँचाये जा सकते है और वे किस प्रकार यात्रा करते है। सर आलिवर लॉज ने ऐसे-ऐसे पचासों प्रयोगों को देखा है और उनकी सत्यता स्वीकार की है।

एक बार यूनियन जैक की रेखाओं के चित्र के ऊपर विचार-प्रेषक ने अपना ध्यान केन्द्रित किया और विचार-ग्राहक के मस्तिष्क में भी उसका चित्र अंकित हो गया।

सर आलिवर लॉज ने इन प्रयोगों का समुचित निरीक्षण एवं अध्ययन करके विचारों के सम्बन्ध मे जो निष्कर्ष निकाला है वह यों है—"I may, however, be permitted to suggest a rough and crude analogy. That the brain is the organ of conciousness is patent but that conciousness is located in the brain, is what no psychologist ought to assert ; for just as the energy of an electric charge though apparently in the conductor, is not in the conductor, but in the sapace all round it ; so it may

be that the sensory conciousness of a person, though apparently located in his brain may be conceived of as also existing like a faint echo in space, or in other brains although these are ordinarily too busy and preoccupied to notice it."

मै समझता हूँ, पाठकों को एक या दो प्रयोग की अभिज्ञता से सन्तोष नहीं हुआ होगा। अतएव मै विचार-प्रेषण के कतिपय महत्वपूर्ण एवं पूर्णरूप से विश्वसनीय प्रयोगों पर प्रकाश डाल कर आगे बढ़ूंगा।

यह तो पाठकों को मालूम हो ही गया है कि इन प्रयोगों मे विचार-ग्राहक को अपना मस्तिष्क सर्वथा निष्क्रिय और ग्रहण-शील कर लेना पड़ता है। मस्तिष्क पूर्णरूप से तो निष्क्रिय कभी हो ही नहीं सकता। किन्तु फिर भी उसे जितना रिक्त कर लिया जाता है, प्रयोगों मे उतनी ही सफलता मिलती है। ज्ञानेन्द्रियों को किसी प्रकार की भी उत्तेजना से परे रखा जाता है। नेत्रों पर पट्टी बाँध दी जाती है और पूर्ण शान्ति रखी जाती है। मार्ग के जनरव से विचार-ग्राहक को पूर्णतः वियुक्त करने के लिये उसके कानों मे रुई आदि डाल देना अधिक उपयुक्त होता है, यद्यपि सर आलिवर लॉज ने जिन प्रयोगों का निरीक्षण किया है, उनमे ऐसा नहीं किया गया था। उन प्रयोगों मे विचार-ग्राहक का कार्य-सम्पादन एक लड़की ने किया था जो संयोगवश प्रयोगकर्त्ताओं को इस युक्ति से संयुक्त मिल गयी थी। विचार-ग्रहण की यह शक्ति सब मे होती है या कुछ विशिष्ट व्यक्तियों में ही, यह निश्चय-

पूर्वक नहीं कहा जा सकता। सर ओलिवर लाज ने स्वयं विचार-ग्राहक बनने की चेष्टा की थी। लेकिन इसमें उन्हे पूर्ण असफलता मिली।

वर्त्तमान मनोविज्ञानवेत्ताओं ने जो भयंकर भूले की है, उनमे प्रतिभा सम्बन्धी भूल सर्वाधिक भयंकर है। इसे अधिकांश मनो-वैज्ञानिकों ने मानव मस्तिष्क का एकांगी विकास बतलाया है और साथ ही उनका यह भी कहना है कि इस एकांगी विकास के कारण उनकी अन्य शक्तियों का समुचित विकास नहीं हो पाता, अतएव उनके आचरण सनकियों और पागलों के-से होते हैं। डा० मैक्स नारडू ने तो अपनी Degeneration नामक पुस्तक मे यूरोप के प्रायः समस्त प्रतिभाशाली साहित्यिकों को पागलों और मार्गच्युत व्यक्तियों की श्रेणी मे परिगणित किया है। प्रोफेसर लोम्ब्रोसो भी इसी मतवाद के समर्थक हैं। जैसा कि मुझे याद है, शायद डा० मैक्स नारडू ने प्रो० लाम्ब्रोसो के विचारों से प्रभावित होकर और प्रेरणा पाकर Degeneration की सृष्टि की है। उन्हें शायद समर्पित भी किया है,—उनकी प्रशंसा के पुल बाँधते हुए। यूरोप का शायद ही कोई प्रतिभाशाली एवं ख्यातनामा साहित्यिक इनके आक्षेपों से बचा होगा! रहस्य-वादियों को तो इन लोगों ने पूर्णतया अस्वस्थ मस्तिष्क का विघो-षित कर दिया है। शिराओं के दौर्बल्य से ये लोग भावुकतामय रहस्यवाद की सृष्टि मानते हैं।

इनका कहना है कि जो व्यक्ति जितना ही अधिक स्वस्थ मस्तिष्क का होगा, उसके मानस-लोक में दिवा-स्वप्नों, रंगीन कल्प-

नाओं और भावुकतामयी प्रेम-संवेदनाओं का समुद्भव उतनी ही कम मात्रा में होगा। स्वस्थ मस्तिष्क वाले व्यक्ति इस संसार मे प्रहृ-ष्टमना हो कर रहते हैं, संघर्ष करते हैं और शक्तिपूर्वक जीवन-पथ पर चलते हुए मृत्यु की चिन्ता न करते हुए विदा-ग्रहण कर लेते हैं। नर-नारी के पारस्परिक आकर्षण का जब प्राबल्य उनमे होता है तो वे एक मिथ्या स्वप्नलोक के स्वर्णवेश्म की सृष्टि नहीं करते और अपनी वासनाओं की तृप्ति बलपूर्वक कर लेते हैं। स्वस्थ मस्तिष्कवाले व्यक्तियों की कुछ-कुछ ऐसी ही रूपरेखा ये लोग निर्धारित करते हैं। आज के तथाकथित प्रगतिवादी कलाकार भी (यद्यपि उन्हे कलाकार कहना सर्वथा अनुपयुक्त है।) स्वस्थ मानवों की ऐसी ही रूपरेखा निश्चित करके अपनी उस समय की रचनाओं को, जब कि वे प्रगतिवादी नहीं बन पाये थे, रोगग्रस्त मस्तिष्क की उपज समझने लगे हैं।

किन्तु वास्तव मे इनके सिद्धान्त अवास्तविकता पर आधारित हैं। स्वस्थ मस्तिष्क की जो परिभाषा ये लोग करते हैं, यदि उसे सत्य मान लिया जाय तो पशुओं और पक्षियों को मनुष्यों का आदर्श मानना पड़ेगा। अफ्रीका के कानन-निवासी मनुष्यों की अपेक्षा अधिक स्वस्थ मस्तिष्क वाले यूरोप, अमेरिका या एशिया मे नहीं मिलेंगे।

वास्तव में बात ऐसी नहीं है। प्रतिभा मानवी मस्तिष्क की सर्वोत्कृष्ट अवस्था है। यह वह अवस्था है, जहाँ से इस ग्रह का अधिवासी अन्य ग्रहों की विचार-धारा से अपना सम्बन्ध स्थापित कर सकता है! मानव मस्तिष्क को समझने के लिये आप ब्राड-कास्टिंग स्टेशन और रिसीवर को अपने ध्यान में ले आइये। इससे

अच्छी उपमा मस्तिष्क के लिये दूसरी नहीं हो सकती। मान मस्तिष्क विचार को ब्राडकास्ट भी करता है और उन्हे ग्रहण भी जो मस्तिष्क इस ग्रह की सीमा के बाहर से आनेवाले विचारों क ग्रहण करने की क्षमता प्राप्त कर लेते है, वे प्रतिभाशाली हो जा है। साधारण मस्तिष्कों मे यह क्षमता नहीं होती। वे इसी ग्रह क क्षुद्र, श्रम-क्लिष्ट एवं निष्प्राण, वासनामयी विचारधाराएँ ग्रहण कर रहते है और उनसे प्रभावित होते रहते है। उनके मस्तिष्कों से ज विचार-कम्पन बहिर्गत होते है, वे भी ऐसे ही निकृष्ट, घृणित औ तेजहीन होते हैं।

मानव मस्तिष्क को समझने मे अभी तक विज्ञानवेत्ताओं क जो सफलता मिली है, वह सर्वथा नगण्य है। इसकी शक्तियों क परिचय वास्तव मे विस्मयकर है। इस ग्रह के समस्त दृष्ट यंत्रों म सर्वाधिक जटिल, बोधगम्य एवं विस्मयकर यंत्र यही है। इसी वे द्वारा यह ग्रह संसार के अन्य ग्रहों से सम्बद्ध है।

अमेरिका के एक नगर मे एक सज्जन बोल रहे है। सारे वे सारे इथर मे उनकी आवाज व्याप्त हो रही है। अब जहाँ-जह रेडियो के यंत्र होंगे, वहाँ-वहाँ वे आवाजे पकड़ी जा सकेंगी। केवल रेडियों के यंत्रों के होने से ही काम नहीं चलेगा। उनका बिजली से सम्बन्ध भी होना चाहिये। उसी प्रकार इस विश्व के समस्त ग्रहों में जो विचार-कम्पन बहिर्गत हो रहे है, वे सारे वे सारे विश्व में व्याप्त हो रहे है। आवाज की या प्रकाश की जो गति है, उससे करोड़ों गुनी तीव्र गति विचारों में कम्पन की है। मस्तिष्क ही वह यंत्र है, जहाँ विचार के कम्पन गृहीत होते हैं।

जिन व्यक्तियों का मस्तिष्क अधिक स्वस्थ और तेजस्वी होगा, वे अधिक उन्नत ग्रहों के समुज्वल विचार-कम्पनों को ग्रहण करने में सक्षम हो सकेंगे।

बहुत-से मनोविज्ञानवेत्ता प्रेमियों या कामोपभोग की दुर्दान्त लालसा से उत्प्रेरित व्यक्तियों के द्वारा महान् प्रतिभा समन्वित कार्यों को सम्पादित होता देख यह मानने लगे हैं कि जितनी भी कलासम्बन्धी कृतियाँ हैं, सब का समुद्भव अपने प्रेमपात्र को या अपनी कामवासना-पूर्ति के साधन को आकर्षित करने के लिये है। एक व्यक्ति वैज्ञानिक साधना में मन-प्राण से इसलिये जुट जाता है कि ऐसा करने से वह प्रेमिका की दृष्टि में ऊपर उठ सकेगा और तब उसके हृदय पर विजय प्राप्त कर सकेगा। एक व्यक्ति वेदना से लबरेज़ कविताओं के निर्माण में इसलिये व्यस्त रहता है कि ऐसा कर के वह अपनी प्रेमपात्री को प्राप्त कर सकेगा। योनिजन्य वासना की परितृप्ति के ही परिवर्त्तित स्वरूप को ये लोग कला और विज्ञान की चरम साधना में पाते हैं।

लेकिन अधिक गंभीरतापूर्वक विचार करने से इन के कथन की निस्सारता स्वयं प्रमाणित हो जाती है। बात वास्तव में यह है कि कतिपय विशिष्ट संवेदन मानवी मस्तिष्क को विशिष्ट विचार-कम्पनों के ग्रहण में सहायता पहुँचाते हैं। जिस प्रकार रेडियो की मशीन को लेकर कमरे में रख लेने से ही टोकियो, र्बालन या लंदन की खबरें नहीं सुनी जा सकतीं, बल्कि उसे बिजली से संयुक्त भी करना पड़ता है। प्रेम या काम-वासना भी मानवी मस्तिष्करूपी रेडियो के लिये बिजली का काम करती है।

विभिन्न मस्तिष्कों के लिये विभिन्न प्रकार की संवेदनाओं के संयोग की आवश्यकता होती है। उन में प्राधान्य इस ग्रह में छ का है : (१) काम-वासना (२) प्रेम (३) यश, शक्ति या धन की दुर्निवार कामना (३) संगीत (४) पुरुष की पुरुष से या नारी की नारी से या नारी की पुरुष से मैत्री (५) भय (६) उन्मादक द्रव्य प्रभृति।

इनमें सर्वाधिक महत्ता प्रेम की है। इस ग्रह के अधिवासी के मस्तिष्क में दूरागत विचारों को जागृत करने में यह लासानी है—अद्वितीय है। प्रेमियों के द्वारा उच्चतम कलाकृतियों का जो निर्माण हुआ है, उस का यही कारण है। काम-वासना भी मस्तिष्क को वह शक्ति प्रदान करती है, जिस से कि वह उन विचारों के कम्पन को ग्रहण करने में समर्थ हो पाता है, जो कलात्मक कृतित्व मे सहायक हैं। इसीलिए अधिकांश कलाकार या तो प्रेमी मिलेंगे या कामुक। लेकिन उनकी कला-कृतियों की समुद्भावना का आधार उनके प्रेम मे या कामुकता मे नहीं है, जैसा कि अनेकानेक भ्रान्त मनोविज्ञानवेत्ता समझ रहे हैं।

प्रतिभाशाली व्यक्तियों का आचरण कुछ-कुछ पागलों का-सा होता है, इसमें सन्देह नहीं। लेकिन यह दोष मानव-जाति की सामाजिक व्यवस्था का है। प्रतिभाशाली व्यक्तियों की बात जाने दीजिए। उन्हीं व्यक्तियों को लीजिए, जो साधारण हैं। अर्थात् किसी प्रकार की प्रतिभा जिनमें नहीं है। अमेरिका में हिसाब लगा कर देखा गया है कि प्रत्येक बीस व्यक्ति के पीछे एक व्यक्ति मानसिक अस्वास्थ्य से आक्रान्त है। क्यों? वहाँ तो मस्तिष्क की

एकांगी वृद्धि का कोई प्रश्न ही नहीं है। बात यह है कि वर्त्त-मान सामाजिक व्यवस्था इतनी दूषित और घृणास्पद है कि इस में प्रतिभा की अवस्थिति ही विस्मयकर प्रतीत होती है। मानव-जाति ने जो वातावरण बना लिया है, वह प्रतिभाशाली व्यक्तियों के मस्तिष्क के लिये सर्वथा अहितकर है। इसीलिए प्रतिभा के साथ ही साथ कुछ-कुछ पागलपन का भी संयोग पाया जाता है।

डा० मैक्स नारडू और प्रो० लोम्ब्रोसो प्रभृति ने मानव-जाति के विकास-पथ के लिये प्रतिभाशाली व्यक्तियों का अस्तित्व अहितकर सिद्ध किया है। किन्तु यह विचार मानवी अग्रगति की वास्तविकता को पहिचानने की शक्ति के अभाव से समुत्पन्न हुआ है। यदि प्रतिभाशाली मस्तिष्क इस ग्रह पर नहीं रहे होते, तो मानव-जाति किस अज्ञानांधकार मे परिभ्रमण करती होती, इसकी कल्पना भी प्राणों को विस्मयान्वित कर डालती है! पशुओं से भी अधिक निकृष्ट जीवन मनुष्यों का हो गया होता! Human personality के लेखक फ्रेडरिक मायर्स ने लिखा है--They (प्रतिभाशाली व्यक्ति) have made for us the sanest and most fruitful experiments yet made by man. They have endeavoured to exalt the human race in a way in which it can in truth be exalted, they have depended on forces which exist and on a soul which answers! They have dwelt on those things, "by dwelling on which," as Plato has it, "that even God is divine."

विश्व का जो स्वरूप अध्ययन, चिन्तन और निरीक्षण ने प्रदान किया है, वह मैं पाठकों के समक्ष रख चुका हूँ। हो सकता है, इस में गलतियाँ हों और अधिक सम्भावना इसी की है कि यह पूर्णतया शुद्ध नहीं है, लेकिन इसे पूर्णतया अशुद्ध भी नही कहा जा सकता। पूर्ण अशुद्धि तभी हो सकती है, जब मानवी मनीषा और उस की तर्क-शक्ति ही सर्वथा अशुद्ध सिद्ध कर दी जाय। और वस्तुतः इन का गलत सिद्ध हो जाना मानवी चिन्तन-शक्ति को ही गलत सिद्ध कर देगा। जितने भी वैज्ञानिक निष्कर्ष निकले हैं, सब इसी विश्वास पर आधारित हैं कि मानवी मनीषा का आधार गलत नहीं है——मानवी तर्क-शक्ति अविश्वसनीय नहीं है। धर्म की ही भाँति विज्ञान को भी विश्वास का सहारा लेना पड़ता है, अन्यथा इसकी गति नहीं। विभेद यही है कि धर्म सृष्टि के सञ्चालक के ऊपर विश्वास रखता है, विज्ञान मानवी चिन्तन-शक्ति के ऊपर। विज्ञान को इस बात का भी विश्वास है कि मानवी मस्तिष्क के द्वारा इस विश्व को समझा जा सकता है,——

के रहस्यों का उद्घाटन किया जा सकता है। यदि यह विश्वास
जाये तो विज्ञान अपने को शान्तिपूर्वक मृत्युदेव के क्रोड़ में
देत कर देगा। विज्ञानवेत्ता हो या कोई हो, बाह्य विश्व का
चेत्र उस के मस्तिष्क पर अंकित होगा, उसी के सम्बन्ध में वह
ोह कर सकता है, उस के विचार-विमर्श का क्षेत्र उसके परे
है। इस विषय पर मैं पुस्तक के आरम्भिक अध्याय मे प्रकाश
चुका हूँ।

इस ग्रह पर जिन दो विभिन्न पथों के महत्व का वर्णन मैं
म्भ मे कर चुका हूँ, उन मे एक कवि का है, एक वैज्ञानिक का।
शब्द का अर्थ यहाँ वह अर्थ नहीं जो साधारणत: दुनिया के
ारों में प्रचलित है। वैज्ञानिक और कवि एक दूसरे को एक
का शत्रु चिरकाल से समझते आ रहे है और इसी कारण दोनों
न्धि-स्थापना नहीं हो पायी। कवि अपनी राह पर चला जा
है—वैज्ञानिक के प्रति उपेक्षा की भावना का अपने हृदयान्तराल
ोषण करते हुए और वैज्ञानिक कवि को पागल और स्वप्न-
निवासी समझता हुआ अपनी मनीषा की शक्तिओं पर गौरवो-
न होता हुआ अपनी राह पर चला जा रहा है। जब तक इन
मे मैत्री नहीं होगी,—जब तक दोनों एक-दूसरे के पूरक
बनेंगे, तब तक दोनों ही मंज़िल से दूर रहेंगे। वैज्ञानिक यदि
ता है कि वह अपनी अक्लान्त श्रम-साधना से अपनी मंज़िल
पा लेगा तो यह उसकी दुराशा मात्र है और कवि यदि समझता
क वह केवल अपनी आँखों के आँसुओं से अपने रूठे चिर सुन्दर
ो को मना लेगा तो यह भी उसका एक मीठा स्वप्न मात्र है।

इस मायालोक में कवि को वैज्ञानिक का हाथ पकड़ना ही पड़ेगा। इसके बिना निस्तार नहीं।

साथ ही, एक वैज्ञानिक की दृष्टि में संसार का जो स्वरूप है, वह सर्वथा अपूर्ण है। कवि की दृष्टि ही उसे पूर्णता प्रदान कर सकती है।

इस दुनिया के चारों ओर एक मधु मादकता-सी छायी हुई है—रहस्य और माया की। वास्तव मे यह ग्रह माया-लोक है। माया के इस मोहमय तिमिर-जाल को विदीर्ण करके जिन की दृष्टि बाहर की ओर जा सकी है, वे ही महान् थे। अन्य व्यक्तियों के नाम के साथ महान् शब्द का प्रयोग करना निरर्थक है।

सर आलिवर लॉज ने बिल्कुल ठीक लिखा है—The whole of our knowledge and existence is shrouded in mystery. चारों ओर रहस्य!—चारों ओर जादू !!—चारों ओर छाया और माया!!!

और, इस छाया-माया मे निर्दोष जीवन-यात्री पथहारा हो कर अपनी राह ढूँढ़ रहे है! अभागों का शरीर स्वेद-सिक्त हो गया है, किन्तु इस जादू के देश मे उन्हे अभी तक अपनी राह नहीं मिल पा रही है! आँखों मे रह-रह कर आँसू भर-भर आते है। मानस-प्रदेश में रह-रह कर वेदना की और निराशा की श्याम घन-मालाएँ क्रन्दन कर उठती है! कितनों के तो चरण भी सर्वथा श्रम-क्लान्त एवं रुधिर-सिक्त हो चले है।

जो हो, खोयी हुई मंज़िल को प्राप्त तो करना ही होगा। इस तिमिर-जाल को चीर कर आनेवाली सत्य की जीवनदात्री किरणों

का आह्वान तो करना ही पड़ेगा। इस भ्रम-तम में कब तक चक्र-वाक-मिथुनों का दल चीत्कार करता रहेगा !!

:o: :o: :o:

अब हमें अपनी इस दुनिया की ओर देखना है,—इस नन्हीं-सी दुनिया की ओर जिस में हम रहते हैं, संघर्ष करते हैं, कला का निर्माण करते हैं, प्रेम करते हैं, घृणा करते हैं। इस दुनिया की ओर देखने में हमारे नेत्रों को अधिक कष्ट नहीं होगा, क्योंकि यह हमारे अत्यन्त निकट है,—इतनी निकट है कि इससे अधिक सामीप्य की कल्पना नहीं की जा सकती। और यदि अविवेकिता-पूर्ण जन्म-जन्मान्तर के संस्कारों से अपने को विनिर्मुक्त कर के द्रष्टा की आँखें इसे देखेंगी तो अत्यन्त सरलतापूर्वक इस का स्वच्छ और शुद्ध चित्र सामने आ जायगा।

अपने इस ग्रह के सम्बन्ध में भी उसी पद्धति से काम लेना होगा, जिस पद्धति से सारे के सारे विश्व का निरीक्षण किया गया है। सभी प्रकार के पक्षपातों से अलग हो कर एक दर्शक की भांति हमने विश्व को देखा है। अब इसी प्रकार इस ग्रह को भी देखना है। चित्रकार नहीं; कैमरामैन हो कर।

इस ग्रह के सर्वोत्कृष्ट प्राणी मानव हैं। सर्वोत्कृष्ट कहने में पक्षपात की गन्ध है। हम इन्हें सर्वाधिक सशक्त कहेंगे, क्योंकि शक्ति का आधिक्य सर्वत्र उत्कृष्टता के आधिक्य का भी द्योतक हो, यह बात नहीं है।

अतएव इस ग्रह के प्राणियों को समझने के पहले मानव-जाति को समझना आवश्यक है। और किसी चीज को तभी अच्छी

तरह समझा जा सकता है, जब हम उससे दूर हट कर निष्पक्ष भाव से उस की ओर दृग्पात करते हैं। मानव-जाति को देखने के पहले कुछ देर के लिये आप कल्पना कर लीजिये कि इस ग्रह से आप का कोई सम्बन्ध नहीं है। आप किसी दूसरे द्वीप-विश्व के अधिवासी हैं और अनेकानेक ग्रहों का पर्यटन करते हुए दुर्भाग्यवश यहाँ भी आ पहुँचते हैं। अब आप इस ग्रह के मानवों की जीवनचर्या पर, उनकी सभ्यता पर, उन की संस्कृति पर दृग्पात कीजिये।

मान लीजिये, सबसे पहले आप की दृष्टि कलकत्ते पर पड़ती है। आप देखते हैं—अपने शरीरों को विविध आवेष्टनों से परि-हित किये हुए नर-नारी इधर से उधर घूम रहे हैं। कुछ मोटरों पर चले जा रहे हैं—पथचारियों को हेय दृष्टि से देखते हुए। कुछ पैदल ही भटक रहे हैं। तरह-तरह की दूकानें हैं। उन मे तरह-तरह की सामग्रियाँ रखी हुई है। कहीं कपड़े हैं, कहीं घड़ियाँ हैं, कहीं बर्तन है, कहीं किताबें हैं। किताबों की दुकानों की संख्या आप को सब से कम मिलेगी। कहीं सिनेमा-हॉल आप को दिख-लायी देगे, कहीं वेश्यालय। लोग दूकानों मे जाते हैं और रजत-मुद्राएँ देते हैं। दूकानदार उन के बदले में उन्हे दूकान की चीजें देता है। ग्राहक चाहता है कि वह अधिक से अधिक चीजे और अच्छी से अच्छी चीजें कम से कम पैसों मे ले ले और दूकानदार चाहता है कि अपनी दूकान की कम से कम चीज और खराब से खराब चीज ज्यादा से ज्यादा पैसों में बेचे। कुछ देर दुकानदारों का निरीक्षण करने के बाद आगे बढ़ जाइए। यदि आप इस ग्रह का निरीक्षण कर रहे हैं तो आप को अपनी जेब में रजत-मुद्राएँ अवश्य

रखनी होंगी, अन्यथा आपके होश एक दिन के निरीक्षण में ही ठिकाने आ जायेंगे। उनके बिना न तो आप को कोई भोजन देगा, न कोई कमरा देगा। पैदल चलते-चलते आप के चरण परिश्रान्त हो जायेंगे। इसलिये मान लीजिये कि आपकी जेब मे रुपये है। आप ट्राम पर चढ़ते है और आगे बढ़ते है। ट्रामवाला आप से टिकट के पैसे माँगता है। आप जेब टटोलते है तो देखते है कि जेब कटी हुई है और आपके सब रुपये गायब है। आपको खेद उतना नहीं होता, जितना आश्चर्य होता है, क्योंकि आप इस ग्रह के अधिवासियों के स्वभाव से भिन्न नहीं हो पाये है। यदि भिन्न हो जाते तो आश्चर्य के स्थान में खेद अधिक होता और भविष्य की चिन्ता आपके मस्तिष्क की शिराओं को पीड़ित करने लगती। आप इस प्रकार आश्चर्य ही कर रहे है कि कण्डक्टर बिगड़ जाता है और आँखे तरेर कर कह उठता है—'यदि पैसे नहीं थे तो पैदल क्यों नही चले गये? ट्राम कंपनी क्या तुम्हारा कुछ धारती है!" उस का क्रोध आप की समझ मे आ जाता है। उस के वाक्यों पर कुछ देर विचार करने के बाद आप ट्राम से उतर जाते है और पैदल ही चलने लगते है। इतने मे वेश्याओं की गली मे आप पहुँच जाते है। वहाँ का दृश्य देख कर आप के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहेगा। आप देखेंगे कि घरो के दरवाजों के पास चेहरों पर पाउडर और न जाने क्या-क्या लपेटे इस ग्रह की नारियाँ खड़ी है और तिरछी निगाहों से पुरुषों को देख रही है। सभी प्रकार के पुरुष वहाँ आपको दिखलायी देंगे। बूढ़े भी, युवक और तरुण भी। लेकिन तब आप के आश्चर्य की

सीमा नहीं रहेगी, जब आप देखेंगे कि उन में अधिक संख्या उन नवयुवकों की है जो विद्योपार्जन के लिये इस नगरी में आये हैं। वहाँ आप जो कुछ देखेंगे उस से आप को बड़ी घृणा हो जायगी और आप जल्दी से जल्दी उस गली से निकल कर सड़क पर आ जायेंगे। मै समझता हूँ। तब तक आप को भूख अवश्य लग जायगी और आप कुछ देर के लिये यह भूल जायेंगे कि इस ग्रह में सभी चीजें, यहाँ तक कि भोजन तक भी पैसों से मिलता है। पैसे हैं तो खाइये, नहीं तो भूखों मरिये। आप एक दूकान मे पहुँच जाते हैं हैं और बैठ कर भोजन करना आरम्भ कर देते हैं। जब पेट भर जाता है, तब आप को एकाएक याद आता है कि इस ग्रह मे पैसे दिये बिना भोजन नहीं मिलता। अब आप चिन्तित हो उठते हैं। दूकानदार आप से पैसे माँगता है। आप चुपचाप उस के चेहरे की ओर देखते रहते हैं, जिस पर लगी हुई चीनी की चाशनी के ऊपर मक्खियाँ आ-आ कर बैठ जाती हैं। वह आप को निरुत्तर देख कर भली-बुरी बातें कहने लगता है। अन्त मे आप को उठाईगीरा समझ कर पुलिस के हवाले कर देता है। इस ग्रह की यात्रा के पहले आपने इस ग्रह की गाइड पढ़ तो ली थी, लेकिन यहाँ की परेशानियों के कारण आप अधिकांश बातें भूल जाते हैं। पुलिसवालों को देख कर पहले तो आप कुछ भी नहीं समझ पाते कि आखिर आप क्या देख रहे हैं और किस के साथ हैं। किन्तु धीरे-धीरे सब बातें आप की समझ मे आ जाती हैं। आप को दो-तीन दिनों तक हवा-लात मे रख कर वे लोग छोड़ देते हैं। आप को अब पैदल ही इधर-उधर भटकना पड़ता है। सौभाग्यवश आप एक ऐसे व्यक्ति

से मिलते हैं, जो कलाकार है। वह आप को अपने यहाँ ले जाता है। उस के घर की हालत देख कर आप दाँतों तले उँगली दबा लेते हैं। दरिद्रता वहाँ के वातावरण मे सिसकती हुई आप को दिखलायी देती है। कलाकार का बिछौना बिल्कुल फटा हुआ है। उस के पास केवल एक ही कमीज़ है, जिसे पहन कर वह बाहर निकला करता है। तीन-चार दिनों तक आप उस के साथ रहते हैं। आदमी वह बड़ा ही स्नेही निकलता है। आप को अपने मित्रों से परिचित कराता है। कलकत्ते मे इधर-उधर घुमाता भी है। आप को इस थोड़े से समय मे ही मालूम हो जाता है कि चित्रकार बड़ा यशस्वी है और उस के चित्रो को बहुत सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। लेकिन एक बात आप की समझ मे नहीं आती कि आखिर इतना सम्मानित व्यक्ति इतने गंदे मुहल्ले के एक बिल्कुल गंदे मकान मे क्यों रहता है! चित्रकार के साथ रहने के कारण आप का परिचय कतिपय ख्यातनामा उपन्यासकारों और कवियों से भी हो जाता है। कई धनाधीशों से भी जान-पहचान हो जाती है। इन नूतन परिचयों से आप का आश्चर्य दिन प्रति दन बढ़ता ही जायगा। बड़े-बड़े लखपतियों की सभा मे सभापति का स्थान ग्रहण करनेवाले और वक्ताओं मे पैगम्बर और फरिश्ता बनाये जानेवाले साहित्यिक को जब आप घर लौट कर रूखी-सूखी रोटियाँ खाते और एक गंदे मकान मे मैले, फटे बिछौने पर सोये हुए देखेंगे तो आप को कम आश्चर्य नहीं होगा और उस समय तो आप के आश्चर्य की सीमा नहीं रहेगी, जब आप सभा में साहित्यिक को सत्कृत करनवाले

व्यक्तियों को बँगलों में निवास करते हुए और मूल्यवान मोटरों पर सांध्य भ्रमण करते हुए देखेंगे।

ज्यों-ज्यों आपके दिन बीतते जायँगे, त्यों-त्यों आप को नवीन अनुभव होते जायँगे और मैं समझता हूँ आप को धीरे-धीरे कलकत्ते से घृणा भी होती जायगी। आप ही सोचिये, जब आप सुन्दर, प्रतिभाशाली, शिष्ट और स्वस्थ नवयुवकों को तो तीस-पैंतीस की नौकरी के लिये खाक छानते हुए पायेंगे और सामाजिक समुन्नति के लिये सर्वथा निरर्थक अस्तित्ववाले बुद्धिहीन व्यक्तियों को सब प्रकार की सुविधाओं का उपभोग करते हुए देखेंगे तब आप का हृदय कैसी-कैसी भावनाओं से नहीं भर जायगा! सारे के सारे मानव-समाज को जब आप व्यर्थ के कार्य-कलाप में संलिप्त पायँगे,—जब आप देखेंगे कि शराब, वेश्यागमन, दुराचारिता प्रभृति की हानिकारिता से भिज्ञ होते हुए भी इस ग्रह के अधिवासी इन्हीं के पीछे हाथ धो कर पड़ जाते हैं,—मृत्यु को अनेकानेक व्यक्तियों के जीवन-शतदल वृन्त-विच्छिन्न करते हुए देख कर भी रजत-मुद्राओं के संचय में ही व्यतिव्यस्त रहते हैं, तब आप क्या सोचेंगे!

अभी-अभी एक व्यक्ति की मृत्यु हो गयी है। वह धनाधीश था। कलकत्ते में उस के कई मकान थे। जिन मोटरों पर वह चलता था, वे अपनी कीमत के द्वारा इस ग्रह के कई व्यक्तियों की उदरपूर्ति जीवनपर्यन्त कर सकती थीं। उसकी मृत्यु हो जाती है और लोग उसे लेकर फूँक आते हैं। आप भी साथ-साथ जाते हैं। रास्ते में आप स्मशानगामियों की बातें ध्यानपूर्वक सुनते भी जा रहे हैं। कोई तो सट्टे की चर्चा कर रहा है, कोई सूते की भाव

वृद्धि या भाव-लाघव की। दो-चार नवयुवक अपनी विभिन्न पत्नियों की स्वभाव-चर्चा या रूप-चर्चा में व्यक्तिव्यस्त है। उस व्यक्ति की मृतदेह को जब तक वे लोग चिता की लपटों से आलिङ्गित करा के खाक में नहीं मिला डालते, तब तक तो उस जनसमूह में कहीं-कहीं आप को इस ग्रह की जीवन की निस्सारता से सम्बन्धित वार्त्तालाप सुनने मे आते है, लेकिन उसके बाद फिर वे लोग सब के सब ज्यों के त्यों धनार्जन और सन्तानोत्पादन प्रभृति कार्यों मे व्यस्त हो जाते है। मृत्युरूपसी ने जिस प्रकार अनाहूत ही अपने आगमन से इस धनाधीश की जीवन कलिका को वृन्तच्युत कर दिया, उसी प्रकार वे भी एक दिन वृन्तच्युत किये जायँगे, यह वे नहीं जानते है, ऐसी बात नहीं है, लेकिन फिर भी उनकी कार्य-पद्धति उसी व्यक्ति की-सी हो रही है, जिस का मृत्यु के द्वारा कुछ भी नहीं बिगड़ता।

आप इस गृह के अधिवासियो की बुद्धि-विचित्रता एवं कार्य-विपर्ययसे आश्चर्यान्वित होते हुए पुस्तकालयों की ओर जाते है। वहाँ आपको इस बात की आशा रहती है कि कुछ घंटे महापुरुषों के विचारों के साथ जीतेगे और उत्तप्त मानस-सरोवर को इस ग्रह के शक्तिशाली मस्तिष्कों के विचार-समीरण से कुछ शान्त किया जायगा।

पुस्तकाध्यक्ष से आप यह सोच कर कुछ ऐसी किताबे माँगते है, जिन मे इस ग्रह के महापुरुषों का वर्णन हो! साथ ही आप इस ग्रह का इतिहास भी माँगते है। जब आप उन्हे पढ़ने बैठते है तो घृणा और विक्षोभ से आप के मन-प्राण भर आते है। आरम्भ से लेकर अन्त तक लुटेरों, हत्याकारियों और डाकुओं के क्रिया-कलाप का वर्णन आप पाते है। मानवी सभ्यता और संस्कृति के सुमहान्

उन्नायकों का उस इतिहास में आपको कहीं स्थान ही नहीं दिखायी देता है !

आप की तबियत ऊब-सी जाती है और आप पुस्तकाध्यक्ष महोदय से कोई ऐसी किताब माँगते हैं जिस से आपका मनोरंजन हो। पुस्तककाध्यक्ष महोदय आप को एक उपन्यास यह कहते हुए देते हैं कि यह वर्त्तमान युग की सर्वोत्कृष्ट कृतियों मे स्थान पा चुका है। आप उसे पढ़ना आरंभ करते हैं। कुछ ही पन्नों को पढ़ने के बाद घृणा से आप के मन-प्राण भर आते हैं। आप आश्चर्यित हो उठते हैं कि आखिर क्या मानव-जाति क्षुधानिवारण और मन्मथ-आकर्षण के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानती,—कुछ नहीं जानना चाहती !

आप कलकत्ते मे अब अधिक देर शायद ही ठहरें। पास के एक गाँव मे चले आते है—यह सोच कर कि वहाँ शायद आप को कुछ ऐसी चीजे दिखलायी दे जो प्राणों मे घृणा संचारित करने के स्थान पर स्नेह-सञ्चार करें। लेकिन वहाँ के अधिवासियों की जीवन-चर्या भी आपको आश्चर्यित ही करती है। प्राकृतिक श्री सुषमा को छोड़ कर आप को वहाँ की भी कोई वस्तु प्रिय नहीं लग पाती। नागरिकों को आपने एक-दूसरे से लड़ कर अधिकतर गाली-गलौज करते हुए देखा था। यहाँ आप लोगों को एक-दूसरे का सिर फोड़ते हुए देखते है। कुछ दूर हट कर आपको जमींदार का बँगला दिखायी देता है, जो सब प्रकार की सुविधाओं को अधिकृत किये हुए है और कृषकों एवं अन्य ग्रामीण श्रमजीवियों

को उदरपूर्त्ति के लिये पर्याप्त भोजन तक नहीं मिल पाता—अन्धकार को ज्योतित करने के लिये वे चिराग तक नहीं जला पाते !

आपकी यात्रा-कामना कुछ ही दिनों में घर लौटने की दुर्दान्त कामना के रूप में परिणत हो जायगी। इस ग्रह तक आने के पहले आप जिन अनेकानेक जिज्ञासाओं से भरे हुए थे, वे सब एक-एक करके बुझ जायँगी और इस ग्रह के विभिन्न नगरों, ग्रामों, देशों का अवलोकन करने के बाद आप शायद ही अपने प्राणों में यहाँ के प्रति स्नेह की एक नन्हीं-सी भी किरण का पोषण कर सकेंगे। आप ही बताइये, जब आप देखेंगे कि मानवी सभ्यता एवं संस्कृति के अग्रगमन में पर्याप्त बाधाएँ पहुँचानेवाले व्यक्ति तो सब प्रकार की सुविधाओं का उपभोग कर रहे हैं और अपनी साधना के द्वारा सभ्यता के पथ की बाधाएँ दूर करने में निशिवासर लीन रहनेवाले वाले व्यक्ति नानाविध अभावों से क्लेशित होते रहते हैं, तब आप को इस ग्रह से कितनी घृणा नहीं हो जायगी !

इस ग्रह पर चारों ओर आप को असुन्दर और कुत्सित दृश्यावलियों की ही प्रधानता दृष्टिगत होगी। समस्त प्राणी आप को विचित्र क्रियाओं में व्यस्त दिखलायी देंगे। बाह्य आडम्बर का इतना प्राचुर्य देख कर शायद आप दाँतों तले उँगली दबा लें।

आप चारों ओर नानाविध रोगों और शोकों का आधिक्य पाइयेगा। पूर्ण स्वास्थ्य और आनन्द आप को कहीं भी दृष्टिगत नहीं होगा।

•

किसी देश की जलवायु आप को अत्यधिक उष्ण मिलेगी तो किसी देश की जलवायु अत्यधिक शीतल। कहीं वर्षा के कारण

चारों ओर मलिनता और असुन्दरता का साम्राज्य दिखलायी देगा। इने-गिने देश ही ऐसे मिलेंगे, जहाँ कुछ अंशों में प्रकृति ने कृपा की हो।

अन्य प्राणिधारियों की हिंसा कर के उनके मांस से उदरपूर्ति करते हुए जब आप इस ग्रह के सर्वोत्कृष्ट प्राणियों को देखेंगे तो आप ही कहिये, इस ग्रह के सम्बन्ध मे क्या सोचेंगे !

इस ग्रह का इतना निरीक्षण करने के बाद आप यही कहेंगे कि यह नरक है और यदि नरक नहीं है तो उस से मिलती-जुलती चीज जरूर है।

लेकिन मैं आपकी बात को नहीं मानूँगा। इस के दो कारण हैं। पहला यह कि आप का यह निरीक्षण बहुत ही ऊपरी स्तर का है; आपकी दृष्टि ने दृश्यों के अन्तराल मे प्रवेश नहीं किया और दूसरी बात यह कि आप का निरीक्षण अल्पकालिक है। मानव-जाति के समुद्भव-काल से ले कर उस के अब तक के इतिवृत्त का गंभीर अध्ययन ही स्वस्थ निष्कर्ष का समुद्भावक हो सकता है।

मैं अपना निष्कर्ष आपके समक्ष रखूँ, इस के पहले आप की कल्पना-शक्ति को एक कष्ट और करना पड़ेगा। मान लीजिये, आप के संगी-साथी आप के लिये बहुत बेचैन हो रहे हैं। अपने ग्रह से निकले हुए आप को पर्याप्त समय हो चुका है। फलत आप के प्रिय बन्धु यहाँ के दूरवीक्षण यंत्रों की अपेक्षा सहस्रगुणित शक्तिवाले दूरवीक्षण यन्त्र से इस ग्रह को देखना और आपकी खोज करना आरम्भ कर देते हैं।

लेकिन यह तो आप को विदित है ही कि प्रकाश प्रत्येक सेकेण्ड में १८६,००० मील की गति से जाता है और आप का ग्रह यहाँ से १५०,०००,००० प्रकाश-वर्ष की दूरी पर है। फलतः इस ग्रह पर जो घटनाएँ आज से कई लाख वर्ष पहले हुई थीं, उन्हे वे देख सकेंगे। वे देखेंगे कि इस ग्रह पर तरह-तरह के विचित्र जन्तु इधर से उधर भटक रहे हैं। अपने समुदाय के जन्तुओं को छोड़ कर, सभी जन्तु एक-दूसरे को उदर पूर्ति का साधन बनाने की चेष्टाएँ कर रहे हैं। एक जन्तु पीछे-पीछे दौड़ रहा है और दूसरा भयग्रस्त होकर भागा चला जा रहा है। एकाएक वह जन्तु दूसरे एक हिंस्र जन्तु के साथ आ जाता है और क्षणों मे उस का शरीर टुकड़े-टुकड़े हो कर उस जन्तु के उदर मे चला जाता है। आप के देशवासी इस प्रकार की सहस्रों घटनाओं का अवलोकन करेंगे।

मान लीजिए, आप के कुछ साथी आप की खोज मे कतिपय निकटवर्ती ग्रहों मे चले आये हैं और वहाँ के दूरवीक्षण यंत्र से आप के वर्त्तमान वासस्थल को देखना प्रारम्भ करते हैं। वह ग्रह यहाँ से १०,००० प्रकाश-वर्ष की दूरी पर स्थित है। फलतः उन्हें महाभारतकालीन दृश्य दिखलायी देंगे। वे देखेंगे कि एक समाज मे विभिन्न प्राणी तरह-तरह के अस्त्र-शस्त्र ले कर कुरुक्षेत्र के समरांगण मे खड़े हैं और एक दूसरे को नष्ट करने मे आप्राण चेष्टाओं मे संलग्न हैं। वे इस विनाश-लीला का कोई कारण नहीं समझ पाये हैं। आप के वे साथी, जो कई लाख वर्ष पहले की घटनाओं का अवलोकन कर रहे थे; कम से कम इतना तो समझ

गये होंगे कि उस ग्रह के अधिवासियों के जीवन का सा
ही हिंसा-वृत्ति है। इस मे उन बेचारों का क्या दोष ? हिंसा
करें तो जीवित कैसे रहे ? लेकिन इस समरांगण का रहस्य उन
समझ मे शायद ही आये। और यदि रामायण कालीन दृश्य उन
सम्मुख आये, तब उन का आश्चर्य और अधिक होगा। जब
देखेगे कि कुछ सदाचारी ऋषि नगर-निवासियों का परित्याग कर
जनहीन निर्जन प्रान्तरों मे ईश्वर की उपासना मे दत्तचित्त है अ
निरर्थक कुछ दुष्ट प्राणी उन की साधना मे विघ्न पहुँचा रहे
यद्यपि इस विघ्न से उनका कोई लाभ नही, तब वे व
सोचेगे,—इस ग्रह के सम्बन्ध मे कैसी कल्पनाएँ करेगे ? उदर-पू
के लिए विवश हो कर अन्य जन्तुओ की हत्या करना उन के लि
इतना आश्चर्योत्पादक नहीं होगा, जितना कि इस प्रकार निरर्थ
ही एक प्रकार के प्राणियों के द्वारा अन्य प्रकार के साधु, सु
प्राणियों को कष्ट दिया जाना।

यदि कहीं द्रौपदी के चीर-हरण का दृश्य उन की आँखों
सामने आ गया तो फिर पूछना ही क्या है ? भवन मे तर
तरह के पुरुष बैठे हुए है और एक नारी को एक व्यक्ति नि
हो कर नग्न करने का प्रयास कर रहा है। सशक्त और दु
व्यक्तियों के द्वारा होने वाले नारी-हरण भी उन के आश्चर्य
विवर्धित ही करेगे।

मान लीजिये आप के कुछ साथी और निकटवर्त्ती ग्रहों मे
गये है और उन्हे २००० वर्ष पहले का दृश्य दिखलायी दे र
है। सारे ग्रह पर दृग्पात करते-करते एकाएक उन की दृष्टि ए

स्थान पर रुक जाती है। वे देखते हैं, एक मनुष्य को कई सबल आदमी एकान्त स्थान मे क्रॉस पर टाँग रहे हैं और उस के हाथों और पैरों मे कीलें ठोंक रहे हैं। इस निर्दय कृत्य को देख कर शायद उन की रोमावली सिहर उठे; फिर भी वे उत्सुकता के कारण उस दृश्य को देखते ही रहेंगे। उन्हे कम से कम इस बात का तो पता लग ही जायगा कि यह व्यक्ति इस ग्रह के अधि-वासियो मे सत्य, अहिंसा और सद्भावना का प्रचार करता फिरता था। घृणा के स्थान पर लोगो को वह प्रेम प्रदान करता था; क्रोध के स्थान पर दया और क्षमा। फिर ऐसे सदाचारी व्यक्ति को उन लोगों ने इस प्रकार का दानवी कष्ट क्यों दिया, यह उन की समझ मे शायद ही आये। इस दृश्य के अतिरिक्त अन्य अनेकानेक दृश्य भी उन्हे आश्चर्य-चकित करेंगे। तरह-तरह की लड़ाइयाँ उन के देखने मे आयेंगी। प्रेम भी उन के देखने मे आयेगा, लेकिन वैचित्र्य से पूर्ण। वे देखेंगे कि अभी-अभी तो एक व्यक्ति एक नवयुवती के पीछे सर्वस्व निवेदित कर रहा था,—उस के लिए प्राण-परित्याग करने को भी समुद्यत हो गया था,—जीवन-पथ मे उस के अतिरिक्त किसी को भी अपना सहचर नहीं समझता था और अभी-अभी उस का खून करने को समुद्यत हो गया है और इस विचित्र भाव-परिवर्त्तन का एक मात्र कारण यही है कि वह नवयुवती एक दूसरे नवयुवक के साथ स्नेहपूर्ण वार्त्तालाप करती हुई उस को दिखलायी दे जाती है।....और भी सहस्रों विचित्रताएँ वे देखेंगे, जिन का उल्लेख इस पुस्तक मे नहीं किया जा सकता।

आप के जो साथी और निकट आ गये होंगे, वे और भी विचित्रताएँ देखेंगे। एक व्यक्ति अपने को पैगम्बर घोषित कर के कुछ व्यक्तियों को अपना अनुगत बना लेता है और उन्हे अपने सिद्धान्तों के प्रचार की सलाह देता है। सिद्धान्तों के प्रचार की जिस प्रणाली का उस के अनुयायी अवलम्बन करते हैं, देख कर उन्हें दाँतों तले उँगली दबा लेनी पड़ेगी। वे तलवार ले कर निकलते है और अन्य धर्मावलम्बियों के उपासना स्थानोंपर आक्रमण करना आरम्भ करते है; उन की हत्याएँ करना आरम्भ करते है। जो लोग उन के पैगम्बर के द्वारा प्रचारित धर्म का अवलम्बन कर लेते है, उन्हे वे अपने दल मे सम्मिलित करके फिर आगे कदम बढ़ाते है।....वे देखेंगे कि एक युवती अपने जीवन की समस्त नारी-सुलभ अनुभूतियों की हत्या करके यौवन की पाटल-कोमल प्रयण-कल्पनाओं से सम्बन्ध विच्छिन्न कर के अपने देश-निवासियों की समुन्नति के लिए—उन्हे बन्धन-विमुक्त करने के लिए सैन्य-सचालन के-से कठिन कार्य के लिए समुद्यत होती है और अन्त मे जब वह पकड़ी जाती है तो उसे पिशाचिनी समझ कर लोग जीविता-वस्था मे ही अग्निकुण्ड मे निक्षिप्त कर देते है। सत्यान्वेषी ब्रूनोका जिन्दा जलाया जाना उन के प्राणों मे जितना आश्चर्य उद्दीपित करेगा, उस से कहीं अधिक घृणा का जागरण।

इसी प्रकार की अनेकानेक विचित्रतापूर्ण दृश्यावली उन के नेत्रों के सामने आयेगी और वे कभी घृणा से और कभी आश्चर्य से अभिभूत होते रहेगे। मै समझता हूँ, आप के साथी यदि आप को अपने से अधिक प्रेम की दृष्टि से न देखते होंगे तो वे फिर और

आगे बढ़ने का साहस शायद ही करे। एक भय की भावना से उन का हृदय आक्रान्त हो जायगा और वे सीधे लौट चलेंगे।

इस ग्रह के सम्बन्ध मे उन की जो धारणाएँ होंगी, उन पर भी हम अपनी धारणाओं को आधारित नहीं करेंगे, क्योंकि हमारे सामने सारा का सारा मानव इतिवृत्त है और वर्त्तमान शताब्दी का तो अतिशय स्पष्ट चित्र विद्यमान है। अन्य युगों की ओर दृग्पात न करके केवल इसी पर विचार किया जाय—यदि केवल इसी को अच्छी तरह देखा जाय तो इस दुनिया का वास्तविक रूप निर्धारित करने मे सहायता मिल सकती है।

कितना असौंदर्य—कितनी नारकीय कुत्सा वर्त्तमान युग का दामन सम्हाले हुए है! क्या धर्म, क्या दर्शन, क्या राजनीति, क्या साहित्य, सर्वत्र घृणित कार्यों की प्रधानता है।

हमारा वर्त्तमान वासस्थल अत्यधिक असुन्दर है, इस मे कोई सन्देह नहीं। इस की असौन्दर्य वृद्धि में इस के सर्वोत्कृष्ट प्राणियों का सब से अधिक महत्वपूर्ण हाथ है।

क्या इस विराट विश्व के अन्य सौरमण्डलों के ग्रह भी इसी प्रकार के है! क्या वहाँ के निवासियों की जीवनचर्या भी ऐसी ही है? क्या वे भी इसी तरह अविवेकितापूर्ण एवं हिंसापूर्ण कार्यों मे निशिवासर व्यस्त रहते है? क्या वहाँ भी इसी प्रकार के पागलपन से भरे हुए दृश्य इस ग्रहके जानेवाले यात्री को दिखलायी देंगे?

यह एक ऐसा प्रश्न है जिस का उत्तर निश्चयपूर्वक नहीं दिया जा सकता। जब तक इस ग्रह का कोई निवासी स्वयं उन ग्रहों

तक जा कर वहां की दृश्यावली देख कर नही लौटता है, तब तक निश्चयपूर्वक कुछ कहना इस ग्रह के विचारक-समाज में अपने को हास्यास्पद बनाना है। किन्तु जिस प्रकार भौतिक विज्ञान-पथ पर चलते हुए भी हमे बार-बार अनुमानों की शरण लेनी पड़ती है, ——तथ्य सर्वत्र हमारा साथ नही देता, उसी प्रकार यहाँ भी हमें अनुमानों पर ही अपने निष्कर्षो को आधारित करना पड़ेगा।

और अनुमान इस के अतिरिक्त और किया ही क्या जा सकता है कि सारा का सारा विश्व इतनी विराट घृणा और असुन्दरता का——इतने प्राणपीड़क पागलपन का पोषण अपने मे नहीं कर सकता! विश्व के सारे के सारे ग्रहो की यदि हम इस ग्रह की-सी जीवनचर्या मान ले तो कल्पना के प्राण विश्व की वीभत्सता और भयानकता पर सिहर उठते हैं!........

हमे विवश हो कर यही मानना पड़ता है कि इस प्रकार के ग्रहों की संख्या बहुत कम है और इस प्रकार की असुन्दरता और उन्माद-धारा बहुत कम ग्रहों मे दृष्टिगत होती है। अन्य ग्रहों के आवास के सम्बन्ध मे वर्त्तमान वासस्थली मे कल्पना ही क्या की जा सकती है, किन्तु उन के सम्बन्ध मे सुन्दर से सुन्दर कल्पना ही करने का प्रयास हमे करना चाहिए। उन का स्वरूप-निर्धारण हम वर्त्तमान परिस्थिति मे नहीं कर सकते, लेकिन अपनी कल्पना-शक्ति को प्रखर करते हुए शायद हम वहाँ की श्री-सुषमा के आंशिक रूप की कल्पना करने मे कभी समर्थ हो जायँगे!

यह ग्रह पूर्णतया असुन्दर और घृणामय हो, ऐसी तो बात नहीं है। यहाँ भी कहीं-कही सुन्दरता की चन्द्र-किरणे दिखलायी

जाती है, भले ही उन की अवस्थिति कितनी ही अल्पस्थायिनी क्यों हो। प्रेम का सौरभ भी इस ग्रह मे यदा-कदा प्रवाहित होने ता है, भले ही कुछ क्षणों के बाद वह वासना या अन्य प्रकार दुर्गन्ध मे क्यों न परिणत हो जाय! इसी अल्पस्थायिनी सौन्दर्य-णों और प्रेम-परिमल के आधार पर हम अन्य ग्रहों के स्वरूप निर्धारण का प्रयास कर सकते है।

यह ग्रह अन्य ग्रहों की अपेक्षा अधिक असुन्दर एवं कुत्सित इसका एक प्रमाण हमे श्रीमती पाइपर की अर्धचेतनावस्था व्यवहारों मे मिलता है। जब-जब वे अपनी मोहावस्था से उप-त व्यक्तियों को देखती थी, ऐसा प्रतीत होता था मानो उन्हे जीवन मे प्रवेश करते हुए एक भीषण अनिच्छा-सी हो रही है र सभी उपस्थित व्यक्ति सर्वथा अपरिचित एवं विचित्र-से प्रतीत रहे है। सदैव उन्हे इसी बात की अनुभूति हुई है कि वे जिस से लौट कर इस मायालोक मे आ रही है, वह इस की अपेक्षा मक सुन्दर है, उज्वल है। एक बार तो उपस्थित व्यक्तियों को बोधन कर के वह कह भी उठी थीं—'I don't want you—I at the other place—you look funny......You are y, to say the least. I never! I would not look like ....Are you alive?' इसके बाद वह बोलती थीं—ere are others more alive than you are up there!!' ी-कभी उन्होंने अर्धचेतनावस्था मे इस बात पर भी स्पष्टतया श निक्षिप्त किया है कि इस ग्रह के अधिवासियों को नहीं ान पा रही है!—इस लोक के निवासी उन्हे विदेशियों की

तरह मालम हो रहे है। साथ ही असुन्दर, हेय और मृतकों के समान भी। सर्वथा प्राणहीन, उल्लासहीन, आनन्दहीन !

हमारा यह ग्रह अन्य ग्रहों की अपेक्षा असुन्दर, कुत्सित एवं हेय है, इस की अभिव्यति एक विचित्र विमोहनावस्था मे लिखी हुई अनेकानेक कविताओं में भी मिलती है ! न कविताओं को कवि के कोमल मस्तिष्क मे वासना-वलित विचारों की प्रांजल अभिव्यक्ति कह कर उपेक्षित करना नितान्त अविवेकपूर्ण है। हमें वैज्ञानिक साधना द्वारा कवि का ही पथ प्रशस्त करना है ! वही सत्य तक ले जा सकेगा—सौंदर्य की ज्योत्स्ना से मन-प्राण को मुग्ध करता हुआ। वैज्ञानिक का काम तो उस की पथ-बाधाओं को दूर करना है। वह कोमलकान्त है। इस कण्टक-संकुल पथ मे पहले पहल आया है; चल नहीं पाता। वैज्ञानिक को उसका पथ साफ करते हुए आगे-आगे चलना है। दार्शनिक को पथ के भीषण अन्धकार मे जलनेवाले एक मात्र दीपक को निर्वापित होने से बचाना है और वैज्ञानिक और कवि को आलोक दिखलाना है। लेकिन मंजिल तक कवि ही ले जायेगा। वैज्ञानिक और दार्शनिक दोनों ही अपनी असमर्थता जान रहे है और इस असमर्थता के ज्ञान से प्रपीड़ित न होकर यदि वे कवि की ओर आशान्वित दृष्टि से देखना आरम्भ करें और उस के पथ को निरन्तर प्रशस्त करते चले, तो शायद किसी दिन मंजिल मिल जायगी, क्योंकि वैज्ञानिक और दार्शनिक को केवल अपने ही बन्धनग्रस्त अस्तित्व के ऊपर कदम बढ़ाने है, लेकिन कवि के लिए लाखों प्रकाश-वर्षों की दूरी पर अवस्थित देशों से भी सहायता पहुँच रही है।

मै समझता हूँ इन समस्त विशेषताओं, बन्धनों और व्यामोहावस्थाओं को देखते हुए अपने इस ग्रह का स्वरूप-निर्धारण सरलतापूर्वक किया जा सकता है। क्यों नहीं हम अपने सौरमण्डल को इस विश्व के कारागार के रूप मे देखें? कारागार के समस्त लक्षण यहाँ दृष्टिगत होते है। ऊपर नीलाकाश है, नीचे धरित्री है। वायुयान की सहायता से कतिपय मीलों की दूरी से अधिक जाना असम्भव है। खैर, पृथ्वी के अन्दर जाने की तो आवश्यकता भी नहीं है, किन्तु पृथ्वी के बाहर—पृथ्वी के वातावरण से बाहर निकलने मे जो असमर्थता है, वह अवश्य हमारे बन्धनों को सबलता प्रदान करती है। बाहर से हमारा कोई सम्पर्क नहीं है—कारागार के बन्दियों की तरह। कभी-कभी कविता या गीत के रूप मे परिणत होनेवाले कुछ सन्देश अवश्य चले आते है, किन्तु इनका वही स्थान है जो कारागार के बन्दियों के पास आनेवाले संदेशों का होता है।

बड़ी विवशता है—बन्धन कुलिश-कठोर है। कैसे सत्य की स्वर्णिम किरणों से जीवन-क्षिति का शृंगार किया जाय!

हक्सले प्रभृति विद्वानों की तरह यह मानना कि हम ताश के खिलाड़ी है और इसीलिये हमारा लाभ अच्छी तरह से ताश खेलने मे ही है, न कि यह जानने मे कि ताश के पत्ते कहाँ बने, कैसे बने और क्यों बने; यह अस्वस्थ जीवन-सिद्धान्त है? हम यह सब नहीं जान सकते, अतएव जानने का प्रयास निरर्थक है। हमें मन लगा कर अपना खेल खेलना चाहिये और उस मे जीतने की चेष्टा करनी चाहिये। खेलने की कुशलता प्राप्त करने का प्रयास हमारे लिए अधिक हितकर है और वही हमे चाहिये भी; इस प्रकार की विचारधारा वरेण्य नहीं।

दुनिया मुझे रङ्गमंच के रूप मे भी नहीं दिखलायी देती। अनेकानेक विचारकों ने मनुष्यों को अभिनेता की उपमा दी है और जीवन को अभिनय की। उनका कहना है कि हमे शान्तिपूर्वक अपना अभिनय पूर्ण करना चाहिये। व्यर्थ की गवेषणाओं से क्या लाभ ? हम लोगों का कोई अदृश्य संचालक है जिसकी इच्छा के अनुसार हमे अभिनय करना पड़ता है—करना पड़ेगा।

जरा-सी बारीकी के साथ विचार करने से इन दोनों दृष्टि-कोणों की निस्सारता सिद्ध हो जाती है। दोनों उपमाएं सर्वथा अनुपयुक्त है। ताश के खिलाड़ियों से मनुष्यो की उपमा कभी भी युक्तियुक्त नहीं मानी जा सकती। ताश के खिलाड़ी जानते है कि वे खेल रहे है, लेकिन मनुष्यों को इस की अनुभूति कहाँ हो पाती है ! कभी-कभी ऐसा भी होता है कि खेल मे तन्मय हो जाने के कारण खिलाड़ी यह भूल जाते है कि वे खेल खेल रहे है। शतरंज के खेलाड़ियों मे यह विस्मृति और यह तन्मयता देखने मे आती है। लेकिन जब उन की तन्मयता भंग होती है, तब वे इच्छा-नुसार इस खेल को बन्द करके दूसरा काम आरम्भ कर सकते है। लेकिन जिन दार्शनिकों को इसका ज्ञान हो जाता है कि वे एक खेल खेल रहे है और पूर्ण विश्वास भी हो जाता है तो क्या वे अपने इच्छानुसार इस खेल को छोड़ कर दूसरा कार्य आरम्भ कर सकते है ? वे यह भले ही समझ ले कि यह सब कुछ एक खेल है और कुछ नहीं, लेकिन जब बारह बजेंगे और पेट के अन्दर चूहों की उछल-कूद होने लगेगी, उस समय उन्हे भोजन करना ही पड़ेगा। भोजन करने के लिए उन्हें भोजन की व्यवस्था करनी ही पड़ेगी।

वे भले ही जीवन को तमाशा समझ ले, लेकिन जब कड़ाके की सर्दी पड़ेगी, उस समय उन्हे वस्त्रों का प्रबन्ध करना ही पड़ेगा। हो सकता है कि आप कहे कि इन कार्यों को भी वह एक खेल समझ कर ही करेगा। लेकिन फिर ये खेल रह कहां जाता है? खेल अपनी इच्छा से खेला जाता है। यहाँ अपनी इच्छा का प्रश्न कहाँ? जीवन तो विवशताओं और नियम-बन्धनों से भरा पड़ा है।

इसके अतिरिक्त ताश के पत्तो के सम्बन्ध मे खिलाड़ी चाहे जाने या न जाने, लेकिन कम से कम वह अपने खेल को तो समझ ले कि वह क्या खेल रहा है और क्यों खेल रहा है? क्या खेल रहा है, यह जाने बिना खेल शायद ही अच्छा हो। इस 'क्या' को जानने के लिए मानव को और भी बहुत-सी चीजो को जानने का प्रयास करना पड़ता है, तभी वह इस 'क्या' को समझ सकता है। अतएव यदि कोई व्यक्ति अन्य व्यक्तियो की तरह चुपचाप जीवन-पथ पर चलने के बदले अपने पथ को समझ लेने का प्रयास करता है, तो उसके प्रयास को निरर्थक कहना अपनी बुद्धि की निरर्थकता का परिचय देना है; बल्कि वास्तव मे उस का प्रयास मानव-जाति के निन्यानबे प्रतिशत प्रयासो से अधिक महत्वपूर्ण है।

रङ्गमंच की उपमा भी इस ग्रह के लिए सर्वथा अनुपयुक्त-सी प्रतीत होती है। अभिनेताओ को आत्म-विस्मृति तभी होती है, जब अभिनय मे उनका मन लग जता है। पूर्ण तन्मयता के अभाव मे अभिनेता आत्म-विस्मरण नही कर सकता। पूर्ण तन्मयता भी समस्त अभिनेताओं को नही हो सकती। कतिपय प्रधान अभिनेता आत्म-विस्मृत हो पाते है, लेकिन इस संसार मे तो

करीब-करीब सभी आत्म-विस्मृत दीख पड़ते है—कतिपय इने-गिने व्यक्तियों को छोड़ कर। अभिनय से मन के उचटते ही आत्म-विस्मृति प्रधान अभिनेताओं की भी नष्ट हो जाती है। लेकिन क्या इस संसार के रङ्गमंच पर ऐसा हो पाता है? जीवन मे मन के न लगने पर भी तो आत्मबोध नहीं हो पाता। इसके अतिरिक्त अभिनेतागण दर्शकों को अच्छी तरह देख सकते हैं। लेकिन इस रंगमंच से विश्व के अन्य दर्शकों का चिह्न तक नहीं दिखलायी देता।

कारागार के अतिरिक्त अन्य कोई भी उपमा युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होती। कारागार के कौन-से लक्षण इस ग्रह मे नहीं दिखलाई देते! ऊपर नीला आकाश है, नीचे धरती! उठ कर जाइये, कहाॅ जाते है! वायुयानों का निर्माण मानवों ने गौरवोत्फुल्ल हो कर किया, किन्तु कुछ मील के बाद वायुयानों का उड़ना असम्भव-सा है। इसी ग्रह के वातावरण मे उन्हे मॅडराना पड़ता है। इससे परे वे नहीं जा सकते। बन्धनों की भरमार है।

बचपन मे एक कहानी पढ़ी थी। एक राजकुमार था। वह अपने राज्य के बाहर निकला। अपने सहचरों के साथ नाना देशों का भ्रमण करता हुआ वह एक विचित्र देश में पहुँचा। वहाॅ पहुँचते ही वह और उसके साथी सब कुछ भूल गये। कहाँ से आये थे, कहाॅ के रहने वाले थे और कहाॅ जाना था। यहाँ तक कि उन्हें यह भी याद न रहा कि वे स्वयं कौन है। वहाँ की परियों ने उन्हें बन्दी बना लिया और उन से अपना मनो-विनोद करने लगीं।

यदि इस ग्रह को उस जादू के देश की उपमा दी जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

हम नाशवान नहीं है, अनश्वर है, और इस भौतिक शरीर के नाश से हमारा कुछ नहीं बिगड़ता। तीसरे अध्याय में इस पर यथा-साध्य प्रकाश डाला जा चुका है। अब यह जान लेने के बाद भी क्या हम अपनी विवशताओं और प्राणपीड़क बन्धनों से अभिज्ञ नहीं हो पाते! वर्त्तमान शरीर धारण करने के पहले हम अवश्य थे, तो फिर हम कहाँ थे, कैसे थे और क्यों यहाँ तक आये, इसका ज्ञान हमें क्यों नहीं है! इस ग्रह से हमारा सम्बन्ध नहीं के बराबर है, इसका समर्थन यहाँ की प्रत्येक घटना करती है। जिन्हे हम आप अपना समझ बैठे है, वर्त्तमान शरीर से विमुक्त होने के बाद वे हमारे लिए क्या रह जायँगे? इसलिये हमे यह मानना ही पड़ता है कि हमारा इस ग्रह से सम्बन्ध कोई नहीं है। न जाने किस अपराध के कारण—किस गुरुतर भीषण अपराध के कारण, हमे इस ग्रह-कारा मे बन्दी होना पड़ा है और यहाँ न जाने किस माया-वती का जादू हमे गतिहीन किये हुए है। न हमे पीछे की ओर लौटने देता है—न आगे कदम बढ़ाने देता है।

:o: :o: :o:

किन्तु इतना होते हुए भी यह ग्रह विश्व के अन्य ग्रहों से पूर्णतया वियुक्त नहीं है। इतनी पतित, इतनी कुत्सित और हेय जीवनधारा रखते हुए भी यह अपने आप को विश्व के अन्य ग्रहों से सर्वथा वियुक्त नहीं कर पाया है। अपने यानों द्वारा अन्य ग्रहों से सम्बन्ध-स्थापना का प्रयास कतिपय वैज्ञानिकों द्वारा

किया गया है, वह प्रशंसनीय है इसमे कोई सन्देह नहीं, किन्तु है सर्वथा निरर्थक ही। इन प्रणालियों द्वारा अन्य ग्रहों से सम्बन्ध-स्थापना का प्रयास असफलता मे ही पर्यवसित होगा, चाहे मानव-जाति इसकी आप्राण चेष्टा क्यों न करे! हाँ, ऐसा हो सकता है कि केवल इस सौरमण्डल की अल्पकालिक यात्रा वैज्ञानिक आविष्कारों द्वारा मनुष्य कर ले, किन्तु वर्त्तमान आविष्कारों की क्षमता को देखते हुए, तो यह कार्य अत्यधिक कठिन प्रतीत होता है।

विश्व के अन्य समुन्नत एवं सुन्दर ग्रहो से इस निर्वासन-ग्रह तक--इस काराग्रह (कारागृह) तक सन्देश आते है, और वे गायकों के गीतों मे, कवियों की कविताओं मे, चित्रकारों के चित्रों मे वैज्ञानिकों के महत्तम आविष्करणों मे अपनी अभिव्यक्ति करते है इस पर अन्यत्र प्रकाश डाला जा चुका है। कभी-कभी तो इस बात का सन्देह होने लगता है कि जिस आकाशवाणी के उल्लेख भारतीय पुराणों मे मिलते है, वे कहीं अन्तर्वाणी मे परिणत दूरागत सन्देशो के सम्बन्ध मे ही तो नहीं है?

जो हो, पूर्ण सम्बन्ध-विच्छेद न होते हुए भी इस ग्रह का विश्व के अन्य ग्रहों से सम्बन्ध-विच्छेद तो है ही। कारागृह का या निर्वासन-द्वीपों का भी तो पूर्ण सम्बन्ध-विच्छेद नहीं हो पाता। सन्देश प्रभृति वहाँ भी पहुँचते ही रहते है।

इसी ग्रह को जीवन-धारण करने के उपयुक्त समझनेवाले व्यक्ति किस भ्रम के पाश मे आबद्ध है, इसका संकेत दूसरे अध्याय मे हो चुका है। अपने आवास-स्थल को बलपूर्वक महत्ता एवं गौरव प्रदान करने के ये प्रयास उतने ही हास्यास्पद है, जितने उन धार्मिक

नेताओं के, जो यह कहा करते थे कि खुदा ने पहले जमीन बनायी फिर पानी बनाया, फिर आग बनायी और फिर अन्त मे आदमी।

सौभाग्यवश वर्त्तमान युग के अनेकानेक चिन्तनशील विद्वानो के मस्तिष्क मे इस ग्रह की अपेक्षा कहीं अधिक सुन्दर, अधिक समुन्नत और ज्योत्स्नामय ग्रहों के अस्तित्व की सम्भावनाओ के विचार उत्पन्न होने लगे है। अपने इस विचित्र, चीत्कारपूरित एवं क्लेशाकीर्ण तृष्णा मरुस्थली को ही इस विश्व का सर्वोत्कृष्ट ग्रह विघोषित करने की अहम्मन्यता का प्रदर्शन अब कम हो रहा है।

हमारा यह ग्रह अन्य ग्रहों से सर्वथा वियुक्त है, इसमे कोई सन्देह नहीं। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कारागृह होता है या निर्वासन के द्वीप होते है। फिर भी कारागृही हो या निर्वासन-द्वीपों मे बन्दी, वे अन्य व्यक्तियो से सर्वथा असम्बद्ध भी नहीं रह पाते। बन्दियों तक समाचार प्रभृति पहुँच सकते है, यद्यपि अतिशय अल्प मात्रा मे। उसी प्रकार इस ग्रह के अधिवासियों के पास भी अन्य लोकों से संकेत प्रभृति आया करते है। बाह्य जगत् की विभिन्न वस्तुओं के सम्बन्ध मे थोड़ी अभिज्ञता प्राप्त करते हुए भी मानव-जाति के विज्ञ सदस्यों ने अपने मस्तिष्क रूपी यन्त्र को समझने की चेष्टा कम की है। इधर जो प्रयास हो रहे है, उनका आधार ही गलत है, अतएव वे प्रयास अन्ततः निरर्थकता मे ही परिणत हो जायेगे।

विचार एक स्थान से दूसरे स्थान तक किस प्रकार पहुँचाये जा सकते है, इस सम्बन्ध मे प्रकाश डालना मेरा अभीष्ट नहीं और न मेरी इस पुस्तक का यह प्रतिपाद्य विषय ही है। लेकिन

विचार एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाये जा सकते है वि नहीं और यदि पहुँचाये गये है, तो उनके क्या प्रमाण है, इस सम्बन्ध मे एक-दो प्रयोग तीसरे अध्याय में लिख चुका हूँ।

किस भी भौतिक साधना के अभाव मे विचार अभीष्ट स्थान तक पहुँचाये जा सकते है। आलिवर लॉज, प्रोफेसर वेरेट प्रभृति ने इस सम्बन्ध मे जो प्रयोग किये है, वे इसकी सत्यता पर पर्याप्त प्रकाश डालते है। इन व्यक्तियों की योग्यता के सम्बन्ध मे किसी प्रकार का भी सन्देह वैज्ञानिक जनता को नहीं हो सकता। सर आलिवर लॉज तो उन इने-गिने वैज्ञानिकों मे है, जिन पर वैज्ञानिक जगत को नाज हो सकता है। इन लोगों को अपनी चातुरी द्वारा भ्रम में डालना औरों के लिए असंभव था और इनका प्रयोग एक या दो बार तो हुआ नहीं था। इन लोगों ने और इनके अन्य साथियों ने वर्षो तक इस सम्बन्ध म गवेषणाएं कीं—पूर्ण सांशयिकता के साथ इसकी परीक्षा की और अन्त में उन्हें विश्वास करना पड़ा कि विचार किसी भी भौतिक साधना के अभाव मे एक स्थान से दूसरे अभीष्ट स्थान तक पहुंचाये जा सकते है।

विज्ञान के वर्त्तमान रूप के पीछे जो इतिहास है, उसका आधार धर्म-विद्रोह से भी अनुप्राणित है। इसीलिये आज भी धर्म से समर्थित बातों की ओर निसर्गतः वैज्ञानिकों का ध्यान आकृष्ट नहीं हो पाता। मृत्यु के उपरान्त आत्मा के अस्तित्व का समर्थन धर्म ने विभिन्न रूपों में निरन्तर किया है, अस्पष्टतः इसीलिये आधुनिक युग में भी विज्ञानवेत्तागण इन बातों को अपनी गवेषणा का विषय नहीं बन

पाते। सर डबल्यू क्रूक्स ने भौतिक विज्ञान में जो आश्चर्यजनक आविष्करण किये, उन्हें सारे वैज्ञानिक जगत् ने सम्मानपूर्वक स्वीकृत किया, लेकिन आत्मिक विज्ञान के सम्बन्ध में उन्होंने जो महत्वपूर्ण गवेषणाएँ कीं, उन पर विज्ञानवेत्ताओं ने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। इसे मानव-जाति का दुर्भाग्य ही समझना चाहिये। आत्मिक विज्ञान की न्यूनता के जो कारण हैं, उनमें प्रमुख यही है कि कुछ व्यक्ति तो इसे प्रकृति से परे की चीज समझते हैं, अतएव उन्हें इस सम्बन्ध की गवेषणाएँ नितान्त निरर्थक प्रतीत होती हैं और कुछ व्यक्ति इसे अबौद्धिकतापूर्ण विश्वासों पर आधारित समझ कर इसकी उपेक्षा करते हैं। दूसरे प्रकार के व्यक्तियों के सम्बन्ध में लिखना निरर्थक है। हाँ, पहले प्रकार के व्यक्तियों को मैं यही कहूँगा कि उनका कथन पूर्णतः सत्य नहीं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आत्मिक विज्ञान का अध्ययन भौतिक विज्ञान की तरह नहीं किया जा सकता, लेकिन इसे सर्वथा प्रकृति से ऊपर की चीज समझ कर इसे नितान्त दुर्ग्राह्य, सर्वथा बोधगम्य समझना भी युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता। अज्ञान चमत्कारों, रहस्यों एवं अप्राकृतिक घटनाओं का समुद्भावक है। आज से दो शताब्दी पहले सिनेमा, रेडियो, टेलीफोन प्रभृति अप्राकृतिक एवं रहस्यमय समझे जाते थे। किन्तु आज इन्हें चमत्कारपूर्ण समझने वाले व्यक्ति उतने ही मिलेंगे, जितने कि आइंस्टाइन के सापेक्षवाद को समझने वाले मिलते हैं। आज से कुछ शताब्दी पहले यदि कोई यह कहता कि अमेरिका में एक आदमी गीत गायेगा और उसी समय उसे भारत के एक नगर में बैठकर एक आदमी सुन सकेगा, तो उसे पागल के अति-

रिक्त और कुछ नहीं समझा जाता। प्रत्येक नवीन आविष्कार-प्रयासियों को इस उपाधि से विभूषित होना पड़ा है। और तो और, स्टीफेसन को स्टीम इंजिन के निर्माण के समय इसी प्रकार के विशेषणों से आदृत होना पड़ा था। आत्मिक विज्ञान के अन्वेषकों ने अब तक इस क्षेत्र मे जो काम किया है, उसे देखते हुए तो अब मानव-जाति को शायद ही उन्हें पागल कहने का साहस हो!

आत्मा के अस्तित्व को तो दुनिया के अधिकांश धर्मोद्भावकों ने माना है, किन्तु उसके अमरत्व को सब नहीं मान सके हैं। संसार की प्रत्येक वस्तु को मरणधर्मा देखते हुए अमरत्व उनके लिए एक स्वप्न-सा हो गया है। उनकी बुद्धि अमरत्व की स्पष्ट कल्पना मे अक्षम हो गयी है। लेकिन जिन महामहिम व्यक्तियों ने इस क्षेत्र मे अपनी साधना की है—इस दृश्यमान संसार के परे जो अदृश्य संसार है, उसके परिज्ञान के लिए यथेष्ट प्रयास किया है, वे जानते हैं कि मृत्यु नाम की कोई चीज नहीं है। परिधान की जीर्णता के कारण नूतन परिधान का धारण ही मृत्यु का कारण है। यह अभ्युद्गार पूर्णतः सत्य नहीं। जगत्गुरु श्रीकृष्ण ने भी इसकी उपमा मात्र दी है—अर्जुन को समझाने के लिए। जो हो, आत्मिक विज्ञान की गवेषणाएँ आत्मा के अमरत्व का समर्थन करती हैं। Human personality के विद्वान लेखक ने ठीक लिखा है कि Immortality, instead of being a beautiful dream, is the one, the only reality, the strong golden thread on which all the illusions of all the times are strung. जगद्गुरु श्रीकृष्ण के शब्दोंमें भी—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं
भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।

श्रीमती पाइपर और श्रीमती विरैल के वर्षों के अनुभवों ने इस बात को कुछ अंशों में स्पष्ट कर दिया है कि सन्देश-प्रेषक आत्मा अपने को जिस मृत मर्त्यलोक-निवासी के रूप मे परिचित करती है उससे वह पूर्णतया मिलती है । सर आलिवर लाज ने इस निर्णय को स्पष्टतः एवं सम्पूर्णतः स्वीकार किया है ।

ज्ञात और अज्ञात जगत मे सम्बन्ध-स्थापना का प्रयास हो रहा है, किन्तु इसका श्रेय मर्त्यलोक-निवासियों को नहीं है । उन्हे यह सब निरर्थक एवं अविश्वसनीय-सा प्रतीत होता है । दृष्ट संसार के अतिरिक्त अन्य संसारों की स्थिति की विचारधारा उन्हे उपहासास्पद मालूम होती है । लेकिन प्रगति-पथगामियों ने अपने प्रतिरोधियों की कब परवाह की है ? और यदि उन्होंने परवाह की होती तो आज अज्ञान के अन्धकार को चीरती हुई ज्ञान की ये किरणे कहाँ से आ पातीं ? एक नगण्य एवं दुःख भरे अस्तित्व का भार ढोने वाले मानवो को उस पार का सन्देश कहाँ से मिल पाता ?

यहाँ उस पार के सन्देश से मेरा तात्पर्य उन सन्देशों से है जिनकी प्राप्ति विज्ञान-संभव प्रणालियों से होती है, अन्यथा उस पार के सन्देश इस ग्रह तक नानाविध रूपों मे आते ही रहते है ।

—::०::—

(५)

सत्य का पूर्ण ज्ञान तो इस ग्रह पर कदापि हो ही नहीं सकता। लेकिन सत्य का पूर्ण ज्ञान जिस स्थान पर पहुँचने से हो सकता है, उस तक पहुँचने की राह का ज्ञान इस ग्रह में अवश्य हो सकता है और 'ऋतेज्ञानान्न मुक्ति' की उक्ति में ज्ञान शब्द की यदि कोई सार्थकता है तो यही।

निराश होकर उसीको ठीक मानते हुए जीवन-पथ पर चलने के पक्षपाती विचारकों की भी कमी नहीं है, जो सुखकर प्रतीत होता हो। यह अभ्युक्ति उपहासास्पद नहीं। न जानते हुए भी अनकानेक विचारकों ने इसी पथ का अनुसरण किया है। लेकिन यह बौद्धिक शक्ति का अभाव तो है ही, साथ ही साथ जीवन-यात्रियों का दुर्भाग्य है।

विज्ञान जिस स्थान पर अभी पहुँचा हुआ है, यदि वहाँ वह कविता की चन्द्र-ज्योत्स्ना को भी आमंत्रित कर ले, तो मैं समझता हूँ, वह मार्ग दिखलायी दे जायगा जिसका अन्तिम छोर इस माया-

लोक का अन्तिम छोर है। मैंने इसी का प्रयास किया है, और मुझ विश्वास है कि मुझे जो राह दिखलायी दे रही है, वह गलत नहीं है।

हो सकता है, मार्ग अनेक हों और उन्हे होना भी चाहिये, क्योंकि एक ही पथ पर चलने की सामर्थ्य सब मे नहीं होती और न सब का गन्तव्य एक है, किन्तु इस ग्रह का स्वरूप एक ही हो सकता है, अनेक नहीं, और इस पुस्तक में मै उसी का चित्रण कर रहा हूँ, जो मुझे सत्य के सर्वाधिक समीप मालूम हो रहा है, न कि मुक्ति-मार्ग का।

केवल तथ्यों की सहायता से विश्व को समझना नितान्त कठिन है। असम्भव ही समझिये। ज्ञानेन्द्रियाँ—हमारा यह पंच तत्वों से निर्मित शरीर इस मर्त्यलोक की सीमाओ मे भले ही हमारा पथ प्रशस्त करे, किन्तु शेष विश्व से यह हमे परे रखता है, जैसे यह कोई पिञ्जर हो--अस्थि-मांस-रक्त-चर्म प्रभृति से विनिर्मित। कारागार मे जिस प्रकार कैदियों को सेल मे बन्दी कर दिया जाता है या विहग-कुमारों को जिस प्रकार पिंजड़ों मे, उसी प्रकार इस ग्रह के मायामय वातावरण ने हमें भी बन्दी बना दिया गया है--हमारे शरीर मे।

इस भावना का प्रकाश नवीन नहीं। अन्यत्र भी यह अभि-व्यक्ति पा चुकी है, यद्यपि सर्वथा स्पष्ट रूप में नहीं। साधारण गीतों में जो कि सर्वथा साधारण व्यक्तियों के द्वारा निर्मित होते जान पड़ते है, इस सत्य की किरणें बिखरी हुई मिलती है। मनो-विज्ञान की, वर्तमान सर्वोत्कृष्ट सीमा पर पहुँचे हुए मनोविज्ञान

वेत्ता इसका जो उत्तर दें, मै इन गीतों के निर्माण का श्रेय इस ग्रह की अन्तिम सीमा पर स्थित शक्तियों को देता हूँ। हो सकता है, विचार-प्रेषण के सम्बन्ध मे इतना पढ़ चुकने के बाद भी कई जड़-वादी मेरे इस कथन को कवि की कोमल कल्पना के अतिरिक्त और कोई महत्व देने को तैयार न हों, लेकिन इसमें दोष उनका नहीं है—उनके मानसिक संस्कारों का है जो ज्ञानेन्द्रियानुभूत पदार्थों के अतिरिक्त अन्य अस्तित्वों को सत्य समझने ही नहीं देते !

कवि के पास जो एक विशिष्ट शक्ति होती है, वह उसे ज्ञाने-न्द्रियानुभूत संसार के परे का दृश्य दिखलाने मे समर्थ हो पाती है। कवि-शब्द को समझने में पाठक गलती न करें। इस मायालोक में प्रेम शब्द का जितना दुरुपयोग हुआ है, करीब-करीब उतना ही 'कवि' शब्द का भी। ज्ञानेन्द्रियों से बहुत ही ऊपर उठी हुई एक चिरन्तन, अविनाशी शक्ति से, जो इस माया की कुज्झटिका को भी विदीर्ण करने की सामर्थ्य रखती है, युक्त जीवन-यात्रियों के नाम से साथ ही कवि शब्द शोभा देता है। हो सकता है, मानव-जाति शब्द-भंडार की न्यूनता के कारण ही इस एक शब्द को नाना अर्थों में प्रयुक्त करने को विवश हुई हो। भावना-भंडार की न्यूनता इसका हेतु हो सकती है। जो हो, मैंने अपनी पुस्तकों मे कवि शब्द का प्रयोग सर्वत्र इसी अर्थ में किया है। अनेकानेक कवियों की कविता उन कवियों के मस्तिष्क से नहीं निर्मित हुई है, बल्कि उस पार के किसी निवासी के द्वारा उस विशिष्ट व्यक्ति के मस्तिष्क को माध्यम बनाकर बहिर्गत हुई है। अनेकानेक पुस्तकों के निर्माण में,—अनेकानेक कला-कृतियों के निर्माण में उस पार के निवासियों

का हाथ है। इस पार के निवासियों ने केवल माध्यम का काम किया है, यद्यपि उन्हें स्वयं मालूम नहीं हो पाता कि वे माध्यम बने हुए हैं। अनेकानेक गीतों के निर्माण का श्रेय भी मैं उस पार के निवासियों को ही देता हूँ—इस पार के निवासियों को नहीं।

मैं जानता हूँ, इस ग्रह के बहुत कम अधिवासी ऐसे होंगे, जो इन विचारों से सहमत हो सकेंगे। असहमति का कोई बलिष्ट प्रमाण दे सकने में अपने को असमर्थ पाते हुए भी वे असहमत ही रहेंगे, क्योंकि जग-जीवन के वर्त्तमान विचित्र एवं निस्सार क्रम से ऐसे विचारों का सामञ्जस्य संघटित नहीं हो पाता।

विज्ञानवेत्ताओं को अपनी साधना के पथ में इनसे अपने को वियुक्त नहीं रखना होगा। उन्होंने अभी तक ऐसा ही किया है और इसीलिए वे सत्य से उतनी ही दूरी पर हैं, जितनी दूरी पर कविता से।

ज्ञानेन्द्रियों की सहायता से तो इस विश्व की वास्तविकता का ज्ञान संभव है। मौरिस मेटरलिंक के शब्दों में—It is impossible for us, therefore, to appreciate in any degree whatsoever, in the smallest conceivable respect, the present state of the universe, and to say, as long as we are men, whether it follows a straight line or describes an immense circle, whether it is growing wiser or madder, whether it is advancing towards the eternity which has no end or retracing its steps towards that which has no beginning.

आकाश-पथ में पूर्णिमा-निशीथ में ज्योत्स्ना का प्रसार करने-वाला राकेश अपनी स्वर्णिम सुषमा से निरन्तर कवियों के हृदय-देश का शृंगार करता आया है । इसकी आह्लादोत्पादिका कौमुदी कलाकारों के प्राणों को युगयुगान्त से प्रफुल्लित करती आयी है। सचमुच जब वह अन्तरिक्ष पथ में आता है तो एक विस्मयकर सौन्दर्य चारो ओर छा जाता है। तारकों के दीप जला कर अपने जीवन-साथी के पथ का अन्धकार दूर करने का प्रयास कर-करके जब कोई शिरीष-सुकुमारी परिश्रान्त हो जाती है और उसके कपोलों से पश्चिमी पर्वत-शिखर पर अश्रु-विन्दु ढुलक पड़ते हैं; उस समय न जाने किस स्वर्गिक सुषमा का अपने पारिपार्श्विक वातावरण में विस्तार करता हुआ शशिकुमार चला जाता है और गिरि-नगर, ग्राम, नदी, नद सब के सब उसकी पावनी ज्योत्स्ना से धौत होकर रजनी के तिमिर में भी विकासोन्मुख शतदल की तरह खिल पड़ते हैं। दूर किसी निभृत विजन प्रान्त में बैठा हुआ कलाकार इस अभि-नव आलोक-धारा के आगमन को देख कर न जाने किस छाया-मायामय लोक की ओर उड़ जाता है और उसकी लेखनी से या उसकी तूलिका से सुषमामय गीतों की या प्राणपूरक चित्रों की सृष्टि होने लगती है ! प्रियतम को खोकर इस मायामय वातावरण में चीत्कार करने वाला कोई वियुक्त प्राणी भी हर्षोन्मत्त होकर अपलक उस नैश सौन्दर्य को निहारने लगता है और अपने बिछुड़े साथी की पथ-भ्रष्ट सुषमा का आभास उस निशीथ-ज्योत्स्ना में पाने लगता है !

चन्द्रमा की श्री-सुषमा का ग्रहण कलाकारों द्वारा पर्याप्त मात्रा में हुआ है, लेकिन दुर्भाग्यवश विज्ञानवेत्ताओं ने इसको सम-

झने में प्रमादवश कुछ भूले की हैं। वे इसे एक मृतग्रह के अतिरिक्त अन्य किसी भी रूप में देखने में असमर्थ हैं। कवि जब चन्द्रलोक से आने वाली सुषमा का गीत गाता हुआ उन्माद की सुरभित नीरज-चुम्बित बीचियों मे डूबने-उतराने लगता है, उस समय वैज्ञानिकों के होठों पर उपहासजनक मुसकुराहट हो जाती है और चन्द्रलोक के सम्बन्ध मे प्राप्त किये गये अपने ज्ञान के प्रति एक दाम्भिकता उनके नेत्रों में झलकने लगती है। कौमुदी-धौत निशा मे जब कोई अनवद्यांगी रूपमयी अप्सरा उनसे कहती है—'क्या आकाश का यह शशिकुमार तुम्हे कोई सन्देश नहीं कहता ? इस निर्जन गिरि प्रान्त मे निशीथ-नृत्य करने वाली इसकी ज्योत्स्ना तुम्हारे प्राण-प्रदेश को तनिक भी हिल्लोलित नहीं करती ? तब बड़े ही अभिमान के साथ वैज्ञानिक उत्तर देता है—It says nothing because it is nothing ! It is a dead planet without heart—a mere shell of extinct volcanoes, where fire once burned and its light is but the reflection of the sun on its barren surface !" इसमे कोई सन्देह नहीं कि चन्द्रमा में वातावरण नहीं है और इसीलिये वहाँ उस प्रकार के जीवन की अवस्थिति नहीं हो सकती जैसी कि हमारी इस पृथ्वी पर है, किन्तु वातावरण के अभाव के कारण ही जीवन की नितान्त अनुपस्थिति मान लेना बुद्धि-दौर्बल्यका सूचक मालूम होता है। जोर देकर नहीं कहा जा सकता कि चन्द्रमा मे जीवन है ही, किन्तु साथ ही यह भी नहीं कहा जा सकता कि वहाँ जीवन का ऐकान्तिक अभाव है। हमारे इस ग्रह पर भी ऐसे कीटाणु विद्यमान हैं जो वायु के

के अभाव में भी जीवित रहते हैं। सूक्ष्मवीक्षण यंत्र से ऐसे कीटाणुओं का पता लगाया जाता है। जब ऐसी बात है कि वातावरण के अभाव में भी जीवन का एक रूप रह सकता है, तब चन्द्रलोक को जीवन से पूर्णतया विरहित मानने का विज्ञानवेत्ताओं को क्या अधिकार है?

शरीर आत्मा का परिधान मात्र है। अतः आत्माओं के अधिवास के लिए वातावरण प्रभृति की कोई आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती। वे सर्वत्र रह सकती हैं। वातावरण-विहीन चन्द्रलोक भी उनका आवास हो सकता है और हिम-शीतल ग्रहों में भी।

:o: :o: :o:

मानव-जाति ने आजतक जो भी ज्ञान प्राप्त किया है, वह अपनी ही अनवरत एवं अक्लान्त साधना से, यह मानना एक अविवेकिताजन्य दंभ है। मानवी इतिवृत्त का सुगम्भीर अध्ययन करने के उपरान्त इस सिद्धान्त से सहमति प्रकट करना असम्भव-सा हो जाता है। मानवी ज्ञान के विकास-पथ को प्रशस्त करनेवाले तीन साधनों का अस्तित्व मान्य है। मानव-जाति के ज्ञान की प्रशस्ति एवं समुन्नति इन्हीं तीन प्रणालियों से हो पायी है। पहली प्रणाली के सम्बन्ध में तो किसी प्रकार के विरोध की आशा ही नहीं है। यह सर्वविदित है कि मानव-जाति के कतिपय सशक्त व्यक्तियों ने तरह-तरह की कठिनाइयों को सहते हुए और अतीतकालीन कठोर एवं मृदुल अनुभवों से शिक्षा ग्रहण करते हुए अपने ज्ञान को विवर्धित किया है; और उनके ज्ञान का दान स्वीकार करके मानव-जाति ने भी सामूहिक रूप से कुछ अंशों तक अपने

अज्ञान-तिमिर को दूर करने की चेष्टा की है। इसके अतिरिक्त दो अन्य प्रणालियाँ और भी हैं जिनकी सत्यता को बहुत कम लोग स्वीकार कर पायेंगे, क्योंकि मानव-जाति के इने-गिने शक्तिशाली मस्तिष्क भी अभी तक मानवी मस्तिष्क के सम्बन्ध मे कुछ भी नहीं जान पाये हैं। मनोविज्ञान के अध्येताओं ने जो ज्ञानार्जन एवं ज्ञान-वितरण किया है, वह मानवी मस्तिष्क की शक्तियों को देखते हुए सर्वथा नगण्य एवं महत्त्वहीन-सा प्रतीत होता है। जो हो, मैं इस ग्रह के वातावरण मे प्रतिपल छानेवाले विचार-कम्पन के प्रभाव को भी मानवी ज्ञान की समुन्नति का एक आवश्यक अंग मानता हूँ। मनुष्य के मस्तिष्क मे जितने भी विचार उत्पन्न होते है, वे वातावरण पर अपना प्रभाव डालते हैं। अस्पष्ट और अस्वस्थ एवं तेजस्विताहीन विचारों के कम्पन यों ही रह जाते हैं, जब कि स्पष्ट, सशक्त एवं सतेज विचारों के कम्पन इस ग्रह के वातावरण मे चारो ओर प्रसरित हो कर उपयुक्त मस्तिष्क को हिल्लोलित करते हैं। इस प्रकार मानवी मस्तिष्क केवल अपने ही आयासो से ज्ञानार्जन नहीं करता, अपितु अन्य साधकों के विचार-कम्पन से भी ज्ञान-वृद्धि में पर्यप्त सहायता मिलती है। तीसरी प्रणाली उन व्यक्तियों को और भी अद्भुत और अविश्वसनीय-सी प्रतीत होगी जो वैज्ञानिक साधना के क्षेत्र मे आरम्भ से ही अपने दृष्टिकोण को अत्यधिक संकुचित रखते आये है। अन्य ग्रहों के सम्बन्ध में विचार करना तो दूर रहा, अपने समाज या जाति तक ही अपने विचारों को प्रसारित करने में अपना गौरव समझते आये है। मै मानता हूँ कि इस पृथ्वी पर ज्ञान की जो सर्वोत्कृष्ट किरणें आयी है, वे दूरवर्ती ग्रहों से आयी

हैं और इस प्रकार हमारा यह रैन-बसेरा इतना तिमिराक्रान्त होते हुए भी विश्व के अन्य उत्कृष्ट ग्रहों से विच्छिन्न नहीं हो पाया है। अन्य ग्रहों से इस नगण्य ग्रह तक ज्ञान की किरणें यदा-कदा कैसे और क्यों आ पायी हैं, इस प्रश्न का निश्चयात्मक उत्तर नहीं दिया जा सकता। हो सकता है, विचारों की लहरें स्वयं उन सुदूरवर्ती ग्रहों से यहाँ तक आ पहुँची हों और यहाँ की तत्कालीन विचार-धारा में एक उत्क्रान्ति उत्पन्न कर दी हो। या यह भी हो सकता है कि अन्य उत्कृष्ट ग्रह के अधिवासियों ने इस ग्रह को अज्ञानान्धकार से निपूरित समझ कर दयार्द्र होते हुए अपने ज्ञान से इसको लाभान्वित करने का प्रयास किया हो। इसके अतिरिक्त क्या यह नहीं हो सकता कि समय-समय पर उत्कृष्ट ग्रहों से इस ग्रह पर प्राणी आते रहे हों और उन ग्रहों के अधिवासियों ने समय-समय पर अपनी विशिष्ट ज्ञान-किरणें प्रेरित की हों। सर्वाधिक संभावना इसी की प्रतीत होती है।

मानव इतिहास का जो ज्ञान इस समय-मानव-जाति को उपलब्ध है, उसे किसी अवस्था में भी पर्याप्त नहीं कहा जा सकता। वास्तव में वह केवल हमारे वर्त्तमान युग की शैशवावस्था, युवावस्था और वर्त्तमान वृद्धावस्थाका एक असुन्दर एवं घृणोत्पादक चित्र है। भग्नावशेषों के द्वारा हमें जिन लुप्त सभ्यताओं का आभास मिल रहा है, उन पर हमारा ऐतिहासिक ज्ञान सर्वथा अपर्याप्त प्रकाश निक्षिप्त करता है। ऐसी अवस्था में अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक यह निर्णय दे देना कि जिस प्रकार की साभ्यतिक समुन्नति बीसवीं शताब्दि ने देखी है, वह मानवी इतिवृत्त में सर्वोत्कृष्ट है, सर्वथा हास्यास्पद है। रामायण

और महाभारत के समान एवं उपनिषदों के समान पुस्तकों का निर्माण जिस युग में हुआ होगा, वे साधारण नहीं रहे होंगे। और यदि यह मान लिया जाय कि वे युग सर्वथा तुच्छ थे और वर्त्तमान युग के साभ्यतिक प्रकाश के सामने सर्वथा हतप्रभ भी, तो भी इससे कोई क्षति नहीं होती। बल्कि तब तो इस बात पर अधिक विश्वास करना पड़ता है कि अवश्य अन्य ग्रहों से आयी हुई ज्ञान किरणों से ही ऐसे-ऐसे उत्कृष्ट ग्रंथों की रचना हुई होगी, क्योंकि उस युग के मानवों में इतनी क्षमता कहाँ थी कि वे ऐसी पुस्तकें लिख सकते !

मौरिस मेंटरलिंक ने अपनी राय एक पुस्तक मे इस सम्बन्ध में अपने विचारों की अभिव्यक्ति करते हुए लिखा है—If such a communication took place, why only in prehistoric times, and why was it never repeated ? Time, on the signalling planet, may have different duration from ours, a different value. We move quickly. Our time has no absolute dimension; it follows our heart beats; and sixty or eighty of our centuries may quite possible be only a year or a day in another world. There is a chance, too, that our celestial instructor, having remained without an answer, ceased to concern himself with us; or that conditions became less favourable, owing to some change in the nature or density of the etheric waves that enwarp our planet. Or we may have lost the faculty of intercepting and understanding messages that our ancestors, endowed with something

that we have forfeited, could readily apprehend. Again, such messages may have been sent by a star, that has reached the supreme and culminating point of its existence and was on the eve of decline or catastrophe, that may even have dissolved into space. मौरिस मेटरलिंक की ये पंक्तियाँ वास्तव मे हृदयग्राहिणी है, लेकिन उन्होंने सुदूरवर्ती ग्रहों से इस ग्रह की सम्बन्ध-स्थापना का एवं विचारों के प्रेषण का जो स्वरूप निर्धारित किया है, वह भ्रान्त है और इसीलिये उन्हे अतीत-कालीन मानवी सभ्यताओं मे तो इनकी सम्भावना अशक्य नहीं प्रतीत होती, किन्तु वर्त्तमान युग मे इनका ऐकान्तिक अभाव दृष्टिगत होता है। वास्तविकता कुछ और ही मालूम होती है। विचार-प्रेषण का कार्य सुदूरवर्ती ग्रहों मे इस युग मे अन्य युगों की अपेक्षा अधिक मात्रा में हो रहा है और इसीलिये विगत दशाब्दियों मे ही इस ग्रह का स्वरूप इतना परिवर्तित हो गया है। टेलीफोन, रेडियो, ट्रेन, सिनेमा, वायुयान प्रभृति का समावेश विगत दशाब्दियों ने ही देखा है और अन्य दिशाओं मे भी एकाएक ही मानव-जाति ने इतनी आश्चर्यजनक उन्नति आरम्भ कर दी है। अन्यथा बारहवीं, तेरहवीं, चौदहवीं, पन्द्रहवीं, सोलहवीं, सत्रहवीं, शताब्दियाँ अपने सुदीर्घ समय में क्या कर सकी थीं! अन्य ग्रहों के विचारों के कम्पन अधिक अंशों मे इस बार आ रहे है और यह कहना कि हमारा ग्रह विश्व के अन्य ग्रहों से पूर्णतः वियुक्त है, सर्वथा भ्रान्ति पर आधारित है। दुःखालय होते हुए भी, अज्ञान और भ्रम का निकेतन होते हुए भी यह न जाने क्यों अन्य उत्कृष्ट सुदूरवर्ती ग्रहों का कृपा-

पात्र बना हुआ है !!......क्या उन उत्कृष्ट ग्रहों से कुछ व्यक्ति इस मायालोक मे आये हुए है और उन्हीं के लिए तो ये सन्देश नही आ रहे है ? यदि वास्तव मे ऐसी बात है तो वे अन्य-लोक-निवासी इस ग्रह पर क्या कर रहे है—उनसे इस ग्रह को क्या-क्या लाभ होने वाला है—मानवी सभ्यता के विकास-पथ मे उससे क्या सहायता प्राप्त होने वाली है ?.......और कहीं ऐसा तो नहीं हो गया कि वे अभागे अपने मार्ग की एवं अपने पूर्ववेश्म की विस्मृति कर बैठे हों और इस ग्रह के मायामय वातावरण मे सर्वहारा होकर अपने को इसी लोक का चिरंतन अधिवासी समझ रहे हों ?

तात्पर्य यह है कि हमारे ग्रह से अन्य ग्रहों का सम्बन्ध है और रहता आया है। भविष्य मे रहेगा या नहीं, यह निश्चय-पूर्वक तो नहीं कहा जा सकता, लेकिन अतीत और वर्त्तमान को देखते हुए कहा जा सकता है कि भविष्य के प्रति निराशाजनक दृष्टिकोण अनौचित्य पूर्ण होगा। यदि उत्कृष्ट ग्रहों से समागत व्यक्तियों के अन्धकारित जीवनमार्ग को आलोकित करने के लिए ही यदा-कदा ये किरणे आती हों, तब तो हो सकता है कि भविष्य मे कभी हमारे ग्रह का सम्बन्ध अन्य ग्रहों से विच्छिन्न हो जाय क्योंकि सदैव उत्कृष्ट ग्रहों से आवागमन यहाँ होता ही रहेगा, इसका क्या प्रमाण है ?......और इसके साथ ही यह प्रश्न भी समुत्थित होता है कि जब अब तक आवागमन होता रहा है, तो भविष्य मे वह क्यों बन्द हो जायगा ? क्या अन्य ग्रहों से आयी हुई आत्माएँ इस ग्रह की कुत्सित जीवनचर्या से और यहाँ के दुःखों, क्लेशों एवं

निदारुण यन्त्रणाओं से विश्व के अन्य उत्कृष्ट ग्रहों को अभिज्ञ करा देंगी और सारे के सारे विश्व में इस ग्रह के प्रति एक विचित्र विरक्ति का प्रसार हो जायगा ?........

विश्व के अन्य ग्रहों से इस ग्रह तक जो सन्देश आ पाते हैं, वे इतने अस्पष्ट क्यों हैं—अधिक स्पष्ट और उज्वल होकर वे क्यों नहीं आते, प्रभृति प्रश्न निराधार नहीं। किन्तु इनका उत्तर भी सरलतापूर्वक दिया जा सकता है। हमारे इस ग्रह से भी तो विज्ञान-वेत्ताओं ने अन्य ग्रहों से सम्बन्ध-स्थापन की पर्याप्त चेष्टाएँ की हैं, किन्तु क्या अभी तक किसी प्रकार की भी सफलता उन्हें मिल सकी है ? इस ग्रह के अन्य ग्रहों के बीच में जो बाधाएँ हैं, उनका दूर करना साधारण बात नहीं। भौतिक साधनों की सहायता से अन्य ग्रहों से सम्बन्ध-स्थापना का प्रयास तो नितान्त निरर्थक है। हो सकता है, कतिपय ऐसे भी दुर्भाग्यग्रस्त ग्रह हों जहाँ के रहने वाले इस ग्रह को अधिवासियों की ही तरह सम्बन्ध-स्थापना के प्रयासों में सलग्न हों। हमारे इस सौरमण्डल के ग्रहों में इसकी सम्भावना अधिक दीखती है।

—:o:—

(६)

विश्व महान् है। कोटि-कोटि सूर्य और ग्रह-उपग्रह अपने-अपने स्थानों पर परिभ्रमण कर रहे हैं। अपनी मायावती सत्ता को लिये हुए हमारा यह आवास-स्थल भी अपने सौरमण्डल में शोभित हो रहा है। इन वाक्यों को मिथ्या प्रमाणित करने की क्षमता किसी में भी नहीं है क्योंकि अनवरत साधना के उपरान्त मानव-जाति के शक्तिशाली मस्तिष्क ने इस सत्य को प्राप्त किया है।

साथ ही यह भी सिद्ध हो चुका है कि हम शरीर नहीं हैं, हम मरणशील नहीं हैं। मृत्यु हमारे इस भौतिक परिधान का विनाश करती है, हमारा नहीं। जन्म के पहले भी हम थे और मृत्यु के बाद भी हम रहेंगे।

ऐसी अवस्था में हमारे सामने अनेकानेक प्रश्न स्वभावतः उठ खड़े होते हैं जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। हम कौन हैं, कहाँ से इस मायालोक तक आ पहुँचे हैं जिससे अपने घर की राह खो कर इधर-उधर भटक रहे हैं? हमारा क्या मतलब

है ? वे कौन से उपाय हैं जिसके द्वारा हम अपना कल्याण-साधन कर सकेंगे ?

इस जीवन काल के पहले हम कहाँ थे, क्या थे, और कैसे थे, इसका परिज्ञान केवल विज्ञान या दर्शन द्वारा नहीं हो सकता। ये इसी ग्रह की चीजें हैं, ऐसी बात नहीं है; लेकिन माया के भीषण तिमिर को चीर कर पूर्वजीवन का ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता इनके एकाकी प्राणों में नहीं है। पूर्वजन्म के ज्ञान का स्वतः स्फुरण होता है। संसार के अनेकानेक भागों मे कवियों को इस सत्य की अनुभूति हुई है।

प्लोटीनस यूनान का सुप्रसिद्ध रहस्यवादी था। उसने लिखा है—इस लोक में आने से पहले हम अवश्य कहीं अन्यत्र थे और आज जिस रूप में हैं, उससे भिन्न थे। हमलोगों मे से कुछ तो देवता भी थे —जिनकी आत्माएँ सर्वथा पवित्र थीं और मस्तिष्क यहाँ के अस्तित्व से सर्वथा अपरिचित !'

हिन्दी में भी कतिपय कवियों के मस्तिष्क मे दूरागत ग्रहों से आये हुए विचार-कम्पन जहाँ-जहाँ कविता बनकर बहिर्गत हुए है, सर्वत्र इसी सत्य की परिपुष्टि हुई है। हो सकता है, उन कविताओं के लेखक स्वयं उस सत्य को अच्छी तरह नहीं समझ पायें हों। यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक कवि अपनी कविता का अर्थ पूर्णतया समझता हो। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने शायद कहीं लिखा भी है कि मै अपनी कुछ कविताओं को स्वयं नहीं समझ पाया हूँ, लिखने को मै उन्हें लिख गया।

फ्रेंच साहित्य की कविताओं में इस सत्य की झलक यत्र-तत्र, कहीं अस्पष्ट रूप से और कहीं स्पष्ट रूप से दिखलायी देती है। उन कविताओं मे सत्य ने प्रकाश पाया है। उनके समुद्भव के दो ही कारण हो सकते है। या तो कवियों की अविनाशी चेतना से, (जिसके एक अंश को मनोविज्ञानवेत्ता Subconcious mind कहते है) बहिर्गत हुई है या दूरागत विचार-कम्पन उनके मस्तिष्क से गृहित होकर प्रकटित हुए है। जो भी कारण हो, जीवन की और जगत् की वास्तविकता पर प्रकाश डालने वाली कुछ नन्हीं-नन्हीं किरणे उनमे यत्र-तत्र है, इसमे कोई सन्देह नहीं।

अंग्रेजी मे वर्डसवर्थ, टेनीसन, ब्राउनिंग प्रभृति की कविताओं में भी यत्र-तत्र इसकी झलक मिलती है : वर्डसवर्थ की निम्नलिखित पंक्तियाँ वास्तव मे बहुत ही सारगर्भित है—

Our birth is but a sleep and a forgetting.
The soul that rises with us, our life's star,
Hath had elsewhere it's setting,
And cometh from afar.
Shades of the prisonhouse begin to close
Upon the growing boy.

अर्थात्, हमारा जन्म एक निद्रा है, एक विस्मृति है। हमारी आत्मा का स्थान कहीं अन्यत्र है। यह बहुत दूर से यहाँ इस लोक में आयी है। विवर्धमान लड़के पर इस कारागृह की छाया धीरे-धीरे घनीभूत होती जाती है।

टेनिसन की निम्नलिखित पंक्तियों पर ही विचार कीजिये। पूर्वजन्म की स्मृति सुनिविड़ छाया से आक्रान्त रहने पर भी कवि को विकल कर गयी है।

For oft on me when boy,
There came what then I called,
Who knew no books
and no philosophies,
In my boy-phrase, 'The Passion of the Past.

वर्त्तमान मानवी अस्तित्व एक निदारुण निर्वास के रूप मे अनेकानेक कवियों की कविताओं मे अभिव्यक्त हुआ है। एक फ्रेन्च कवि की दो पंक्तियाँ याद आ रही है।

Sur la terrre d'exil pourquoi reste J'encore ?
It n'est rien de commun entre la terre et moi.

कतिपय फ्रेन्च, जर्मन और अंग्रेजी कवियों की कविताएँ आत्मा के अमरत्व पर कितना सुस्पष्ट प्रकाश निक्षिप्त करती हैं, यह देखने की जिन्हे इच्छा हो वे मेरी 'ज्योतिधारा' नामक पुस्तक पढ़ने का कष्ट करें। वहाँ मैंने पर्याप्त उद्धरण दिये हैं।

इस ग्रह में कभी-कभी दूरागत चिर परिचित व्यक्तियों का जब मिलन होता है तो हृदय एक मधुर विषाद और आह्लाद के सम्मिश्रण से भर-सा जाता है। कई व्यक्तियों का कई व्यक्तियों से अनायास ही प्रेम हो जाता है और कई व्यक्तियों से अनायास ही शत्रुता। इसका कारण यही है। साधारण मनुष्यों को इसका ज्ञान अस्पष्ट रूप मे भी नहीं हो पाता, लेकिन कतिपय व्यक्तियों

को इसकी स्फुरणा अनायास ही हो जाती है। कुछ व्यक्तियों से परिचित होने पर ऐसा मालूम होता है कि इनसे तो मेरा पहले का परिचय है। वे नव परिचित मालूम ही नहीं होते। अनेक कवियों द्वारा इस भावना की अभिव्यक्ति हुई है। टेनिसन की पंक्तियाँ है--

So friend, when I looked upon your face
Our thoughts gave answer each to each, so true
Opposed mirrors each reflecting each
Although I know not in what time or place
Methought that I had often met with you
And each had lived in other's mind and speech.

कई वर्ष पहले मैंने 'प्रतीक्षा' शीर्षक एक कविता लिखी थी। उसकी कुछ पंक्तियों के उद्धरण का लोभ मै संवरण नहीं कर सकता।

नभ के नीरव पथ को करके नक्षत्रों से हीन
रजनी के आनन को क्षण भर मे ही बना मलीन
जलधर आ पहुँचे थे करते हुए बहुत उत्पात
अजी, आज की तरह बड़ी ही थी अँधियारी रात
......बहुत दिनों की बात

सरिता के तट पर बैठा था मै एकाकी मौन
इतने मे आ पहुँचा मेरे पास न जाने कौन
क्षण भर को हो गया गगन का पथ अतिशय अवदात
चमकी चपला, चमक उठी वह बड़ी अँधेरी रात
......बहुत दिनों की बात

उसके पीछे-पीछे दौड़ा आया व्यथित चकोर
जो ताका करता था तरु पर बैठ गगन की ओर
उसने मेरी ओर किया था मुसुका कर दृग्पात
आँखे मिलीं, लगा वह मुझको चिर परिचित, चिर ज्ञात
......बहुत दिनों की बात

साहित्य मानवात्मा की सर्वोत्कृष्ट एवं सर्व-निविड़ अभिव्यक्ति है। विश्व-काव्य की अधिकांश सामग्री इस अविजानित साथी के वियोग की वेदना से अनुप्राणित है। शायद ही कोई ऐसा सच्चा महा-कवि हुआ हो जिसकी कविता वियोग के अश्रुजल से सिक्त न हो और भावी मिलन के सुखद स्वप्नों की कौमुदी जिसके कलात्मक व्यक्तित्व का शृंगार न कर पायी हो। मिलन और वियोग की ये भावनाएँ इस जड़-जगत् मे रहने के कारण पार्थिव आधार को खोजेंगी ही। वे योगी है जिनकी अन्तर्पिपासा पार्थिव आधार की आसक्ति से मुक्त हो जाती है। हमारा वर्त्तमान व्यक्तित्व हमारे शाश्वत और पार्थिव व्यक्तित्व का कतिपय वर्षस्थायी संश्लेषण है। एक की क्रिया का प्रभाव दूसरे पर पड़े बिना नहीं रहता। हमारे पार्थिव व्यक्तित्व की क्रियाएँ हमारे शाश्वत व्यक्तियों को प्रभावित करती है और शाश्वत व्यक्तित्व की क्रियाएँ पार्थिव व्यक्तित्व को। इस पर 'This empty world' नामक पुस्तक मे विस्तारपूर्वक लिख रहा हूँ। पाठक यहाँ इतने से ही संतोष करें कि जब शाश्वत व्यक्तित्व अपनी वेदना को, अपनी आकांक्षाओं और अभावों को अभिव्यक्त करता है, उस समय पार्थिव व्यक्तित्व भी अपनी अभिव्यक्ति करता है। पार्थिव व्यक्तित्व के गुणों के दो प्रधान

विभाग अस्तित्व-रक्षण और कामुकता है। शाश्वत व्यक्तित्व की विभिन्न क्रियाओं के साथ इस पार्थिव व्यक्तित्व की क्रियाओं का जब संश्लेषण होता है, उस समय दोनों के पृथक्करण द्वारा वास्तविकता के साथ अभिज्ञ होना कठिन-सा हो जाता है।

जो हो, जीवन-पथी के प्राण किसी के वियोग की वेदना से व्यथित अवश्य रहते हैं। वह उसे पाने के लिए नानाविध प्रयासों में संलग्न भी रहता है। वह अपने उस प्राप्य पदार्थ को ठीक-ठीक समझ तो पाता नहीं—इन कठोर, निर्मम छलनाओं से आक्रान्त रहने के कारण। अतएव कभी इसे अपना काम्य समझकर इसके पीछे दौड़ता है, तो कभी उसको अपना काम्य समझकर उसके पीछे।

लेकिन इतना सुनिश्चित है कि हमे कुछ पाना है—हमने कहीं कुछ खो अवश्य दिया है—कहीं कुछ भूल हम अवश्य आये हैं और उस खोई निधि को प्राप्त किये बिना हमे चैन कहाँ! उसके बिना हमारा जीवन यों ही हाहाकार, चीत्कार का क्रीड़ास्थल बना रहेगा—ग्रीष्म-मध्याह्न की उत्तप्त मरुस्थली मे जलने वाली सिकता-कणिकाओं की निर्मम बयार यों ही हमारे जीवन-पथ में बिखेरती रहेगी। हम सुख और शान्ति की कल्पनाएँ ही करते रहेंगे—उनके स्वप्न ही देखते रहेंगे, उन्हे पा नहीं सकेंगे।

उस खोये जीवन-साथी को—उस प्राणसखा को, जिसका अभाव स्वयं मरणमय तमिस्र-माया बन गया है, कौन-सी संज्ञा दी जाय ?

—:०:—

(७)

दूर देश !—सर्वथा अपरिचित अविदित आवास ! छलनाओं का चतुर्दिक सैकतनृत्य ! सर्वत्र नानाविध कुत्साओं का प्राधान्य !... हतभाग्य जीवन-पथी करे भी तो क्या करे !—लक्ष्यहारा, साथीहारा, मार्गहारा !

और, फिर इस माया-लोक में शरीररूपी यह जो विचित्र-सा पिंजर मिला है, इसकी आवश्यकताएँ शत-शत बन्धनों की सृष्टि अलग करती रहती है !

ज्योतिर्मय देश छूटा—आलोकदानी प्राण-सखा छूटा ! उसपर अभिनव बन्धनों की यह प्राणप्रपीड़क माया !

इस पार्थिव आवास के पहले की समस्त स्मृति विलोप-साधन ने तो पथ-निर्धारण मे शत-शत अभिनव कठिनाइयाँ समुपस्थित कर दी है ! बड़ा से बड़ा पैगम्बर इस मायालोक मे आकर अपनी स्मृति को पूर्णतया सजग नहीं कर पाता, इसी कारण धर्मों में इतना पार्थक्य है ।

कृष्ण, क्राइस्ट, मुहम्मद सब को ईश्वरीय दूत मानने मे आपत्ति क्या है और गीता, बाइबिल, कुरान तीनों में ही स्नेह पोषण करने में अनौचित्य क्या है ! मायालोक के इस नशीले वातावरण मे प्रविष्ट होने के उपरान्त साधारण आत्माओं मे तो यहाँ का जादू ऐसा सवार होता है कि उतरने का नाम नहीं लेता। किन्तु महान् एवं शक्तिशालिनी आत्माओं को मायालोक का यह अज्ञानोत्पादक दिग्भ्रामक वातावरण उतना भ्रमित एवं विमूढ़ नहीं कर पाता ! अपनी-अपनी शक्तियों के अनुसार ये लोग सत्य का जितना आलोक बन्धन विमुक्त कर पाये, उतना अभिव्यक्त कर गये।

इस सौरमण्डल के अस्तित्व का उद्देश्य ही भ्रम और अज्ञान है ! सुषमागार विश्व में इस माया-ग्रह की उत्पत्ति आत्माओं को विरह दुःख से परिचित कराने के लिए हुई है ! यहाँ का वातावरण ज्ञान और सौन्दर्य का प्रबल शत्रु है ! जो लोग इस जादू के देश में अपने पार्थिव ज्ञान पर अभिमान करते है, वे अपनी अविवेकिता पर ही प्रकाश डालते है।

ऐसी अवस्था मे एक प्रखर निराशा से मन-प्राण भर आते है। लगने लगता है, जैसे इस मायालोक से परे का ज्ञान इस मायालोक मे रहकर कभी हो ही नहीं सकता। जीवन-यात्रा की हिम्मत टूट जाती है और उसका कण-कण क्रन्दन करने लगता है।

सारी की सारी सृष्टि को मायालोक और दुःखमय समझना केवल भ्रामक ही नहीं, सृष्टि का अपमान भी है। मायावादी दार्श-निकों ने अपने चिन्तन-पथ का आरंभ तो ठीक किया है, लेकिन

आगे चलकर वे स्वयं उस गर्त्त मे जा गिरे है, जहाँ से निकल कर उन्होंने यात्रा आरंभ की थी।

मानवी चिन्ता-धारा मे जो इतना महान् वैभिन्य और विपर्यय दृष्टिगत होता है, उसका कारण यही है कि पहले अपने आवास-स्थल की वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त न करके वह सारी की सारी सृष्टि की वास्तविकता पर अपने विचारों को केन्द्रित करती है। और इसीलिये विश्व की वास्तविकता का ज्ञान उसे जिन रूपों में होता है, वह अपनी विचित्र विभिन्नताओं के कारण हास्यास्पद है। एकेश्वरवाद की आधार शक्ति भी उतनी ही अशक्त है जितनी कि बहुदेवतावाद की। अद्वैतवाद का आधार भी उतना ही शक्तिहीन है, जितना कि द्वैतवाद का या विशिष्टाद्वैतवाद का। मनुष्यों को पहले अपने ज्ञान की परीक्षा कर लेनी चाहिये—उनकी शुद्धा-शुद्धि से अवगत हो जाना चाहिये। क्योंकि इन्हीं के द्वारा तो वे विश्व की वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त करते है। ये जब तक शुद्ध नहीं होंगी, तब तक विश्व की जो रूपरेखा उनके मस्तिष्क में निर्धारित होगी, वह भी शुद्ध नहीं होगी। एक ब्रह्मवादी किसी भक्त की उपासना-पद्धति पर हँसता है और कहता है—'सब कुछ ब्रह्म ही ब्रह्म है। ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। मूर्खतावश अपनी शारीरिक अज्ञान-जनित आकांक्षाओं से उत्प्रेरित होकर इसने ईश्वर की मानव रूप मे कल्पना की और अपने ही गुण-दोषों का उसमे आरोपण कर लिया है। मानव सौन्दर्य-प्रेमी है, इसलिये उसने अपने देवता को अनिन्द्य सुन्दर रूप मे देखा है। मानव-शक्ति प्रेमी है, इसलिये उसने अपने आराध्य में शक्तियों की स्थापना की।

अपनी वासनाओं को मूर्त्त रूप प्रदान करके यह उसकी पूजा कर रहा है ! पागल है !........लेकिन उस ब्रह्मवाद ने ब्रह्म की जो रूप-रेखा अंकित की है, वह क्या है ! भक्त ने जगन्नियन्ता को जिस रूप में देखा है, यदि वह हास्यास्पद है और निरर्थक है तो उस दार्शनिक ने—उस ब्रह्मवादी ने ब्रह्म को जिस रूप मे देखा है, वह कहीं अधिक हास्यास्पद है—कहीं अधिक निरर्थक। ब्रह्म के उस रूप का निर्माण दार्शनिक के मानस-लोक मे ही हुआ है, उसके बाहर नहीं। उसने अनेकत्व को असत्य मानकर एकत्व की स्थापना की, क्योंकि उसे एकत्व मे ही सत्य का बोध हुआ, लेकिन एकत्व का महत्व मानव-जाति के बद्ध अनुभवों तक ही सीमित है। इस कारागार के मोहमाया वातावरण के बाद एकत्व और अनेकत्व दोनों ही अपना रहस्य प्रकट करते हैं। यदि बिल्कुल नास्ति नहीं है तो एकत्व और अनेकत्व दोनों का ही अपने-अपने स्थानों मे समान महत्व है।

सीढ़ियों पर जो चढ़ता है, वह यदि एक-एक करके न चढ़े तो गिरने की सम्भावना अधिक है, कोठे पर पहुँचने की कम। एक बार उछल कर वह दस या ग्यारह सीढ़ियों तक पहुँच सकता है, और यह भी उसी का काम है जिसमे पर्याप्त बल हो। सब से ऐसा नहीं हो सकता। दुर्बल शरीर वालों के लिए यह दुस्साहस उनके पतन का कारण होगा, उत्थान का नहीं। अपने सौरमण्डल की मायामय वास्तविकता से परिचित हुए बिना ही—उस खुमारी को दूर किये बिना ही, जो इस वातावरण में आने से हमारी रग-रग में व्याप्त हो गयी है, यदि हम निखिल के ज्ञान का

प्रयास करेंगे तो इससे जो परिणाम निकलेंगे, वे सर्वथा हास्यास्पद होंगे। हम लाख यह सोच ले कि हमने अपनी आकांक्षाओं, अभिलाषाओं एवं उद्वेगों को नष्ट करके शान्तिपूर्वक इस समस्त सृष्टि के कारणों पर विचार किया है और तब यह निष्कर्ष निकला है, अतएव इसकी सत्यता में क्या संशय हो सकता है! लेकिन वह शान्तिपूर्ण मानसिक परिस्थिति भी एक मानसिक परिस्थिति ही है और इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। प्रेम प्रभृति उद्वेगों से मस्तिष्क को जो शक्ति प्राप्त होती है, वह सत्यान्वेषण के लिए इस विचित्र एवं तथाकथित शान्तिपूर्ण परिस्थिति से अधिक उपयुक्त है।

इस समय सृष्टि के संचालक की जो कल्पनाएँ मानव-जाति के द्वारा की गयी है, उनमे जो विभिन्नता है, वह विचारणीय है। बाइबिल, कुरान, वेद उपनिषद् और पुराणों प्रभृति मे जगन्नियन्ता के जिस स्वरूप का चित्रण किया गया है, वह एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है। पुराणों के ईश्वर सगुण है और उपनिषदों के ईश्वर निर्गुण, निर्विकार और सीमाहीन है, इसलिये उपनिषदों के ईश्वर ही ठीक है, यह कहना सर्वथा अयौक्तिक है। सीमा नाम की जो चीज है, उसके सम्बन्ध मे तो कुछ कहना ही निरर्थक है। निर्गुण और निर्विकार का विशेषण भी इसी दुनिया के द्वारा प्राप्त मानसिक अनुभवों से जगन्नियन्ता को प्रदान किया गया है। मनुष्य सशरीर है और वह यह देखता है कि शरीर मरणधर्मा है—परिवर्त्तनशील है, और ईश्वर मे ये सब बातें होनी नहीं चाहिये। इसलिये उसने निराकार रूप मे उसकी कल्पना कर ली। अब एक व्यक्ति जो ईश्वर को निराकार मानता है और निराकार स्वरूप

की वेद या उपनिषद् के मंत्रों से उपासना करता है—यदि किसी ऐसे व्यक्ति को जो शंख, चक्र, गदा, पद्म लिये हुए विष्णु भगवान् की भक्ति-पूजा गद्गद् वाणी से करता है—मूर्ख कहता है तो वह मूर्खो का शिरोमणि है।

ईश्वर के जितने भी रूप मानव-जाति को उपलब्ध है, वे सब मानव-जाति के ही द्वारा निर्मित है, यह यदि मानव-जाति समझ लेती तो शायद धर्म के नाम पर इस ग्रह मे इतना शोणित-पात नही हुआ होता ! जो व्यक्ति अपने घर को न समझकर, अपने घर के संचालक को न जानकर अपने देश को समझने की चेष्टा करते है और उसके नृपति के सम्बन्ध मे अभिज्ञता प्राप्त करना चाहते है, वे अपनी चेष्टा को यदि अनधिकार चेष्टा समझ लेते तो बहुत ही अच्छा होता !

बहुत से व्यक्तियों ने इस संसार मे इतना हाहाकार, इतनी अपूर्णता, इतना रोदन-क्रन्दन देखकर ईश्वर के अस्तित्व पर ही शंका आरम्भ कर दी क्योंकि ईश्वर पर उन लोगों ने जिन गुणों का आरोप किया था, वे इन अभावों और क्लशों के रहते हुए सर्वथा निरर्थक हो जाते है। लेकिन उन लोगों ने यह समझने का कभी भी प्रयास नहीं किया कि वे गुण उन्हीं के द्वारा ईश्वर पर आरोपित किये गये है।

हम यदि यह मान ले कि हमारे सौर-मण्डल की कुछ सञ्चा-लिका शक्तियाँ है जिनका विश्व के अन्य सौर-मण्डलों पर कोई अधिकार नहीं है तो क्या हर्ज है ? सञ्चालिका शक्तियों के अभाव

मे स्वतः ये ग्रह-उपग्रह संचालित नहीं हो सकते हैं। इस ग्रह के अभाव मे अभियोगों का दोषारोपण उन संचालिकाओं पर करने से विश्व की कोई मान-हानि भी नहीं होती क्योंकि इस विराट विश्व मे यह ग्रह जितना नगण्य स्थान रखता है, उतनी ही नगण्य स्थान इसकी संचालिकाओं का होगा !

कल्पनाएँ सब हैं—यह भी और वह भी। अन्तर्प्रेरणाओं को—मस्तिष्क द्वारा गृहीत दूरागत विचारों को छोड़कर। लेकिन यहाँ मेरे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि ईश्वरोपासना निरर्थक है। नहीं, वह पूर्णतया सार्थक है। लेकिन अपनी विशिष्ट ईश्वरोपासना-प्रणाली को अन्य व्यक्तियों की विशिष्ट ईश्वरोपासना-प्रणालियों से अधिक श्रेयस्कर और महत्वपूर्ण विघोषित करना अवश्य निरर्थक है और साथ ही साथ मूर्खतापूर्ण दाम्भिकता से परिपूर्ण भी। एक व्यक्ति यदि अपने उपासनालय मे बैठकर शिवजी की छोटी-सी पाषाण-मूर्तिपर विल्व-पत्र और सौरभित पुष्प-चन्दन प्रभृति चढ़ाता हुआ भक्ति-परिप्लुत स्वर से शिवमहिम्न स्रोत का पाठ करता है तो उसको वही फल मिलेगा जो उस व्यक्ति को जो मुरलीमनोहर की मोहिनी-मूर्ति के सामने अन्य व्यक्तियों के साथ नृत्य-निरत होकर कीर्त्तन करता है; उपासना-प्रणाली के पार्थक्य से उनके फलों में किसी प्रकार के पार्थक्य की सम्भावना नहीं। हाँ, उनकी मनःस्थिति के पार्थक्य का प्रभाव अवश्य पड़ेगा। जिस उपासक मे जितनी अधिक श्रद्धा, जितना अधिक विश्वास, जितनी अधिक भक्ति रहेगी, उसको फल उतना ही अधिक और शीघ्र मिलेगा। 'विस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम' कहिये, या 'शान्ताकारं भुजग-

शयनं पद्मनाभं सुरेशं' कहिये, महत्व है उन शब्दों के उच्चारण में मिली हुई आपकी श्रद्धा और भक्ति का। इनके अभाव में—अपनी उपासना-प्रणाली के प्रति उत्कट विश्वास के अभाव में फल के अभाव की आशा करना चाहिये भाव की नहीं।

भारतीय महर्षियों ने इस सत्य को समझा था कि हमारे द्वारा निर्दिष्ट समस्त स्वरूपों से वह परे है और इसलिये 'नेति-नेति' कहकर उन्होंने ईश्वर का जो स्वरूप मानव-जाति को प्रदान किया है, वह अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता! निर्गुण और सगुण दोनों समान रूप से निरर्थक और सार्थक हैं। निर्गुण मानने से और भी कठिनाइयाँ हैं कि फिर उसकी सृष्टि में यह गुण कहाँ से चला आया। अद्वैतवादियों की तरह इसे भ्रम कह देने से काम नहीं चलने का! संसार को लाख भ्रम समझा जाय, लेकिन जब क्षुधा की ज्वाला पेट में उत्पन्न होती है या पिपासा ओठों पर सुलगने लगती है, उस समय सारी भ्रम-भावना कर्पूरायित हो जाती है और सृष्टि की वास्तविकता का ज्ञान होने लगता है। ईश्वर को सगुण मानने में भी कठिनाइयाँ कम नहीं हैं। एक गुण के मानने से फिर उसके प्रतिकूल धर्म की संस्थिति मानी नहीं जा सकती। (Omni deteramenatio est negatio)

ईश्वर को संसार का कारण न मानकर संसार को उसका विवर्त्त मानने से भी कठिनाइयाँ दूर नहीं होतीं। यहाँ तो कबीर की निम्नलिखित पंक्तियाँ ही इस सम्बन्ध में युक्तियुक्त प्रतीत होती हैं—

नहिं निरगुन नहिं सगुन भाई नहिं सूछम-अस्थूल।
नहिं अच्छर नहीं अविगत भाई ये सब जग की भूल ॥
भारी कहूँ तो बहु डरूँ हलका कहूँ तो ढीठ।
मै क्या जानूँ पीव को नैना कछू न दीठ ॥

ईश्वर के स्वरूप का निर्धारण इस ग्रह मे असंभव है। जहाँ अपने पथ का ही ज्ञान पूर्णतया नहीं हो पाता है, वहाँ पथों के निर्माता का ज्ञान कैसे हो सकता है! अतएव उस सम्बन्ध में मौन रहना ही श्रेयस्कर है। भारतीय ऋषियों ने उसे अचिन्त्य, अवर्णनीय और अगम्य कहकर ईश्वर-ज्ञान की असंभवता का परिचय तो नहीं दिया था, क्योंकि उन्हे विश्वास था कि मन, बुद्धि, अहंकार प्रभृति से युक्त होने पर विशुद्ध ज्ञान की प्राप्ति के द्वारा उसके अस्तित्व का अनुभव साधक को होने लगता है, पर इस अनुभव की वास्तविकता में प्रविष्ट होने पर स्पष्ट प्रतिभासित हो जाता है कि यह अनुभव-हीनता का अनुभव है। अतएव इसे अनुभव कहना ही निरर्थक है।

जो हो, हम अपने ज्ञान की वर्तमान बन्धनयुक्त परिस्थितियों मे निखिल के सम्बन्ध में और उसके उद्भव एवं विनाश के सम्बन्ध में स्पष्टतापूर्वक सोचने के अधिकार से वंचित है। यह सोचना निरर्थक ही नहीं होगा, अल्पधी व्यक्तियों के लिए हानिकारक भी होगा।

हम इस विराट विश्व के एक निर्वासन-द्वीप में बन्द है—इतना हम जान गये है। इसके बाद का ज्ञान हमे यहाँ से मुक्त होने के पहले स्पष्ट रूप में नहीं हो सकता। पूर्ण योगसिद्धि के

अभाव में जो प्रयास होंगे, उनसे वैसे ही विचित्र निष्कर्षों का जन्म होगा जो अद्वैतवाद, द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, प्रभृति नानाविध वादों के रूपों में इस ग्रह के हतभाग्य वातावरण में मँडरा रहे हैं।

वर्त्तमान परिस्थितियों मे सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है कि इस विराट विश्व के कोटिशः सौरमण्डलों के विभिन्न संचालक हैं। उन्हें देवता कहिये या जो कहिये! उन समस्त देवों का देव भी एक है, जिसके स्वरूप का निर्धारण इस पार्थिव आवास में दुष्कर है। वह साकार रूप ग्रहण कर सकता है और एक नहीं अनेक? नाना गोपियों के साथ नाना कृष्णों की रास-लीलाओं का जो वर्णन भागवत में मिलता है, वह निस्सार नहीं है। वह साकार रूप इस विराट विश्व के समस्त रूपों से आत्माओं के लिए कहीं अधिक प्राणमोहक होगा! उसका सौंदर्य अप्रतिम होगा—उसका ज्ञान एवं प्रेम भी अनुपम! अतः जीवन-पथी को चाहिये कि व्यर्थ के तर्क-जाल मे न पड़कर उसकी उपासना के किसी एक स्वरूप को अपनाकर जीवन पथ पर चलता चले! उसके प्रेम का ढाई अक्षर पढ़ लेने से जिस ज्ञान की प्राप्ति होगी वह सहस्रों ग्रंथों के पाठ से नहीं।

—:o:—

(८)

यों तो यह पार्थिव आवास दूरागत अधिवासियों को सदैव नानाविध भीति-जाल से विपन्न करता ही रहता है, किन्तु मरण की भीति शायद सर्वाधिक कष्टोत्पादक प्रतीत होती है। बाल, वृद्ध, युवक, वनिता किसी से भी पूछ लीजिये, वह मरण को अपने शत्रु के रूप मे ही देखता है। आशीर्वाद का सर्वाधिक प्रिय रूप ही है 'तुम्हारी आयु लम्बी हो।' अमरत्व का प्रलोभन शायद इस ग्रह के अधिवासियों के लिये सर्वाधिक प्रबल है। इतने-इतने निदारुण कष्टों के रहते हुए भी प्राणी इस ग्रह के चिरन्तन आवास के लिए लालायित रहता है, यह महान् विस्मयोत्पादक बात ही है। यदि इन कष्टों का अस्तित्व यहाँ नहीं हुआ होता तब तो न जाने क्या हुआ होता।

किन्तु मृत्यु को इतने भयंकर रूप में देखना अविवेक का ही परिचायक है। जो दुर्भाग्यवश अपने ज्योतिर्मयलोक से विलग होकर यहाँ इस माया-लोक में आ पहुँचे है, उनके लिए तो स्नेहास्पद होना चाहिये। इसी की सहायता से तो वे इस कारा-

गार के बन्धनों से,--प्राणप्रपीड़क, घातक, नारकीय बन्धनों से विमुक्त होने मे समर्थ हो सकेंगे। उनके अस्तित्व पर--चिर-सुन्दर, अविनाशी, पावन और अनवद्य अस्तित्व पर इस ग्रह के मायामय तत्वों का जो तिमिरमय आवरण छाया हुआ है, उसे दूर करके उन्हे उनके देश की राह दिखलाने वाली इस अप्सरा को भयावह रूप मे देखना सर्वथा अनुचित है।

मृत्यु को मानव-जाति अपने समुद्भव-काल से भयावह रूप मे देखती आ रही है। इसका प्रधान कारण सत्यानभिज्ञता तो ही है, साथ ही साथ एक प्रमुख कारण और है। यदि यह ग्रह एक ऐसा कारागार है, जहाँ रहकर दण्डोपभोग करने के उपरान्त मुक्ति स्वतः हो जाती है, तब तो मृत्यु से बढ़कर वरदान और क्या हो सकता है; किन्तु यदि ऐसी बात नहीं है और साधना की परिपक्वता के उपरान्त ही मुक्ति सम्भाव्य हो, तब तो मृत्यु अवश्य एक शाप है, क्योंकि कतिपय वर्षों के लिए वह साधना के पथ को पुनः तिमिराच्छन्न कर देती है।

जो हो, इतना तो ध्रुव सत्य है कि मृत्यु विनाश की दूतिका नहीं है। वास्तव मे वह एक द्वारपालिका है जो इस मायालोक से जीवन-यात्री को निकाल कर उसे आगे की ओर बढ़ने का इशारा कर देती है। आगे की ओर चलना या न चलना या फिर इसी मायालोक मे निपतित होना जीवन-यात्री पर अवलम्बित है--इस हिम-शीतल द्वारपालिका पर नहीं।

जो लोग शैशव की चंचलता से लेकर कब्र या श्मशान की उदासी तक ही सब कुछ समझते हैं--जिनकी दृष्टि में जन्म और

मरण के बीच ही सत्य की संस्थिति है—न उसके पहले और न उसके उपरान्त, वे यदि मृत्यु को भीषण रूप में देखते हैं तो कोई आश्चर्य नहीं। यद्यपि इन भ्रान्त मस्तिष्क वाले व्यक्तियों को भी मृत्यु से भीति-संत्रस्त तो नहीं ही होना चाहिये, क्योंकि इस ग्रह के अधिवासियों का जीवन दुःख की अपेक्षा सुख का आलिङ्गन बहुत कम कर पाता है। कोटयधीश हों या साधारण आर्थिक स्थिति का व्यक्ति हो—नृपति हो या एक तुच्छातितुच्छ व्यक्ति हो—दुःखों के आधिक्य से किसी का भी जीवन विनिर्मुक्त नहीं। मत्यु तो अपने करों के स्पर्श से उन्हे क्लेशों से विमुक्त करती है, फिर वे इससे भयभीत क्यों होते हैं? बहुत से आस्तिक अपने प्रियजनों की मृत्यु के कारण नास्तिक तक हो जाते हैं और सृष्टि की संचालिका शक्ति को बुरा-भला कहने लगते हैं। मृत्यु—जीवन के इस अभिशाप-भार को दूर करके माया के तिमिर में ज्ञान की किरणों को आमन्त्रित करने वाली मृत्यु स्नेह की पात्री होनी चाहिये—भय एवं घृणा की नहीं। कवित्वमय गद्य के विख्यात लेखक मौरिस मेटरलिंकने Death नामक पुस्तक में बहुत ही सुन्दरतापूर्वक लिखा है—It is not death that attacks life; it is life that wrongfully resists death. Evils have been up from every side at the approval of death, but not at its call; and, though they gather round it, they did not come with it. Do you accuse sleep of the fatigue that oppresses you if you do not yeild to it? ....All our knowledge (क्योंकि वास्तव में यह अज्ञान का ही एक

ईषत्‌आलोकित रूप है) only helps us to die in greater pain than the animals that know nothing.. ....A day will come when it (**विज्ञान**) will dare and act with certainty; when life, grown wiser, will depart silently at it's hour, knowing it has reached it's term, even as it withdraws silently every evening, knowing that it's task is done.

मृत्यु के उपरान्त जो अवस्था होती है, उसकी अनभिज्ञता से जो भय का समुद्भव होता है, वह भी सर्वथा निराधार है। बहुत से व्यक्तियों की यह धारणा है कि उन्होंने जीवन भर धर्मानुदेशों के प्रतिकूल आचरण किया है, अतएव मृत्यु के उपरान्त उन्हे दुःखों का वरण करना पड़ेगा। इस भावना से अधिकांश व्यक्ति इसके कारणों से आक्रान्त है। और वास्तव मे इस मायालोक के विभिन्न धर्मो ने भी मृत्युवाद की दशा को मानवी मस्तिष्क मे इतना भयावह रूप प्रदान किया है। इस ग्रह के अतिरिक्त दुःखों की ऐसी संस्थिति अन्यत्र कही नही है—किसी भी ग्रह मे ऐसा अजस्र हाहारव नहीं श्रुतिगत होता। दुःख का विचित्र संस्थान यह मायालोक ही है। जो लोग अपने इस ग्रह के नियमों का आरोपण निखिल विश्व में करना चाहते है, वे उस अज्ञान पूर्ण दाम्भिकता का परिचय देते है जो उन्हीं के लिए घातक है—उनके ज्ञान के विकास के लिए। यह ग्रह दुःखों से, तरह-तरह की निदारुण यन्त्रणाओं से परिपूर्ण है, अतएव निखिल ग्रहों, उपग्रहों मे भी दुःखों का आधिक्य होना चाहिये, ऐसा सोचने वाले प्राणी अपने सिद्धान्त के द्वारा इस सृष्टि को एक गलती बतलाते है जो सर्वथा असम्भव है।

अपनी बौद्धिक दुर्बलता के कारण सत्य के परिज्ञान से वंचित रहने वाले अनेक दार्शनिकों ने इस समस्त सृष्टि के अस्तित्व को अभिशाप-भार से आक्रान्त बतलाया है। ये इसकी सत्ता को सर्वथा बेकार समझते हैं—एक अन्धशक्ति के द्वारा संचालित भी। बहुत से ऐसे भी विचारक हो गये हैं, जिनके सिद्धान्तों को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है मानो जगन्नियन्ता पागल है और अपने पागलपन के कारण उसने इस असीम और अनन्त में इतने-इतने ग्रह, उपग्रह और सूर्य बिखेर दिये हैं। अपनी उन्मादमयी विचारधाराओं से उत्प्रेरित होकर आज भी ज्योतिर्विज्ञानवेत्ता ऐसी गलतियाँ करते जा रहे हैं। सर जेम्स जींस और उनका अनुयायीवर्ग इस ग्रह के अतिरिक्त अन्य ग्रहों को जीवन धारण के लिए अनुपयुक्त विघोषित करता है, किन्तु यह सोचने का परिश्रम नहीं करता कि अत्यधिक शैत्य या अत्यधिक उष्णता अपने आप मे न तो अत्यधिक शैत्य है और न अत्यधिक उष्णता। अनुभवकारी पर उनका शैत्य या उनकी उष्णता अवलम्बित है। हिम-प्रदेशों मे निरन्तर निवास करने वाले व्यक्तियों को वहाँ उस शैत्य की अनुभूति नहीं हो सकती है जो भारत के मध्य-प्रान्त निवासी को वहाँ प्रथम बार जाने पर होगी। प्रयाग, काशी या गया के निवासियों को जेठ या वैशाख में उस गर्मी का अनुभव नहीं होगा जो राँची, मसूरी या शिमला के रहने वाले को वहाँ पर होगा। हमारा जो शरीर इस ग्रह पर है—हमारे नश्वर परिधान का जो स्वरूप इस ग्रह पर है, उसमें तनिक-सा परिवर्तन कर देने से ही—हमारे स्नायु-मण्डल में तनिक-सी नूतनता सन्निविष्ट कर देने से ही—हमारे

नेत्रों और श्रवणों को तनिक-सा सँवार देने से ही वे स्थान हमें शरच्चन्द्रिकोज्वल यामिनी का-सा आनन्द प्रदान करने लगेंगे, जिन्हें आज हम अत्यधिक उष्ण समझ रहे हैं। जहाँ आज ज्योतिर्विज्ञान-वेत्ताओं को अतिशय शीतलता का आभास मिल रहा है, वहीं शायद मध्याह्न या ग्रीष्म-संध्या का सौन्दर्य अनुभूत होने लगेगा। लेकिन सर्व-प्रथम तो विज्ञानवेत्ताओं को अन्य ग्रहों, उपग्रहों के स्वरूप-निर्धारण की वर्त्तमान प्रणालियों को शुद्ध करना चाहिये। इन भ्रान्त प्रणालियों से वे विश्व के अन्यान्य लोकों का जो चित्र दुनिया के सामने रख रहे हैं, वह वास्तविकता के जिज्ञासुओं को दूर ही रखेगा। विश्व के निकृष्ट लोकों मे इस ग्रह का स्थान है। अपने ही समान अन्य निर्वासिन-ग्रहों को छोड़कर यह ग्रह विश्व के अन्य समस्त ग्रहों से अधिक असुन्दर एवं दुःखमय है।

अपनी ज्ञानेन्द्रियों से अनुभूत ज्ञान को ही सब कुछ समझने वाले व्यक्तियों की कमी नहीं। वे लोग अपने को नानाविध विशेषणों से विभूषित करते हैं। कवियों का अस्तित्व उनकी दृष्टि में सर्वथा निरर्थक है क्योंकि इनका निवास उस लोक में है जहाँ उनकी ज्ञानेन्द्रियाँ (वास्तविक अर्थ में अज्ञानेन्द्रियाँ) नहीं पहुँच पातीं। प्राभातिक प्राची-क्षितिज का स्वर्णाभ सौन्दर्य इनके लिए कोई महत्व नहीं रखता और न पर्वत-शिखरों पर तम-श्यामल चरणों को रखकर अन्तरिक्ष-पथ मे तारागणों के दीप जलाने वाली यामिनी ही इन्हें सुषमान्वित प्रतीत होती है। वनान्त-पथ मे सौरभ का प्रसार करने वाले अलि-कुल-संकुल पाटल की कमनीयता उन्हें कुछ भी विमोहित नहीं करती क्योंकि उनके अवैज्ञानिक विज्ञान ने सौन्दर्य-दर्शन को

अपने क्षेत्र से सर्वथा बहिर्गत कर रखा है। ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा अनुभूत विश्व को पूर्वानुभव-जनित विचार-विमर्श से अपने समक्ष स्पष्ट करने का ये लोग पुष्कल प्रयास करते हैं, लेकिन परिणाम यह होता है कि वह विश्व का एक देशीय और सर्वथा भ्रान्त रूप होता है। वे लोग यह सोचने का कष्ट नहीं करते कि विश्व को वे कहाँ देख पाते हैं, वे तो नेत्र-पथ से मस्तिष्क पर पड़े हुए विश्व के एक विचित्र एवं सर्वथा अस्पष्ट चित्र को देख पाते हैं।

मृत्यु को साधारणतः जिस रूप में देखा जाता है, वह तो कदापि भयावह एवं क्लेशप्रद नहीं होना चाहिये क्योंकि इस जीवन की यातनाओं से मुक्त करने में वह अद्वितीय है। हर्बट स्पेन्सर प्रभृति ने भी मृत्यु और जीवन की जो परिभाषाएँ की है, वे भी मृत्यु के प्रति किसी प्रकार की विरक्ति का जागरण नहीं करतीं। जीवन की परिभाषा करते हुए हर्बर्ट स्पेन्सर ने लिखा है—"The continuous adjustment of internal relation to external relation is life." जीवन-विरहित पदार्थों से सजीव पदार्थों मे भेद की स्थापना करने वाले चार कार्य हैं—नूतन पदार्थों को अपने में लेकर उनसे कार्य-क्षमता प्राप्त करना (२) निरर्थक एवं दूषित पदार्थों को अपने से बहिर्गत करना (३) उत्पादन की शक्ति का होना (४) विवर्धनशीलता। समस्त सजीव पदार्थों मे इन चारों का अस्तित्व उपलब्ध होता है। जीवन की इस परिभाषा के सम्बन्ध मे कुछ भी टीका-टिप्पणी करना निरर्थक है क्योंकि वह सर्वत्र परिलक्षित होता है और इस प्रकार जब वाह्य जगत से अन्तर्जगत का सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाता है, तो वह मृत्यु कहलाती है। यह मृत्यु सम्पूर्ण

भी हो सकती है और एकांगी भी। मान लीजिये, एक व्यक्ति के कान खराब हो गये हैं। उसके अन्य अंग स्वस्थ हैं और अपना कार्य सुचारु रूप से कर रहे हैं? केवल सुनने की शक्ति का लोप हो गया है। ऐसी अवस्था में वह सम्पूर्ण रूप से जीवित नहीं कहा जा जा सकता क्योंकि बाह्य जगत् से उसकी सम्बन्ध-स्थापना सर्वतो-भावेन नहीं हो पाती। इसी प्रकार शरीर का कोई भी अंग विकृत या अशक्त हो जाने से हमें उसे पूर्ण रूप से जीवित नहीं कहना चाहिये।

हर्बर्ट स्पेंसर की इस परिभाषा के अनुसार तो सारी की सारी मानव-जाति एक साथ ही जीवित भी है और एक साथ ही मरी हुई भी। वाह्य जगत से सम्बन्ध पूर्णतया स्थापित इस ग्रह का कौन-सा अधिवासी कर सका है! यदि यह कहा जाय कि अभी तक मानव-जाति के विकास-क्रम में सम्बन्ध-स्थापना की जो शक्तियाँ उपलब्ध हो पायी है, उन्हीं को अपना आदर्श मानकर हमे जीवन और मरण मे विभेद-रेखा अंकित करनी चाहिये, तब भी शक्तियों के तारतम्य से सभी व्यक्ति किसी न किसी अंश मे मृतक कहलायेंगे ही।

इसे छोड़ दीजिये। दूसरे दृष्टिकोण से देखिये। यह तो स्पष्ट ही है कि इस ग्रह का स्थान इस विश्व मे कोई महत्व नहीं रखता और मानव-जाति अपनी सम्बन्ध-स्थापना अपनी वैज्ञानिक शक्तियों को विवर्धित करके अभी तक इसी ग्रह से कर पाती है। इस ग्रह के परे उसके अनुमान की पहुँच है, उसकी नहीं। ऐसी अवस्था में वह इस ग्रह को छोड़कर सारे के सारे विश्व के लिए मृत ही मानी जायगी। केवल इसी ग्रह से जहाँ तक उसका सम्बन्ध है, वह जीवित

है। अब आप ही सोचिये, किसी देश के दस अरब व्यक्तियों में केवल एक को भोजन मिले तो उस देश को आप बुभुक्षितों का देश कहियेगा या श्रीसम्पन्न व्यक्तियों का? स्पष्ट है कि दस अरब व्यक्तियों में उस एक व्यक्ति के अस्तित्व का कोई स्थान नहीं। अब विचार कीजिये, मानव-जाति विश्व के अरबों ग्रहों, उपग्रहों के लिये तो मृत है और केवल इस ग्र के लिये जीवित। ऐसी अवस्था में उसे मृतक कहना युक्तिसंगत होगा या जीवित कहना?

अतएव अधिक उपयुक्त यही कहना होगा कि जीवन और मरण साथ-साथ चलते हैं। जहाँ जीवन है, वहीं मरण भी खड़ा-खड़ा मुसकराता रहता है। एक व्यक्ति के अन्तर्जगत की इस संसार से घनिष्ट सम्बन्ध-स्थापना हो गई है तो वह आत्मिक जगत् के लिए जीवित नहीं है और यदि एक व्यक्ति की आत्मिक जगत से घनिष्ट सम्बन्ध-स्थापना हो गयी है तो वह इस भौतिक जगत् के लिए मरा हुआ है।

विज्ञान और कविता के समुद्भाव का कारण और उनकी पार्थक्य-रेखा का कारण यहीं मिलेगा। मनुष्य के अन्तर्जगत की जब इस भौतिक जगत् से सशक्त एवं स्वस्थ संबंध-स्थापना होती है, तब विज्ञान का समुद्भव होता है और अन्तर्जगत की जब इस भौमिक जगत के परे की चीजों से सम्बन्ध-स्थापना होती है, तब कविता का समुद्भव। कविता के लिए सशक्त एवं स्वस्थ सम्बन्ध-स्थापना की आवश्यकता नहीं, क्योंकि इस ग्रह के परे की चीज से सशक्त सम्बन्ध-स्थापना असंभव है।

पूर्ण विनाश इस विश्व में किसी का भी नहीं होता। हमारी प्रत्येक कल्पना, हमारा प्रत्येक विचार, हमारा प्रत्येक निश्चय इस विश्व में उसी प्रकार सुरक्षित है, जिस प्रकार विभिन्न राज्यों में राज्य के व्यय का हिसाब। आज एक सुन्दरी के मुख से किसी प्रेमी के प्रति जो ममताहीन शब्द निकले हैं, वे लाखों वर्षों के उपरान्त ज्यों के त्यों सुने जा सकते हैं। सर्वथा जनहीन स्थान मे बैठकर कुत्सित विचारों में तल्लीन रहने वाला व्यक्ति यदि यह सोचता है कि उसके विचार उसी तक सीमित हैं तो यह उसका कोरा भ्रम है। यदि वह यह सोचता है कि उसके विचार कुछ देर के उपरान्त नष्ट हो जायँगे तो यह भी उसका भ्रम है। जब तक यह विश्व है और जब तक इसके वर्त्तमान नियम काम कर रहे हैं, तब तक यहाँ की कोई भी क्रिया केवल स्वरूप-परिवर्तन होती है।

इस जीवन मे आप जो अध्ययन कर रहे हैं, वह इसी जीवन तक सीमित नहीं है। आपका अगला जीवन उससे वियुक्त किसी अवस्था मे नहीं रह सकता। किसी बालक को तीक्ष्ण बुद्धि वाला और किसी को मन्द बुद्धि देकर वंशानुसंक्रान्ति को उसका कारण बतलाने वाले व्यक्ति भ्रमित हैं। यदि वंशानुसंक्रान्ति को ही इसका कारण थोड़ी देर के लिए मान लिया जाय तो मैं पूछता हूँ, क्या यह बुद्धि-विभाजन अन्ध संयोग पर अवलम्बित है? इसे अंधसंयोग पर अवलम्बित मानने का तात्पर्य होगा सारी सृष्टि को संयोग-समुद्भूत मानना। नानाविध प्रमाणों से इस का खंडन अन्यत्र हो चुका है।

वंशानुसंक्रान्ति पर वैज्ञानिक समाज ने बहुत जोर दिया है, लेकिन यह है केवल अनुमान पर ही आधारित । शरीर का निर्माण अवश्य वंशानुसंक्रान्ति पर अवलम्बित है, लेकिन शरीर की कारा मे बनाये हुए इस पार्थिव अस्तित्व का वंशानुसंक्रान्ति से क्या सम्बन्ध है ! बुद्धि-मत्ता, मूर्खता प्रभृति का वंशानुसंक्रान्ति से कोई सम्बन्ध नही है । ये बातें शाश्वत व्यक्तित्व पर अवलम्बित है । पार्थिव व्यक्तित्व शाश्वत व्यक्ति के सम्पर्क में आकर धीरे-धीरे उसी के अनुकूल हो जाता है ।

एक व्यक्ति गणितज्ञ है । गणित-सम्बन्धी उसकी शक्तियों को देख कर लोगों को चकित हो जाना पड़ता है । वैज्ञानिक सोचते हैं—इसमें परिस्थितियों ने तो इसको सहायता पहुँचायी है, लेकिन इस प्रशंसनीय बौद्धिक शक्ति के अस्तित्व का कारण उसके गुण लघुतम अंशों मे नहीं भी मिलते, मातामही और पितामही मे भी नहीं यह देखकर वैज्ञानिकवर्ग अनुमान करता है कि साठ-आठ पुश्त पहले के समस्त व्यक्तियों मे से किन्हीं दो से यह गणित-शक्ति रूप मे अनुसंक्रान्त हुई है, लेकिन यह अनुमान केवल अनुमान ही है ! इसके अतिरिक्त इसका कोई महत्व नहीं ।

गम्भीर चिन्तन से अन्ततः यही निष्कर्ष सशक्त प्रतीत होता है कि मरण जीवन-यात्रा पथ का क्षणिक विराम है, पर्यवसान नहीं ! और मृत्यु भय की या विरक्ति की नहीं, स्वागत की पात्री है । घृणित पराये, अज्ञात माया-लोक से मुक्त करने वाली प्रेयसी है !—शरीर के इस पिंजर को, जिसमें आबद्ध आत्मा वर्षों से विमूर्च्छित पड़ी है, पुनः चेतना प्रदान करने

को भय की दृष्टि से देखने वाला व्यक्ति उस बन्दी का सा ही आचरण करते हैं जो सुदीर्घ अवधि तक बन्दीगृह मे रहने के बाद वहाँ से निकलते हुए भय खाता है या उस मद्यप की-सी, जो नशे की हालत मे गन्दी नाली मे पड़ा रहता है और उन्हें अपना शत्रु समझता है जो उसे नाली से बाहर करने का प्रयास करता है !

(६)

तब ?

तब मानव जाति का कर्त्तव्य क्या होना चाहिये, यह प्रश्न उसके सम्मुख है। इसी प्रश्न के उत्तर पर उसके भविष्य की उज्वलता या अनुज्वलता अवलम्बित है।

इस प्रश्न पर विचार करते समय यदि वह पहले की गलतियों से शिक्षा-ग्रहण नहीं करती है और उनकी पुनरावृत्ति करने का प्रयास करती है तो यह उसका अपराध होगा। माना कि अतीत-कालीन सभ्यताओं के इतिवृत्त अधिकांशतः नष्ट हो गये हैं और उनसे कोई विशेष लाभ नहीं उठाया जा सकता, लेकिन जो उपलब्ध हैं, उनकी भी यदि अवहेलना होती है तो यह निस्सन्देह बुद्धिहीनता होगी।

इस ग्रह के निवासियों की वर्त्तमान जीवनचर्या सर्वथा अस-न्तोषकर स्थिति में है। एक विचित्र अन्धकार से जीवन-पथ आक्रान्त है। शताब्दियों से इस अन्धकार को दूर करने के लिए ज्योतिर्धारा

का आह्वान हो रहा है, किन्तु यह चेष्टा सर्वथा निरर्थक सिद्ध होती आ रही है। अपने जीवन से दुःखों से वियुक्त करने के लिए मानव ने क्या नहीं किया ! लेकिन कम होने के स्थान पर उनकी संख्या बढ़ती ही गयी और आज जब हम सारे मानव इतिवृत्त का विहगावलोकन करते है तो अतीत की अपेक्षा आज के मानवों के जीवन मे अधिक क्लेश पाते है !

यह संसार दुःखालय है। इसमे कोई सन्देह नहीं और इस विराट विश्व मे इस ग्रह का वही स्थान है जो इस ग्रह पर निर्वासन-द्वीपों का होता है। यह भी विगत अध्यायों मे संकेतित हो चुका है, लेकिन क्लेश बढ़ते क्यों जा रहे है—दुःखोंकी अधिकता क्यों होती जा रही है ? क्या यह मानव-जाति की ही मूर्खतापूर्ण गलती का परिणाम नहीं है ?

मानव-जाति ने अपने सुखों की वृद्धि एवं दुःखों के निराकरण के लिए पहले के मानवों से अधिक साधन उपलब्ध किये है। आज से कुछ शताब्दियों के पहले यात्रा करने मे मनुष्यों को कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था, यह पाठकों को विदित है ही। घोड़ों या ऊँटों पर चढ़कर लोग महीनों के उपरान्त अपने गन्तव्य स्थान तक पहुँच पाते थे और वह भी नानाविध कष्टों को सहने के बाद। भीम भयंकर मेघ-मालाओं की अश्रु-धारा से अपने स्वेदसिक्त शरीर को सिञ्चित करते हुए या ग्रीष्म मध्याह्न में अंशुमाली की प्रखर किरणों से सारे शरीर को दाहमय बनाते हुए पथचारियों की संख्या अश्वारोहियों की अपेक्षा अधिक होती थी। दूर देशों की यात्राएँ भी लोग कहाँ कर पाते थे ! अपने देश

को छोड़कर विदेश जानेवाले वर्त्तमानयुग में जितने दिखलायी देते हैं, उसके शतांश मानव भी उन दिनों विदेश-यात्रा नहीं कर पाते थे। आज यात्रा के साधन सुलभ हो गये हैं। सारी पृथ्वी की परिक्रमा अत्यल्प काल मे की जा सकती है। दो वर्ष के समय में पृथ्वी के समस्त दर्शनीय स्थान देखे जा सकते हैं।

आज अध्ययन की जितनी सुविधा है, उतनी पहले कहाँ थी? पुस्तके सर्वथा दुर्लभ थीं। एक-एक पुस्तक का मूल्य इतना अधिक होता था कि राजाओं को छोड़कर उन्हे लेने वाले बहुत कम होते थे। आज अच्छी से अच्छी पुस्तक अल्प मूल्य में उपलब्ध हो जाती है और उसके लिए परिश्रम भी नहीं करना पड़ता। इस ग्रह के शायद ही कुछ शहर ऐसे हों, जहाँ पुस्तकालय न हों और शक्ति-शाली मस्तिष्कों के लिपिबद्ध विचार जहाँ अल्प प्रयास से ही उपलब्ध न हो जाते हों। लिखने के साधन भी पहले सुविधापूर्वक कहाँ मिल पाते थे! ताम्रपत्रों पर बड़ी कठिनाई से लोग लिखते थे। आज कागज की, लेखनी की और स्याही की कोई कमी नहीं। सर्वत्र ये चीजे उपलब्ध होती हैं। कालिदास, वेदव्यास, भारवि, भवभूति, हर्ष, दान्ते, गेटे और होमर प्रभृति की कला का कोई भी काव्यप्रेमी आज जितनी सुविधा के साथ आस्वादन कर सकता है, उतना पहले कहाँ हो पाता था!

पहले अच्छे-अच्छे चित्र उन्हीं के वेश्म का शृंगार किया करते थे, जो या तो स्वयं कलाकार होते थे या जिनके पास पर्याप्त धन होता था। आज अच्छे से अच्छे चित्रकारों की कलात्मक कृतियाँ सर्वत्र सुलभ है। सुमहान् संगीतज्ञों की प्राणमोहक संगीत-

धारा के द्वारा अपने मन-प्राण को प्रफुल्लित करने का सुयोग पहले कतिपय व्यक्तियों को ही प्राप्त था। आज जीवित गायकों की तो बात जाने दीजिये, परलोकगत गायकों की गीत-ध्वनियाँ भी सभी नगरों में सुनी जा सकती हैं।

पत्रों के द्वारा विचारों के आदान-प्रदान की आज जो सुविधा है, कुछ शताब्दी पहले उसका स्वप्न भी शायद लोगों ने नहीं देखा होगा। विदेशी प्रियतमों का समाचार वर्ष मे शायद एक ही बार और वह भी क्या जाने कितनी कठिनाइयों से प्रेयसी को मिल पाता था। आज नित्य प्रति एक दूसरे की शुभाशुभ घटनाओं से दोनों अभिज्ञ हो सकते हैं। वे हों या न हों, साधन तो उपलब्ध हैं ही।

सभी क्षेत्रों मे विगत शताब्दियों की अपेक्षा बीसवीं शताब्दी के पास मानवी सुख-सौविध्य के साधनों का प्राचुर्य है। नाटकों का क्षेत्र पहले अतिशय सीमित था। बहुत कम दृश्य दिखलाये जा सकते थे और वे भी केवल एक स्थान पर एक बार के लिए ही। आज वैज्ञानिक आविष्कारों ने मानवी मनोरंजन के इस साधन को एक विकसित और स्वस्थ रूप प्रदान कर दिया है। जिन देशों का दर्शन सर्वथा कठिन होता है, उनको भी सिनेमा के पर्दे पर दर्शक देख लेते हैं। इस ग्रह के विभिन्न भागों के निवासियों को, उनके निवास-स्थानों एवं उनकी जीवनधारा के वैचित्र्य को बड़ी सरलतापूर्वक देखा जा सकता है। जिन रूपसियों का नृत्य-गायन केवल कतिपय चुने हुए सम्पन्न व्यक्तियों के हर्म्यों तक ही सीमित था, आज उनके नृत्य एवं गीतों को सारी दुनिया सरलतापूर्वक देख सकती है।

कहने का तात्पर्य, मानवी सुख-सौविध्य के साधनों की वृद्धि

विगत शताब्दियों की अपेक्षा इधर अधिक हुई है और इसका सारा श्रेय विज्ञान को ही है।

पहले चिकित्सा-शास्त्र की इतनी उन्नति कहाँ हो पायी थी! (यहाँ पहले से मेरा तात्पर्य कुछ शताब्दी पूर्व से है—हिन्दू सभ्यता, यूनानी सभ्यता या मिश्री सभ्यता से नहीं। मेरा विश्वास है कि वे सभ्यताएँ बहुत आगे बढ़ी हुई थीं और कुछ बातों मे तो वर्त्तमान सभ्यता से भी इतनी आगे बढ़ी हुई थीं कि उनके सामने यह सर्वथा महत्वहीन मालूम होती है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि वर्त्तमान सभ्यता बहुत सी बातों मे उनसे आगे बढ़ी हुई नहीं है। कई बाते ऐसी भी है, जिनमें वर्तमान सभ्यता ने उन अतीतकालीन सभ्यताओं की अपेक्षा अधिक प्रगति दिखलायी है।) आज रोगों के दूरीकरण की अनेकानेक विज्ञान-सम्मत पद्धतियों का आविष्करण एवं प्रचलन हो रहा है। ऐलोपैथी तो सर्वप्रख्यात है ही; इधर होमिओपैथी, साइकोपैथी, नेचरोपैथी, ऐलेक्ट्रोपैथी प्रभृति की भी उन्नति हो रही है और इसमें कोई सन्देह नहीं कि पहले की अपेक्षा रोगों का निवारण आजकल सरलतापूर्वक हो रहा है।

मनुष्यों ने पहले की अपेक्षा इधर प्रकृति के रहस्यों को भी अधिक संख्या में पहचाना है। कुछ शताब्दी पूर्व यदि कोई व्यक्ति यह कहता कि दुनिया के किसी हिस्से में बोले गये वाक्य दुनिया के अन्य किसी भाग में उसी समय सुने जा सकते है, तो उसे पागल के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं समझा जाता। लेकिन आज रेडियो का विश्वव्यापी प्रचार है। रेडियो आज किसी प्रकार के आश्चर्य या विस्मय का जागरण मानवी-मस्तिष्क में नहीं करता।

मनुष्य पहले की अपेक्षा वायु, जल, विद्युत, प्रकाश प्रभृति के सम्बन्ध मे अधिक अभिज्ञता प्राप्त कर रहा है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

किन्तु यह सब होते हुए भी उसके दुःखों मे कोई न्यूनता नहीं आ पायी। वही चिरपरिचित क्रन्दन-ध्वनियाँ इस ग्रह के वातावरण में आज भी श्रुतिगोचर हो रही हैं, वही रौरव की ज्वाला से झुलसे हुए चीत्कार आज भी यहाँ सुनायी पड़ते हैं--वही चिन्ताएँ हैं और चिन्ताओं का वही वीभत्स रूप है। मनुष्य पहले भी रक्तपात करता था, आज भी करता है। पहले भी वह भविष्य की भीतियों से संत्रस्त रहता था, आज भी। निश्चिन्तता और उल्लास पहले भी नहीं थे, आज भी नहीं है।

इसमे कोई सन्देह नहीं कि अज्ञान की कारा को भग्न करने का प्रयास इधर जिस प्रणाली से हुआ है, उसका अवलम्बन यदि श्रेयस्कर नहीं कहा जा सकता तो अश्रेयस्कर कहना भी अनुचित है। समस्त पार्थिव वासनाओं से अपने अस्तित्व को अस्पृश्य रखते हुए निशि-वासर वैज्ञानिक साधना मे संलग्न रहने वाले व्यक्तियों का इस युग में प्राचुर्य है। अन्य समुन्नत सभ्यताएँ विज्ञान का इतना विकसित रूप देख सकी थीं, इसमे सन्देह है।

किन्तु वैज्ञानिक आविष्करणों से मानव-जाति अपना कितना हित-साधन कर सकी है, यह विषय विचारणीय है। शायद इसी से विक्षुब्ध होकर टालस्टाय और महात्मा गाँधी प्रभृति ख्यातनामा व्यक्तियों ने मानव-जाति को फिर पीछे की ओर लौटने की सलाह दी है और यन्त्र-युग के बहिष्कार मे एवं ग्राम-निवास में ही उसका कल्याण देखा है।

जो हो, वास्तव मे बाहर से देखने में यह प्रश्न बड़ा विस्मय-कर-सा प्रतीत होता है कि इतने-इतने सुख-साधनों को उपलब्ध करके भी मानव-जाति अपने जीवन क्षितिज मे शाप की तरह क्रन्दन करने वाली इन श्यामल मेघमालाओं को दूर करके प्राभातिक किरणों का आवाहन करने मे क्यों नहीं समर्थ हो पायी !..... किन्तु गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर इस प्रश्न की विस्मयकारिता नष्ट हो जाती है !

मानव-जाति की जो वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्था है, वही अनेक क्लेशों की उत्पादिका है। अनेक प्रकार की अशान्तियाँ इस कुत्सित, घृणित और विवेक हीन सामाजिक व्यवस्था से ही सम्भूत होती है। जब तक वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्था मे परिवर्त्तन नहीं होता है और एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना नहीं हो जाती है जिसमे 'योग्यतानुसार परिश्रम और आवश्यकतानुसार पारिश्रमिक' के सिद्धान्त का कार्य रूप में प्रचलन होगा, तबतक इतने-इतने वैज्ञानिक आविष्कार और इतनी-इतनी विज्ञानप्रदत्त सुविधाएँ तो क्या, इनसे सहस्त्रगुणित सुविधाएँ भी यदि प्राप्त हो जायें, तब भी यह पृथ्वी इसी प्रकार हाहाकार, चीत्कार की क्रीड़ास्थली बनी रहेगी !—इसी तरह इस ग्रह मे मरुस्थली की मध्याह्नकालीन सिकताराशि समीरण का शृंगार करती हुई इसकी सुन्दरता बढ़ाती रहेगी।

वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्था मुद्रा पर आधारित है। मुद्रा के अभाव मे भोजन, वस्त्र और गृह हीं नहीं, अन्य अनेकानेक बातों का भी अभाव हो जाता है। आपको किसी सुन्दर और उत्कृष्ट अभिनेत्री का अभिनय देखना है; लेकिन यदि आपकी

जेब मे पैसे नहीं हैं तो आपकी आकांक्षा अपने अस्तित्व का उपहास करती हुई उस दीपशिखा की भाँति बुझ जाने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कर सकती, जो स्नेहहीन दीपक मे प्रज्वलित की जाती है। आप उदास और खिन्न होकर देखियेगा, अभियन-कला से सर्वथा अपरिचित व्यक्ति अपने सहचरो के साथ हँसते हुए, तरह-तरह की हास्यपूर्ण बाते करते हुए बालकनी और फर्स्ट क्लास मे चले जा रहे है. किन्तु आप थर्ड क्लास मे भी नहीं जा सकते! आप चाहे जितने बड़े गायक हों—चाहे अभिनय कला के जितने महान् पारखी और प्रेमी हों, पैसे के अभाव मे आप किसी हालत मे सिनेमा-हाल के अन्दर प्रवेश नहीं कर सकते!

आप राजनीति के बड़े से बड़े विद्वान् हों—दुनिया के समस्त राष्ट्रों के साभ्यतिक उत्थान-पतन से चाहे कितना ही घनिष्ट परिचय क्यों न हो, आप तबतक राजनीतिक क्षेत्र मे अपना स्थान नही बना सकते, जब तक कि आपके पास मुद्राएँ नही है! आप अपने देश से जितना प्रेम रखे—उसके लिए चाहे जितनी कुर्बानियाँ करे,—कारागार की संकीर्ण और दुर्गन्धपूर्ण कोठरियो मे रसमय यौवन के वर्ष व्यतीत करें और अपने सुकोमल शरीर पर पुलिस की लाठियों के प्रहार सहे, आप तब तक महान् देशभक्तों मे नहीं परिगणित हो सकते, जब तक कि आपके पास मुद्राएँ नहीं हो जातीं!

आप बड़े से बड़े विद्वान है, लेकिन एक छोटे से पूँजीपति की कार रास्ते मे आप पार धूल उड़ाती हुई पार हो जाती है। आपके समय का अधिक मूल्य है—आप का प्रत्येक क्षण उन विचारों मे बीतता है जो मानव-जाति को आलोक प्रदान करने की क्षमता

कुछ अंशों में रखते है, किन्तु आपको तो गन्तव्य स्थानों तक पैर घसीटते हुए पैदल जाना पड़ता है और एक ऐसे व्यक्ति को, जिसका पार्थिव अस्तित्व मूर्खता और शारीरिक वासनाओं की परितृप्ति के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानता, वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्था में सुन्दर, मूल्यवान मोटरें मिली हुई है!........अच्छा तमाशा है!

कैसा पागलपन है यह! जो व्यक्ति अधिक से अधिक मुद्राएँ एकत्र कर लेता है, वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्था में समस्त बाह्य सुविधाएँ उसे ही प्राप्त होती है। आप सुमहान् भूतत्त्व-वेत्ता हों और किसी विशिष्ट स्थान पर जाकर आप वहाँ की चट्टानों का निरीक्षण एवं परीक्षण करके मानवी सभ्यता की अग्र-गति मे सहायक हो सकते हों, किन्तु आपको मुद्राओं के अभाव मे तड़प कर रह जाना होगा और एक ऐसा मूर्ख पूँजीपति जिसने विविध उपायों से अपनी लोहे की तिजोरी मे लाख दो लाख मुद्राएँ एकत्रित कर ली है, रेलवे कर्मचारियों के द्वारा सत्कृत सम्मानित होता हुआ फर्स्ट क्लास मे बैठकर ईप्सित स्थान को पहुँच जायगा।

आपको अपने शरीर से अधिक काम लेना पड़ना है और आपका काम मानव-समूह के लिए अत्यधिक आवश्यक है, किन्तु आपको सर्वथा असुन्दर भोजन वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्था मे प्राप्त होता है और एक ऐसे व्यक्ति को, जो गो-सर्ग के विहग-रव-मुखर क्षणों से लेकर गोधूलि तक गद्दी पर बैठकर अपनी एकत्रित मुद्राओं को गिनने के अतिरिक्त और उनकी संख्या विवर्धित करने के उपायों

को सोचने के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य नहीं करता, वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्था में पीने को अंगूर का रस मिलता है और खाने को कागजी बादाम का हलुआ।

मानवी सभ्यता एवं संस्कृति को नूतन तेज और बल प्रदान करने के प्रयासों में संलग्न रहनेवाले व्यक्तियों को वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्था में न अच्छा भोजन मिलता है, न रहने के लिए अच्छा गृह मिलता है, न पहनने के लिये अच्छे कपड़े। लेकिन मुद्राओं के एकत्रीकरण में व्यस्त रहनेवाले व्यक्तियों को नानाविध, सुस्वादु और बलदायक भोजन मिलता है, रहने के लिए समुन्नत और सुन्दर महल मिलता है, पहनने के लिए मिलों के अच्छे से अच्छे कपड़े। किरणदानी कलाकार फटे हुए कपड़े पहन कर यदि सड़कों पर चलता हुआ नजर आता है, तो किसी को इसमें आश्चर्य नहीं होता, किन्तु यदि दो हाथ और दो पैरोंवाला एक पूँजीपति जानवर फटे कपड़े पहनकर सड़क पर चलता हुआ दिखलायी दे जाता है तो लोगों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता।

विज्ञान ने मानव-जाति को अनेकानेक नयी चीजे प्रदान कीं, किन्तु वे चीजे दिखलायी कहाँ देती है ! या तो उच्च पदस्थ सरकारी कर्मचारियों के यहाँ या पूँजीपतियों के यहाँ ! वैज्ञानिकों ने अपनी अनवरत साधना के द्वारा जिन यंत्रों का आविष्कार किया, आपको उन्हीं के घरों मे दिखलायी देगे जिनकी तिजोरियों मे मुद्राएँ है। जिनके मस्तिष्क में बल है और जो अपनी अदम्य बौद्धिक शक्तियों के द्वारा मानव-जाति का सच्चा उपकार कर सकते है, उनके गृहों में आपको ये शायद ही दिखलायी दे।

आप अच्छे से अच्छे गायक है—आपकी कोमल कान्त स्वर-लहरी पक्षियों को भी विमोहित करने की क्षमता रखती है, किन्तु आप यदि किसी गीत पर मुग्ध हो गये हों तो बस मुग्ध ही होकर रह जाइयेगा। ग्रामोफोन की मशीन और उस गीत के रेकार्ड आपको मानव-जाति की वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्था नहीं दे सकती, किन्तु एक कलाहीन, निर्बुद्धि पूँजीपति को ग्रामोफोन की अच्छी से अच्छी मशीन अपने शयन-कक्ष मे रखने के लिए वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्था सहर्ष प्रदान कर देगी।

पैसे है तो आपको खाना भी मिलेगा, पहनने के लिए वस्त्र भी मिलेगे, यात्रा के सामन भी उपलब्ध होंगे और यदि पैसे नहीं है तो भूखों मरिये, नंगे रहिये, मैदानों मे राते काली कीजिये। मानव-समाज आपसे कुछ नहीं चाहता, केवल पैसे चाहता है। आप अपनी बौद्धिक योग्यता अपने पास रखिये। मानव-समाज को उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। आप यदि महान् चित्रकार है तो अपनी कलात्मक कृतियाँ मानव-समाज को प्रदान कीजिये, वह लेने से इन्कार नहीं करेगी। हो सका तो आपकी थोड़ी बहुत प्रशंसा भी कर देगी, लेकिन वस्त्र भोजन, गृह और अन्य जीवनोपयोगी साधन ? मानव-जाति यह सब आपको कुछ भी नहीं देगी।

यदि आप महान् कलाकार है तो मानव-जाति आपके जीवन-काल मे आपका आदर डरते-डरते करेगी—बहुत ही संकुचित रूप मे। क्योंकि उसे भय रहता है, कहीं आदर प्रदान करने के साथ ही साथ वस्त्र, भोजन, गृह प्रभृति भी तो नहीं प्रदान करने पड़ेगे। लेकिन आपकी मृत्यु के उपरान्त वह आपको आसमान पर चढ़ा

देगी। आपको देवदूत और न जाने इसी तरह की कितनी श्रुतिमधुर उपाधियों से विभूषित करना आरम्भ कर देगी।

ऐसी अवस्था मे जब आप देखते है कि मुद्राओं के एकत्रीकरण के बिना निस्तार नहीं है और यदि इस दुनिया मे जीवित रहना है तो मुद्राओं से जेब भरने का प्रयास करना चाहिये, तब आप अपनी अन्य साधनाओं से विरत होकर मुद्रार्जना की ओर प्रवृत्त होंगे ही।

यह एक कटु सत्य है कि दार्शनिक, कलाकार और वैज्ञानिक मुद्रार्जन-कार्य मे सर्वथा अक्षम होते है, क्योंकि उस निम्नस्तर तक उतरना उनके लिए असम्भव है, जहाँ बैठकर मानव-जाति के अन्य सदस्य अपनी तिजोरियां गरम करते है।

इसका परिणाम यह होता है कि जो लोग सामान्य है, वे अन्य प्राणियों की तरह कुछ वर्षों तक जीवित रहने एवं सन्तानोत्पादन करने के उपरान्त मर जाते है. जो असामान्य है, वे धनाभाव की प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण कुछ नहीं कर पाते। रह गये वे लोग जो न सामान्य है और न असामान्य। जो धूर्त और प्रपंच-प्रवीण है, वे पर्याप्त मुद्रार्जन करते रहते है, महलों का निर्माण कराते रहते है या फिर सैनिक-शक्ति का संगठन करके राज्य-विजय करते फिरते है—राष्ट्रीयता की आधारहीन भावनाओं का जनसाधारण मे प्रसार करके उनके खून की नदियों मे अपने साम्राज्य की स्थापना करते है।

इतनी-इतनी वैज्ञानिक प्रगति के होते हुए भी मानव-जाति का जीवन इतना दुःखयुक्त है, इसका एक कारण वर्तमान सामा-

जिक व्यवस्था कैसे है, यह स्पष्ट हो गया होगा। मुद्रा-प्रथा के बहिष्कारके बिना मानव-जाति वर्त्तमान विचित्र और रौरवोपम क्लेशों से परित्राण नहीं पा सकती।

तिजोरियों के अन्दर रहनेवाले रुपयों से न तो अन्न उत्पन्न होता है, न कपड़े उत्पन्न होते हैं और न दुनिया की और कोई भी चीज उनसे बन पाती है ! मानव-जाति ने वस्तु-विनियम की सुविधा के लिए इसका प्रचलन किया था, लेकिन मानव-जाति के भाग्याकाश में श्रावणी मेघों की भाँति भयावह कालिमा रहने के कारण इसने अपना वर्त्तमान जघन्य स्वरूप ग्रहण कर लिया है।

जो हो, मुद्राएँ अपने वर्त्तमान महत्त्वपूर्ण पद तक चाहे जिस प्रकार पहुँची हों, इनको अन्तिम नमस्ते करना ही पड़ेगा ! न जाने कितने-कितने व्यक्ति अपनी शक्तियों को मुद्रार्जन के समान निरर्थक कार्य में व्यर्थ ही बरबाद कर रहे ! वे अपनी शक्तियाँ यदि अन्य कार्यों में लगाये तो मानव-जाति का प्रभूत उपकार हो सकता है, किन्तु बुभुक्षित और गृहहीन रहना कौन पसन्द करेगा ? प्रत्येक व्यक्ति अधिक से अधिक मुद्राएँ एकत्रित करना चाहता है, चाहे जैसे भी हो क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति देखता है कि जिसके पास जितने ही रुपये होते हैं, वह उतना ही समादृत तो होता ही है, साथ ही सुख के साधन भी उसे उतने ही अधिक उपलब्ध होते हैं। जो अधिक वेतन पाता है, वह कम वेतन पानेवाले को अवहेलना की दृष्टि से देखता है क्योंकि वह जानता है कि मानव-जाति जिस चीज को सर्वाधिक महत्व प्रदान करती है, वह उसके पास अधिक है।

जिनके पास अधिक पैसे हैं—जिनकी तिजोरियों मे अधिक मुद्राएँ है, वे निर्धन व्यक्तियों को जिस अवहेलना की दृष्टि से देखते है, वह वास्तव में निरीक्षण करने योग्य है। अभी कल रात की ही बात है। मेरे घर के बगल में ही एक पूँजीपति के लड़के की शादी हो रही थी; विवाह की खुशी मे लागों को निमन्त्रण दिया गया था। वहाँ मैंने जब रजत मुद्राओं के सञ्चयन-कार्य मे सफल हो जाने वाले व्यक्तियों को रजतमुद्राओं के सञ्चयन-कार्य मे असफल हो जाने वाले व्यक्तियों की ओर एक विचित्र उपेक्षा का भाव प्रदर्शित करते देखा तो कोशिश करके भी अपनी हँसी न रोक सका—इस ग्रह के मानवों की महत्ता और लघिमा के मापदण्डों को देखकर !

समाजवादी स्थापना से मानव-जाति के अनेक क्लेश दूर हो जायँगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। व्यर्थ के पागलपन से भरे हुए अनेक क्रिया-कलाप भी नष्ट हो जायँगे। क्षुधा-निवारण की एवं इसी प्रकारकी अन्य अस्तित्व-रक्षासम्बन्धिनी चिन्ताएँ नष्ट हो जायँगी। प्रत्येक व्यक्ति सोने के पहले अपने पेट को भरा हुआ पा सकेगा और प्रातःकाल शय्या त्याग करने के बाद अपने को उन नारकीय चिन्ताओं के भार से मुक्त, जो आज कोटि-कोटि मानवों को संत्रस्त कर रहे है !

वर्तमान सामाजिक व्यवस्था मानव-जाति को जो जीवन-प्रणाली प्रदान करती है, उसमे और अन्य पशुओं की जीवन-प्रणाली में कोई महत्त्वपूर्ण अन्तर नहीं है। अन्य पशु भी प्रतिदिन क्षुधा-निवारण के लिए आमरण-काल मे प्रयत्नशील रहते हैं और फिर

कार्य-परिश्रान्त होकर सो जाया करते है। बुद्धिसम्पन्न मानव भी इसके अतिरिक्त और क्या कर सकता है! प्रभात हुआ। सूर्य की किरणें गिरि-शृंगों को आलोक का मुकुट पहनाती हु दूर देश से आ पहुँची। मनुष्यों ने अपने-अपने शयनस्थलों से बाहर निकलना आरम्भ किया। जो दूकानदार है, वह दूकान की ओर जा रहा है—जो घूम-घूमकर कोई चीज बेचने वाला है, वह फेरी की तैयारियाँ कर रहा है। जो सेठों या अन्य व्यक्तियों के यहाँ नौकरी करते है, वे भी बेचारे चुपचाप विभिन्न गद्दियों की ओर चले जा रहे है। सब का उद्देश्य है मुद्राओं की प्राप्ति करना, ताकि रोटी और वस्त्र के प्रश्न हल हो सके।

किन्तु यदि ये लोग कोई ऐसा कार्य करते जिससे मानव जाति का वास्तविक लाभ होता, तब तो कुछ कहना भी था, लेकिन नगरों मे अधिकांश व्यक्तियों के प्रयास सर्वथा निरर्थक होते है। जो कपड़े बेचता है, वह दूकान खोलकर दिन भर ग्राहकों की प्रतीक्षा करते रहने के अतिरिक्त और उन्हे ठग कर उनसे अधिक पैसे वसूल करने की चिन्ताओं मे व्यस्त रहने के अतिरिक्त और क्या करता है! फिर भी उस निरर्थक व्यक्ति को वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्था सब प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करती है क्योंकि अपनी कार्य-प्रणाली द्वारा मुद्राएँ एकत्रित कर लेने मे समर्थ हो जाता है। कार्य-प्रणाली की सार्थकता और निरर्थकता से वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्था का कोई सम्बन्ध नहीं।

क्या सारे के सारे शहर का काम चार-पाँच वृहद् कपड़ों की दूकानों से नहीं चल सकता था! मै यह बात उन शहरों के लिए

कह रहा हूँ, जो छोटे है । कुछ बड़े शहरों के लिए १७–१८ दूकाने काफी है। बड़ी दूकान हो। काफी कर्मचारी हों। बस काफी है। लेकिन एक-एक शहर मे ये जो हजार-हजार, पाँच-पाँच सौ कपड़े की दूकाने खुली हुई है और दूकानदार लोग दिन भर बैठ कर ग्राहकों की प्रतीक्षा किया करते है, यह क्या है ? क्या इससे मानव-समाज की महती हानि नहीं हो रही है ? ये लोग भोजन करते है, भूखे नहीं रहते। कपड़े पहनते है, नंगे नहीं रहते। यदि अधिक पैसे एकत्रित कर लिये तो अच्छे-अच्छे गृहों मे रहते है। लेकिन बदले मे ये मानव-समाज को क्या देते है ? इनके परिश्रम से मानव जाति का क्या उपकार होता है ?

शहरों मे सैकड़ों आदमी दिन भर मलाई-बरफ, खोन्चे, चिनिया बादाम, काबुली चने, तिलकुट और इसी तरह के न जाने कितने-कितने विचित्र खाद्य पदार्थ लेकर घूमा करते है और जनता के स्वास्थ्य को बरबाद करते है। इनकी कार्य-पद्धति इनके लिए भी भी कुछ कम श्रान्तिकर नहीं है। कुछ कम परिश्रम उन्हे नहीं करना पड़ता। पहले तो बेचारे चीजें तैयार करते है। फिर उन्हे सिर पर उठाते है और शहर की गली-गली मे आवाज देते हुए घूमते-फिरते है। यदि इन सैकड़ों व्यक्तियों को किसी अच्छे निर्माणात्मक कार्य मे लगाया जाय तो क्या नगर-निवासियों का प्रभूत उपकार-साधन नहीं हो सकता।

वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्था मे अधिकांश व्यक्तियों का श्रम व्यर्थ तो जाता ही है, साथ ही मानव-जाति की वह हानि भी करता जाता है ? मुद्रा-प्रथा ही वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्था

का आधार है। इस आधार को नष्ट किये बिना किसी प्रकार के सुख-सौविध्य की आशा करना नितान्त निरर्थक है। इसी प्रथा के कारण इतनी-इतनी विचित्र कार्य-प्रणालियाँ दिखलायी दे रही है और मानव-जाति अपनी कार्य-शक्तियों को व्यर्थ के कार्यों मे नियोजित करती हुई हाहाकार कर रही है!

रुपयों का हिसाब रखने मे कितने-कितने मानवों की शक्तियों का दुरुपयोग नहीं हो रहा है। मुनीमों, क्लर्कों प्रभृति से यदि वस्त्र-निर्माण, गृह-निर्माण एवं इसी प्रकार के अन्य निर्माणात्मक कार्य लिये जायँ तो समाज के अनेकानेक अभावों की अभिपूर्ति हो सकती है।

मानव-जाति के दुःख तो कभी दूर होंगे ही नहीं। यह ग्रह अपने मायामय बन्धनों के द्वारा बन्दियों को सदैव पीड़ित करता रहेगा—जब तक अवधि समाप्त नहीं हो जाती। लेकिन बन्दियों ने जान बूझकर जो क्लेश मोल लिये है, उनसे परित्राण पाया जा सकता है! वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्था का नाश करके समाजवाद की स्थापना करने से अनेकानेक मानव-आमंत्रित क्लेश के क्रन्दनरव से यह ग्रह मुक्त हो जायगा—यह मेरा सशक्त विश्वास है।

लेकिन केवल समाजवाद की संस्थापना से ही सब कुछ नहीं हो जायगा। उसके बाद ही तो महत्त्वपूर्ण कार्यों का आरंभ होता है। समाजवाद मनुष्यों को पशुओं की श्रेणी से ऊपर उठायेगा। कुत्तों की तरह रोटी के टुकड़ों के लिए लड़ने-झगड़ने की प्रवृत्ति का नाश करेगा। आज मानवों का सारा का सारा समय रोटी, वस्त्र,

गृह प्रभृति समस्याओं को हल करने में नष्ट हो जाता है—बहुत कम व्यक्ति महत्वपूर्ण कार्यों के लिए समय निकाल पाते है !

समाजवाद की स्थापना हो जाने पर लोगों को काफी समय मिला करेगा। आज की तरह तो कुछ व्यक्ति गद्दी पर बैठकर निशि-वासर मक्खियाँ नहीं मारते रहेंगे और कुछ व्यक्ति रात-दिन मिलों मे अपने स्वास्थ्य का खून नहीं करते रहेंगे। श्रम का समुचित वितरण हो जाने से प्रत्येक मनुष्य को अपना विकास करने का अवसर मिल सकेगा।

वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्था मे मनुष्य केवल जीवित रह पाता है, कुछ कर नहीं पाता है, क्योंकि उसका सारा का सारा समय रोटी का सवाल हल करने मे ही नष्ट हो जाता है। आत्मा की ओर और बुद्धि की ओर ध्यान देने का समय ही नहीं मिलता।

रोटी का सवाल हल करने और सन्तानोत्पादन करने के अतिरिक्त आज के मानव और क्या जानते है ?—क्या जानना चाहते है ?

समाजवाद की स्थापना हो जाने के बाद विवाह-प्रथा और शिक्षा-प्रथा में पर्याप्त परिवर्तन करना होगा। ये दोनों प्रथाएँ आज अपने घृणित स्वरूप के कारण मानव-समाज की महती हानि कर रही है। इनमे आमूल परिवर्तन करना होगा। वर्त्तमान विवाह-पद्धति और वर्त्तमान शिक्षा-पद्धति जिस घातक विवेकहीनता पर आधारित है, वह मानव-जाति का प्रभूत अपकार कर चुकी है, अब उससे मुक्त होकर आगे कदम बढ़ाने का प्रयास करना ही श्रेयस्कर होगा।

प्रकृति के नियमों का ज्ञान विगत कतिपय शताब्दियों की अपेक्षा इस बीसवीं शताब्दी मे मानव-जाति को अधिक उपलब्ध है, लेकिन दुर्भाग्यवश इसी शताब्दी मे उन नियमों के प्रतिकूल आचरण भी अधिकता से हो रहा है। इस ग्रह के सभी मानव-अधिकृत भाग उन व्यक्तियों से भरे पड़े है जो प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करके प्रतिदिन अपने जीवन-पथ की दीपमाला को एक-एक करके निर्वापित करने मे लगे हुए है। नगरों मे ही नहीं, छोटे-छोटे ग्रामों मे भी अब इस प्रकार का विपर्यय देखने में आने लगा है।

इसी कारण अन्य शताब्दियों की अपेक्षा आज के मानवों की अवस्था वाह्य दृष्टि से सम्पन्न होते हुए भी अधिक हीन है। आज के चिन्तातुर, दुःखी, भयभीत और उन्माद-ग्रस्त मानव विगत शताब्दियों मे शायद ही रहे हों! उन्मादियों की संख्या तो इस शताब्दी में खूब बढ़ी है। अमेरिका आज इस ग्रह का सबसे अधिक सम्पन्न देश माना जाता है, लेकिन उन्मादियों की जो संख्या वहाँ है, उसे देखते हुए आश्चर्य और विक्षोभ से हृदय भर-सा जाता है। चिकित्सा-पद्धति की उन्नति ने रोगों की जो उन्नति की है, वह सर्वविदित है, और सबसे बड़ी बात तो यह है कि इस ग्रह के अधिवासियों को बहुत कुछ अंशों मे यह मालूम हो गया है कि किन-किन स्थानों पर उन्होंने प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करके कौन-कौन-सी व्याधियाँ मोल ली है, फिर भी वे अपनी आदत नहीं छोड़ पाते! एक तो पहले से ही इस ग्रह का वातावरण अज्ञान के घातक अन्धकार से आक्रान्त था, उस पर प्रकृति के नियमों के इस उल्लंघन ने तो उसे और भी भीषण रूप प्रदान कर दिया है।

वर्त्तमान सभ्यता के मूलाधारों में ही पर्याप्त सुधार की आव-
ा है, अन्यथा मानव-जाति अन्धकार में इसी प्रकार चीखती,
ाती रहेगी! वस्तुवाद को जो स्थान इस समय प्राप्त है,
सत्यवाद को प्रतिष्ठित करना पड़ेगा। उसके श्री-चरणों की
का कार्य वस्तुवाद को मिलेगा। हमारा पारिपार्श्विक वातावरण
जीवन मे यदि प्रधानता ला चुका है, हमारा पतन-पथ प्रशस्त
हा है! इस वातावरण का निर्माण माया के द्वारा हुआ है!
्वयं एक छलना है—प्रवञ्चना है—व्यामोह है। हमारा देश कहीं
है; हमारा घर कहीं और है; हमारी राह कहीं और। हम इस
ा को अपना देश मानकर अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारने की
ा कर रहे हैं। इस पराये वेश्म को अपना चिरन्तन आवास-स्थल
कर हम अपना सत्यानाश कर रहे हैं। अपनी राह तक
ने की इस राह को यदि हम अपनी राह के रूप मे देख रहे
ा यह हमारे लिए अतीव घातक सिद्ध होगा।

जीवन की समस्त बाधाओं, विपत्तियों को कुचलते हुए, रौंदते
हमे कदम बढ़ाना होगा। प्रतिपल, प्रतिक्षण, निशि-वासर।
सत्य की सम्यक् विवेचना करते हुए, अपनी खोयी मंजिल
ाप्त करने की कामना जब तक अहर्निश हमारे प्राणों में प्रज्व-
नहीं रहेगी, तब तक हमारा जीवन यों ही मरुस्थली के
्त-पथिक की तरह रक्तोद्गीरण करता रहेगा और हम खड़े-
भीति-संत्रस्त मृगी की भाँति देखते रहेंगे।

एक विचित्र उन्माद धारा चारो ओर छायी हुई दिखलायी
ड़ी है। निरर्थक कार्यों में सब के सब व्यस्त दीख पड़ते हैं।

कुछ ही वर्षों के उपरान्त वर्त्तमान शरीर या तो कब्र के अन्दर चला जायगा या श्मशान के चिता-धूम के द्वारा आलिङ्गित होगा, यह जानते हुए भी उन्हीं वस्तुओं के उपार्जन की आप्राण चेष्टाएँ हो रही हैं जिनकी उपयोगिता इसी शरीर-धारण काल तक सीमित है। उसके बाद उनका अस्तित्व नितान्त निरर्थक हो जायगा, सर्वथा सारहीन। हम स्वयं भी नहीं पहचान सकेंगे कि ये वस्तुएँ हमारी हैं या किसी और की!

फिर भी कहीं साम्राज्यों की स्थापना के प्रयास हो रहे हैं—कहीं कोटयाधीश बनने की तैयारियाँ हो रही हैं—कहीं क्या हो रहा है!

मानव-जाति यदि अपना कल्याण चाहती है तो उसे इन उन्माद-धाराओं पर मार्त्तण्ड की प्रखर किरणें बरसानी होंगी। इन विचित्र और उन्मादपूर्ण जीवनचर्य्याओं का पूर्ण त्याग करना होगा। सारे के सारे ग्रह को एक बार फिर से संशोधित करना पड़ेगा। शताब्दियों से मानव-जाति जिस प्रकार का जीवन यापित करती आ रही है, वह उसके सच्चे विकास के लिए अतिशय घातक है!—अतिशय अहितकर!

वर्तमान समाज में मुद्राओंके संकलन-कार्यको जो सर्वाधिक महत्व प्रदान किया गया है, यह बात इस ग्रह के किसी एक देश के लिए नहीं, सारे के सारे सभ्य जगत् के लिए लागू है! धनाभाव में मानवी सभ्यता के वास्तविक उन्नायकों को सर्वत्र कठिनाइयों का सम्मुखीन होना पड़ता है। चाहे वे यूरोप में हों, चाहे एशिया में।

धनाभाव में वैज्ञानिकों, कवियों एवं दार्शनिकों को जो कष्ट सहने पड़े हैं, वे विश्व के इतिहास में मानव-जाति के इतिहास को

ा-सा स्थान प्रदान करेंगे, समझ में नहीं आता! कहीं किसी ाकार को क्षुधाग्रस्त होकर आत्महत्या कर लेनी पड़ी है, कहीं ी सुन्दरी गायिका रमणी को विवश होकर वेश्यावृत्ति स्वीकार लेनी पड़ी है! प्रसिद्ध दार्शनिक स्पिनोजा का जिस समय ्टर के द्वारा गला घोंटा जा रहा था, उस समय यदि किसी र ग्रह का अधिवासी इस ग्रह पर आता और उस दृश्य को ने बाद किसी अविवेकी धनपति के महल में जाकर डाक्टर उसकी खुशामद करते हुए देखता, तो शायद इस ग्रह को पागलों देश समझ कर वह यहाँ से सीधा अपने ग्रह को ग गया होता——छूत लग जाने के भय से!

सचमुच, इस ग्रह के अधिकांश दुःखों, क्लेशों का समुद्भव नव-जाति के द्वारा ही हुआ है और ये सच्चे प्रयास से दूर भी ये जा सकते हैं। विश्व के अन्य ग्रहों, उपग्रहों के सम्बन्ध में अज्ञान छाया हुआ है, वह तो रहेगा ही, किन्तु इसके अति-ित जो सहस्रों प्रकार के नूतन क्लेश उत्पन्न कर लिये गये हैं, दूर हो सकते हैं।

इस ग्रह की सबसे बड़ी शक्ति सैनिक शक्ति है और इस पर धिकार-स्थापना करके ही पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के दुर्ग धराशायी किया जा सकता । केवल सद्भावनाओं के प्रचार कुछ नहीं होने का। महात्मा गांधी और टालस्टाय प्रभृति की र्यपद्धति सर्वथा निरर्थक है। उनसे किसी प्रकार के लाभ की शा से निराशा ही होगी।

इस भयावह तिमिराकीर्ण अवस्था मे, जब कि अन्तरिक्ष के ज्योतिष्क-कुमारों की मुसकान भी सघन श्याम वारिदमालाओं के द्वारा अपहृत हो गयी है, हमें सुदूरवर्ती प्रकाश की आवृत किरणे दिखला रही हैं। वहाँ तक पहुँच कर अपने खोये मार्ग का ज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा ही हमारा लक्ष्य होना चाहिये। शेष समस्त कामनाएँ—समस्त तथाकथित महत्वाकांक्षाएँ निरर्थक है, पागलपन से और घातक अज्ञता से भरी हुई हैं। उस ज्योतिर्मयी उषा के पास पहुँचने का सर्वोत्कृष्ट और वर्तमान परिस्थितियों के लिए एकमात्र उपाय है, प्रकृति के नियमों को समझ कर उनके अनुकूल आचरण करते हुए—अपने भौतिक परिधान की शक्ति एवं सामर्थ्य की सम्यक् वृद्धि करते हुए—वहाँ तक पहुँचने का प्रयास करना। शरीर की अवहेलना करके वहाँ तक पहुँचने की आशा करना व्यर्थ है। ऐसा करने का अर्थ होगा अपना सर्वनाश !

प्रकृति के नियमों का ज्ञान हमें विज्ञान से प्राप्त होगा क्योंकि प्रकृति के मानव-सम्बद्ध नियमों का ज्ञान ही विज्ञान है। इस सौर-मण्डल से परे नियमों के सम्बन्ध में विज्ञान कुछ भी नहीं जान सकता। वहाँ वह सर्वथा अशक्त है। लेकिन हमें अभी तो यहाँ के नियम-बन्धनों से मतलब है और विज्ञान के द्वारा यह कार्य सरलता-पूर्वक सिद्ध हो सकता है। हमारे शरीर को किस प्रकार की वायु की, किस प्रकार के भोजन की एवं किस प्रकार की जगह की आवश्यकता है, इसका निर्धारण विज्ञान के द्वारा सरलतापूर्वक हो सकता है। हमारे विकास के पथ में सबसे पहली आवश्यकता इसी के निर्धारण की है। हमारे इस भौतिक यंत्र की शक्तियां इन्हीं

पर अवलम्बित है, अतएव इनकी अवहेलना करने का तात्पर्य अपने भौतिक यंत्र की अवहेलना करना होगा जिसका परिणाम घातक सिद्ध हो सकता है।

मानव-जाति के अधिकांश सदस्यों के जीवन की अक्षमता, असामर्थ्य एवं अशक्तियों का कारण इसी जगह मिल सकता है। नगरों का निर्माण इतने भद्दे और अस्वास्थ्यकर तरीकों से हुआ है कि शुद्ध और प्राणप्रद वायु का वहां प्रवेश होना ही कठिन है! जो आवश्यकता से अधिक धनसम्पन्न हैं, उनके लिए तो नगरों से बाहर खुले हुए स्थानों मे सुरम्य बंगले बने हुए हैं, लेकिन अन्य सबों को नगरों के उन्हीं गन्दे, घृणित घोंसलों मे रह कर जीवन-यापन करना पड़ता है और इसी कारण शारीरिक एवं बौद्धिक ह्रास की वृद्धि होती चली जा रही है। सुमहान् नगरों के निर्माण से मानव-जाति का जो लाभ हुआ है, वह उपेक्षणीय नहीं है, लेकिन जो हानि हुई है, वह उससे अधिक ध्यान देने योग्य है!

यह लिखकर मै नगरों के चिरकालिक विनाश पर नहीं, उनके पुर्ननिर्माण पर जोर दे रहा हूँ। वैज्ञानिक तरीके से बसाये गये नगर ही शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के लिए हितकर सिद्ध हो सकेंगे।

यदि क्षुद्रस्वार्थ की संकीर्ण भावनाओं का परित्याग करके समस्त मानव अपने इस ग्रह को सुन्दर रूप प्रदान करने के लिए बद्धपरिकर हो जायँ, तो वास्तव में बहुत कुछ हो सकता है! आज हमें जो कठिनाइयाँ मालूम हो रही हैं,—अपने जीवन-पथ में जो अनेकानेक प्रकार के दुःख अपरिहार्य-से प्रतीत हो रहे हैं, वे शीघ्र ही कपूर की गन्ध की तरह न जाने कहाँ विलीन हो जायँगे।

हमारे जीवन-पथ मे प्रकाश की धारा वैसे ही बरस पड़ेगी, जैसे एकाएक बादल फट गये हों और उनमें से पूर्णिमा का मयंक निकल आया हो !

लेकिन यह तब तक संभव नहीं है, जब तक सारी पृथ्वी के निवासियों को अपने वास्तविक अभावों का ज्ञान न हो जाय। जब तक राष्ट्रीयता, जातीयता और इसी प्रकार की भावनाओं से मानव मस्तिष्क आक्रान्त रहेंगे, तब तक ऐसा होना नितान्त असम्भव है।

मुझे कभी-कभी तो इस बात पर बहुत ही आश्चर्य होता है कि क्यों मानव-जाति अभी तक इस प्रकार का पागलपन कर रही है ! वह जानती है कि दुनिया का कोई भी साम्राज्य स्थायी नहीं रहा है—कोई भी व्यक्ति चिरकाल के लिए नहीं रह पाया है, फिर भी धन-वृद्धि और साम्राज्य-वृद्धि के प्रयास निरन्तर जारी हैं। दूसरे ग्रहों के अधिवासी यदि मानव-जाति के इस हाहा-कार भरे पागलपन को देखते होंगे तो उन्हें हंसी तो शायद ही आती हो, हाँ, यहाँ की कारुणिक अवस्था देखकर उनकी आँखों में आँसू अवश्य भर आते होंगे।

साम्राज्य-वृद्धि या धन-वृद्धि का उद्देश्य सुख-वृद्धि है, लेकिन इन दोनों से ही सुख की वृद्धि हो पाती है, अनुभव ने इसे खण्डित कर दिया है। दुनिया के जिन राष्ट्रों के पास साम्राज्य है और धन है, उनके नागरिकों की स्थिति पर विचार कीजिये। स्पष्ट मालूम हो जायगा कि उनकी जीवन-धारा मे भी वही विष मिश्रित है जो दरिद्र देशों के निवासियों की जीवन-धारा में। धनार्जन से ही यदि सुखार्जन भी संभव हो सकता तो पूँजीपतियों के वेश्म

सुख के निकतेन बन गये होते, लेकिन वहाँ भी दुःखों का वही सैकत नृत्य दृष्टिगत होता है !

फिर भी, मानव-जाति क्यों साम्राज्य-वृद्धि और धन-वृद्धि के उन्मादग्रस्त प्रलोभनों का परित्याग करके ऐक्य--सूत्र में आबद्ध नहीं होती--क्यों वह अभी तक उसी रा[illegible] मे ही अपना कल्याण समझ रही है जिसकी निस्सारता शताब्दियों के अनुभव के द्वारा प्रमाणित हो चुकी है--क्यों वह साम्राज्य-वृद्धि या धन-वृद्धि जैसे निरर्थक कार्यों से विरत नही होती, जब कि नेपोलियन, सिकंदर, अशोक प्रभृति की और महमूद गजनी, सेठ अमीचन्द पभृति की मरण-कथा उसके समक्ष है !

इसे मानव-जाति का दुर्भाग्य और उसका पागलपन नहीं कहा जाय तो और क्या कहा जा सकता है !

सचमुच, इस ग्रह का वह स्वरूप आज की अपेक्षा कितना हितकर होता जब कि सर्वत्र सुन्दर और वैज्ञानिक पद्धति से बने हुए नगर दृष्टिगत होते--सर्वत्र स्वस्थ और वैज्ञानिक रीति से पालित पोषित नागरिक दिखलायी देते--स्वतंत्रता के अपहरण की समस्त भीतियाँ कर्पूरायित हो गयी होतीं। प्रत्येक बन्दी के समक्ष उन्मुक्त वातावरण रहता ! भोजन और वस्त्र की वे चिन्ताएँ, जो निशिवासर मानवों के मानस-प्रदेश मे छायी रहती है, उस समय नष्ट हो गयी होतीं और आत्मिक उन्नति के लिए पर्याप्त समय सब को मिल पाता !

कारागृह तो यह है ही। किन्तु इसको भी कुछ अंशों तक सुन्दर बनाया जा सकता है। और यदि सुन्दर नहीं बनाया जा

सकता तो कम से कम उन कठिनाइयों को तो दूर किया ही जा सकता है जो उन्नति-पथ में भोजन और वस्त्र प्रभृतिका प्रश्न बन कर आती है।

हमें यहाँ से मुक्त होना है। हमारी मंजिल खो चुकी है। जैसे भी हो, उसे प्राप्त करना है। एक तो पहले ही हमारे पथ में अनेकानेक काँटे बिखेर दिये गये हैं और हमारे दीपकों को बुझा कर निविड़तम अन्धकार कर दिया गया है ताकि हम अपने गन्तव्य पथ को पहचानना तो दूर, अपने बन्धनों को भी नहीं पहचान सकें—केवल उनकी पीड़ा से कराहते और चीखते रहें। उस पर हमने जान-बूझकर अपने चरणों को परिश्रान्त करना आरम्भ कर दिया है। न उनकी थकावट दूर होगी और न हमारे कदम आगे बढ़ सकेंगे। न रोटी और वस्त्र प्रभृति का सवाल हल कर सकेंगे और न हमें अपनी मुक्ति का मार्ग सूझेगा।

मानव-जाति नीचे की ओर जा रही है, इस कष्टप्रद सत्य की अवहेलना से कोई लाभ की आशा नहीं है। उसे अपने को रोकना चाहिये और अपने जीवन की पद्धति में एवं अपनी विचार-पद्धति में पर्याप्त संशोधन करना चाहिये, तभी उसका कल्याण है। विज्ञान ने निरपेक्ष सत्य पर प्रकाश डालने मे अपनी असमर्थता की घोषणा भले ही कर दी हो, लेकिन इस ग्रह की जीवन-चर्या का पथ-प्रदर्शन उसी के द्वारा अच्छी तरह हो सकता है। उसके द्वारा जो सुविधाएँ उपलब्ध हुई है, उनका उचित उपयोग करने की क्षमता भी मानव जाति को प्राप्त करनी चाहिये।

वर्त्तमान सभ्यता के मिथ्यातत्व पर अधिक प्रकाश डालने की आवश्यकता मुझे नहीं प्रतीत होती। जिन लोगों ने विशुद्ध प्रणाली

से इसका अध्ययन एवं निरीक्षण किया है, वे इसकी असुन्दरता से भयभीत हो उठे हैं। वर्त्तमान सभ्यता के समस्त आधार-स्तम्भ प्रवञ्चनाओं से पोषित परिपालित हो रहे हैं। राजनीतिक स्तम्भ हों, चाहे अर्थनीतिक—धार्मिक आधार-स्तम्भ हों, चाहे साहित्यिक ! जर्मनी के ख्यातनामा विद्वान डाक्टर मैक्स नारडू ने Conventional lies of modern civilization नामक पुस्तक मे राजनीतिक, अर्थनीतिक एवं धार्मिक मिथ्यात्व पर अच्छी तरह से प्रकाश डाला है।

जीसस क्राइस्ट की यह बात कि कोई व्यक्ति एक साथ ही अपने शरीर की ओर अपनी आत्मा की रक्षा नहीं कर सकता, जरा समझने योग्य है। अन्य धर्मोद्भावकों ने इस बात पर जोर भी दिया है कि शरीर और आत्मा दोनों की ओर एक साथ ध्यान नहीं दिया जा सकता। बहुतों ने शरीर को नाना प्रकार के कष्ट देने को ही आत्मिक उन्नति का सर्वोत्कृष्ट साधन समझ लिया। शरद की तिमिराकीर्ण विभावरी मे नंगे बदन खुले हुए स्थानों मे बैठना, ग्रीष्म मध्याह्न में चारो ओर पञ्चानल-माला प्रज्वलित करके आराध्य देवता का नाम जपना—महीनों तक उपवास करना—इसी प्रकार की साधनाओं के आत्मिक उत्थान के लिए सर्वाधिक उपयुक्त समझने वाले व्यक्ति इस ग्रह मे कम नहीं हुए हैं। कपिल वस्तु के सत्यान्वेषी राजकुमार ने भी आरम्भ मे इसी प्रकार की साधनाएँ की थीं।

'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' को मानने वालों मे भी इसका प्राधान्य कभी-कभी रहा है।

शरीर और आत्मा का इस ग्रह मे एक प्रकार से अन्योन्याश्रय सम्बन्ध-सा स्थापित हो गया है। एक की क्षति का प्रभाव दूसरे

पर पड़े बिना नहीं रहेगा। शरीर के रोगाक्रान्त होने से बुद्धि रोगाक्रान्त होगी और बुद्धि के रोगाक्रान्त होने से आत्मा क मक्ति-पथ मे बाधा पहुँचेगी। जो व्यक्ति यह समझता है कि आत्मघात कर लेने के उपरान्त तो शरीर के बन्धन से मुक्ति तो हो ही जायगी, फिर इस विश्व-पथ में अपनी जो राह होगी, वह पकड़ ली जायगी, वह गलती पर है। भौतिक शरीर से विमुक्त होने पर भी आत्माएँ तब तक अपनी नष्ट चेतना को नहीं प्राप्त कर सकतीं जब तक कि इस ग्रह के वातावरण से—या इस सौर मण्डल के वातावरण से वे बहिर्गत नहीं हो जातीं! यहाँ के वातावरण में ही वह खुमारी है—वह नशा है, जो सारी चेतना अपहृत कर लेता है! भौतिक शरीर से विमुक्त होने के बाद भी अधिकांश आत्माएँ अज्ञान-कारारुद्ध ही रहती है, इसके प्रमाण पहले ही दिये जा चुके ह।

जब तक इस भौतिक शरीर से हमारा सम्पर्क है, तब तक इसको किसी प्रकार की बाधा न पहुँचाते हुए, एवं इससे भी किसी प्रकार की बाधा न प्राप्त करते हुए आगे कदम बढ़ाना पड़ेगा। इसकी अवहेलना करने से स्वभावतः यह रोगाक्रान्त होगा और तब हमारे मुक्ति-पथ मे इससे बाधा पहुँचेगी। इस ग्रह के इतिवृत्त में एक युग ऐसा भी आया था जब लोगों ने शरीर को अपनी आत्मिक उन्नति के लिए नाना प्रकार के कष्ट दिये है। किसी ने अपनी आँखें फोड़ ली है—किसी ने अन्य अंग को नष्ट कर लिया है! लेकिन इन क्रियाओं से लाभ के स्थान पर हानि ही अधिक होती है। जीसस क्राइस्ट के द्वारा प्रचारित धर्म के अनुयायियों में भी इस शारीरिक तपस्या-वृत्ति का प्राधान्य देखने में आया है। जैन धर्म के अनुयायियों को तो अपने तपस्वियों पर नाज है!

आल्डस हक्सले प्रभृति विचारकों ने जीवन को प्यार करने की सलाह मानव-जाति को दी है और इस बात पर भी जोर दिया है कि मानव-जाति मानव-जाति ही रहे, उससे ऊपर उठने की चेष्टा न करे। स्पिनोजा के ये कीड़े मकोड़े देवता नहीं हो सकते; उन्हे अच्छे और जीवनमय कीड़े मकोड़े बनकर ही रहना ठीक है, लाभकारी भी। जीवन का पूर्ण सुखोपभोग करने की सलाह इन लोगों ने दी है। आल्डस हक्सले ने तो पास्कल नामक एक निबन्ध में जीवन का पूर्णोपभोग करने पर अधिक जोर दिया है। किन्तु दुर्भाग्यवश उन्होंने यह सोचने का कष्ट नहीं किया कि इस ग्रह के समस्त अधिवासी जीवन का उपभोग करने की ही चेष्टा करते हैं--जीवन के सुखोपभोगों को ठुकराकर सत्य-साधना मे अपने को निवेदित करनेवाले दार्शनिकों, कलाकारों या वैज्ञानिकों की संख्या ही कितनी होती है! सब के सब तो जीवन का उपभोग करने का ही बहुमुखी प्रयास करते रहते हैं। लेकिन कितने ऐसे हैं, जो मृत्यु के विषयुक्त पात्र को ओठों से लगाने के पहले बलपूर्वक यह कह सकें कि हमने अपने जीवन मे सुखोपभोग करने मे सफलता प्राप्त की है? गेटे की तरह प्रत्येक व्यक्ति मरण-मुहूर्त्त के समय यदि अपने अतीत-जीवन पर विचार करे तो उसे दुःखों के रौरव-रव मे सुख की बहुत कम वंशी-ध्वनियाँ सुनायी देगी।

इस ग्रह को सँवारने के इस महत्कार्य मे अधिक व्यक्तियों से सहयोग की आशा निरर्थक है। धनार्जन की कामनाओं के द्वारा एक प्रकार से सारी की सारी मानव-जाति उन्माद ग्रस्त-सी हो गयी है! इस ग्रह के वातावरण मे जिन विचार-कम्पनों का प्राधान्य

है, वे धनार्जन की आकांक्षाओं के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। जिसके पास जीवनयापन करने के लिए पर्याप्त सम्पत्ति नहीं है, वह यदि धनार्जन के कार्य मे प्रवृत्त होता है तो कोई आश्चर्य नहीं। किन्तु जिसके पास पहले से ही पर्याप्त सम्पत्ति विद्यमान है, वह भी निरन्तर धनार्जन की चिन्ताओं मे व्यस्त रहता है, यह बड़े आश्चर्य का विषय है! शरीर-यात्रा को सुखपूर्वक सम्पन्न करने के साधनों को प्रदान करने के अतिरिक्त धन से और कोई भी कार्य नहीं हो सकता। और, मनुष्य केवल शरीर नहीं है, वह आत्मा भी है!

फिर भी, ऐसे व्यक्तियों का सम्पूर्ण अभाव नहीं है जो इन उन्मादपूर्ण विचार-कम्पनों के बीच मे भी अपने मस्तिष्क को सुरक्षित रख सके है और जिनके जीवन की लालसाएँ धनार्जन के वातावरण-व्याप्त विचार-कम्पनों से न प्रेरित होकर कुछ और ही प्रेरणाएँ प्राप्त करती है। वे जीवन को जीवन के रूप मे देखना और बनाना चाहते हैं—पागलपन के रूप मे नहीं। उनका मस्तिष्क स्वस्थ है और इसीलिये वे स्वस्थ विचारों को ग्रहण करने के लिए समुद्यत हैं, क्योंकि वस्तुवादियों की तरह स्वस्थ विचारों को अस्वस्थ विचार और अस्वस्थ विचारों को स्वस्थ विचार समझने के दूषण से वे विनिर्मुक्त रहते है। मृत्यु की वास्तविकता का ज्ञान उन्हें हो पाया हो, चाहे नहीं हो पाया हो, किन्तु वे मृत्यु से भीत कभी नहीं होते! जीवन और मरण दोनों ही उन्हे एक से प्रतीत होते है।

बस, ऐसे ही जीवनमय, आलोकमय नवयुवकों की संगठित शक्ति के द्वारा यह महत्वकार्य सुगमतापूर्वक सम्पादित हो सकता है ! हाँ, सुगमतापूर्वक ! क्योंकि, इस ग्रह के अधिवासियों के जीवन की जो सबसे बड़ी कठिनाई है, उससे वे लोग अपरिचित रहते हैं !

हो सकता है, हम आरंभ मे उनकी शक्तियों को ठीक तरह से नहीं पहचान सके क्योंकि वे अच्छी तरह से अपनी अभिव्यक्ति का अवसर कहाँ पा सकी है ! लेकिन केवल इसीलिये उनकी शक्तियों पर हमे अविश्वास भी नहीं करना चाहिये। उनके पथ मे भी अन्धकार है, इसमे कोई सन्देह नहीं, लेकिन साथ ही साथ इसमे भी कोई सन्देह नहीं कि अपने अन्धकारित बंधुर कण्टकाकीर्ण पथ में भी मुसकुराते हुए चलने की शक्ति से वे भरे हुए है !

ऐसे ही तेजस्वी सहर्कामयों के द्वारा इस मायामय ग्रह को संशाधित करना पड़ेगा, ताकि जीवनपथी रोटी और वस्त्र की चिन्ताओं से मुक्त होकर अपनी दृष्टि ऊपर की ओर उठा सकें और आज व्यर्थ की वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए जितनी कठोर तपस्या करते ह. उतनी ही उसके लिए करने का पर्याप्त समय पा सकें. जिसके परे कोई नहीं—जिससे महान् कोई नहीं—जो ज्योति का ज्योतिदाता है—जो परात्पर है—जिसे प्राप्त करने के बाद फिर कुछ पाना शेष नहीं रह जाता !

इसमे कोई संदेह नहीं कि ऐसा करके भी—इस ग्रह के बन्दियों के ओठों पर हँसी लाकर भी, उनकी आँखों का अश्रु-प्रवाह

नहीं बन्द किया जा सकता है क्योंकि यह अश्रु-प्रवाह उसकी वास्तविक मनोव्यथा का परिचायक है! हाँ, उसकी जो मनो-व्यथा अवास्तविक है—जिसका समुद्भव उसकी भ्रान्ति से हुआ है, उसे अवश्य ही दूर किया जा सकता है। रोटी, वस्त्र, गृह प्रभृति के जो दुःख है, वे समस्त मानवों के लिए दूर किये जा सकते है, क्योंकि इन दुःखों का समुद्भव मानव-जाति के ही द्वारा हुआ है।

इसके साथ ही साथ हमारे सामने एक और महान् कार्य है। मानव-जाति के भोजन, वस्त्र, एवं गृह का सवाल हल कर देने से ही हमारी इतिकर्त्तव्यता नहीं हो जाती। हमे मानवता को उन विचार-धाराओं और मिथ्या विश्वासों से मुक्त करना है, जो उसके मानस-प्रदेश को बलपूर्वक आक्रान्त किये हुए है। मनुष्य के ऊपर भौतिक विज्ञान ने जो विजय प्राप्त की है, वह कितनी अहितकर है, यह अब धीरे-धीरे मानव-जाति को विदित होने लगा है, किन्तु वह उसके बन्धनों से अपने को मुक्त नहीं कर पा रही है। उसे लग रहा है, जैसे उसका भौतिक विज्ञान से वही सम्बन्ध हो गया है, जो शरीर से आत्मा का। हमे उसके इस बन्धन को छिन्न-भिन्न करना होगा।

मनुष्य केवल शरीर और मन का संयोजन नहीं है; वह आत्मा भी है। और वह केवल आत्मा नहीं है, शरीर और मन का संयोजन भी है। उसे इन तीनों की ओर ध्यान देते हुए जीवन-पथ पर कदम बढ़ाने होंगे, और तभी वह अपनी खोयी मंजिल को पा सकेगा। आज वह मंजिल से दूर है और मार्ग में पड़ा-पड़ा क्रन्दन

कर रहा है। चारों ओर अन्धकार छाया हुआ है। पथ के दोनों पार्श्वों में सघन कान्तार की साँय-साँय ध्वनि उसके कानों तक आ रही है। इस दृश्य को और भी भीषण बनाती हुई निष्ठुर वारिद-मालाएँ आ पहुँची हैं और एक प्राण-दहनकारी भय की आशंका से जीवन-यात्री के प्राण काँप रहे हैं।

किन्तु यह कैसी दुर्बलता है—कैसा आत्म-पतन है! जीवन-यात्री को उठकर अब अपनी शक्तियों से अभिज्ञ होना चाहिये। जीवन-पथ मे मृत्यु की भाँति छाये हुए इस सघन अन्धकार में भी अपनी मंजिल की ओर मुसकुराते हुए बढ़ने का प्रयास करना चाहिये, तभी उसकी गौरव-गरिमा अक्षुण्ण रह पायेगी—तभी वह अपनी जीवन-यात्रा का महिमोज्वल इतिहास अपने साथियों को सुना सकेगा—तभी वह उल्लसित होकर कह सकेगा कि मैंने इतनी-इतनी बाधाओं के रहते हुए भी, दीपमाला के निर्वापित हो जाने पर भी अपनी खोयी मंजिल को प्राप्त कर लिया।

मनुष्य वह नहीं है जो उसने अपने को बना लिया है। वह उससे बहुत ऊपर है। उसे अपने वास्तविक व्यक्तित्व को पहिचानने का प्रयास करना चाहिये। इस ग्रह के अन्य प्राणियों की तरह सारा का सारा जीवन अपने अस्तित्व की सुरक्षा के साधनों की प्राप्ति में ही व्यय करना उसके लिए लज्जा का विषय है।

अपने मन-प्राण को सशक्त एवं स्वस्थ रखते हुए उसे अपने कदम आगे बढ़ाने चाहिये। उसका पथ एक तो पहले से ही अंध-

कार से आक्रान्त है और मेघमालाओं की गर्जना उसे और भी भीषणता प्रदान करती है, लेकिन यदि वह दूरवर्त्तिनी दीपवर्त्तिका के आलोक में आगे बढ़ने का साहस न करके अपने पथ में काँटे बिखेरता रहेगा, तो उसका यह भयंकर उन्माद दूर करने के लिए अब कौन-से पैगंबर इस धरित्री पर अवतरित हों !

--:०:--

इस विश्व का एक धुँधला-सा चित्र पाठकों के समक्ष रखते हुए मैंने इस ग्रह के सम्बन्ध मे अपने विचारों की अभिव्यक्ति कर दी है। मानव-जाति के जीवन-पथ मे बिखरे हुए राशि-राशि क्लेशों की उग्रता को दूर करने के लिए किन उपायों का अवलम्बन श्रेयस्कर होगा, इस पर भी आंशिक प्रकाश निक्षिप्त हो चुका है।

लेकिन इस पुस्तक को समाप्त करने के पहले मैं अपने पाठकों से एक बार फिर कह देना चाहता हूँ कि इन सब के पीछे जो सत्य है, विज्ञान या दर्शन उसकी छाया भी नहीं छू सके है। उसे जानने के लिए वैज्ञानिक की प्रयोगशाला मे या दार्शनिक की अध्ययनशाला मे न जाकर कवि के (यहाँ 'कवि' शब्द का वह अर्थ नहीं, जो दुनिया के बाजार मे होता है। उसे दुःखसंयोग जगत् का वियोगी और शाश्वत सत्ता का योगी कहिये।) सरिता-तटवर्त्ती कुटीर में जाना होगा, जहाँ संध्या की उदास, धुँधली, किन्तु नशीली घड़ियों में वह रहस्यवादी साधक--वह mystic अपनी

मर्ममधुर वाणी में न जाने किसके गीत गाया करता है। और वहीं--उसी सन्ध्या-शृंगारित निर्जन गिरि-प्रान्तर के किसी पाषाण-खण्ड पर बैठकर उस की तन्मयता में किसी प्रकार का व्याघात न पहुँचाते हुए उसकी आँखों के आँसुओं मे सत्य की झलक देखनी होगी।

हाँ, विज्ञान और दर्शन वहाँ तक पहुँचने मे मानव-जाति की सहायता अवश्य करेंगे।

---:o:---

पो० बॉ० नं० ७०, ज्ञानवापी, वाराणसी

मूल्य : ५)

मुद्रक—विद्यामन्दिर प्रेस (प्राइवेट) लि०, मानमन्दिर, वाराणसी